क्रान्तद्रष्टा

श्रीमद् जवाहराचार्य

सम्पादन
डॉ० शान्ता भानावत

प्रकाशक
श्री० अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

क्रान्तद्रष्टा

श्रीमद् जवाहराचार्य

सम्पादन

डॉ. शान्ता भानावत

प्रकाशक—

श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ
समता-भवन, रामपुरिया मार्ग
बीकानेर (राजस्थान)

संस्करण : १९७६

मूल्य : पांच रुपये

मुद्रक

जैन आर्ट प्रेस, बीकानेर (राज०)

प्रकाशकीय

यह बड़ा सुखद संयोग है कि भगवान महावीर के २५वें निर्वाण शताब्दी समारोह के समापन के साथ ही उन्हीं के धर्मशासन के इस युग के महान् क्रांतिकारी युगपुरुष श्रीमद् जवाहराचार्य का जन्म-शताब्दी समारोह मनाने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

आचार्यश्री का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक और प्रभावशाली था। आपकी दृष्टि बड़ी उदार तथा विचार विश्वमैत्री भाव और राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत थे। आपने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के सत्याग्रह, अहिंसक प्रतिरोध, खादी धारण, गोपालन, अछूतोद्धार, व्यसनमुक्ति जैसे कार्यक्रमों में सहयोग देने की जनमानस को प्रेरणा दी और बालविवाह, वृद्धविवाह, दहेजप्रथा, मृत्युभोज, सूदखोरी जैसी कुप्रथाओं के खिलाफ 'लोक-मानस' को जागृत किया। आपके राष्ट्रधर्मी, क्रांतद्रष्टा व्यक्तित्व से प्रभावित होकर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, सरदार वल्लभ भाई पटेल, पं० मदनमोहन मालवीय आदि राष्ट्रीय नेता आपके सम्पर्क में आये।

स्वर्गीय आचार्यश्री साधुत्व को उसके वास्तविक स्वरूप में ही साधना के उच्चस्थ शिखर पर आसीन देखना चाहते थे एवं प्रवृत्तिपरक प्रचार-प्रसार कार्य में गृहस्थवर्ग का संलग्न रहना ही उपयुक्त मानते थे। आचार्यश्री के लिये किसी भी साधक की साधना में अंश मात्र की कमी भी असह्य थी, अतः उन्होंने साधुत्व को अक्षुण्ण रखने के उद्देश्य से प्रचार-प्रसार के कार्य हेतु साधु और गृहस्थ की मध्यमार्गीय **'वीर संघ योजना'** प्रस्तुत की, जो काल की अपरिपक्वता के कारण उस समय पूरी न हो सकी, पर अब आचार्यश्री की सौवीं जन्म-जयन्ती पर कार्तिक शुक्ला चतुर्थी, विक्रम सं० १९३२ के दिन क्रियान्वित की जा चुकी है। इस योजना के आधारभूत स्तम्भ हैं— निवृत्ति, स्वाध्याय, साधना और सेवा तथा इसके तीन श्रेणी के सदस्य हैं - उपासक, साधक और मुमुक्षु।

आचार्यश्री अछूतोद्धार के प्रबल समर्थक थे। आपका दिया हुआ बीजमंत्र ही धर्मपाल प्रवृत्ति के रूप में आज संघ की मुख्य प्रवृत्ति बना हुआ है। चारित्र-चूड़ामणि परम श्रद्धेय आचार्य श्री नानालाल जी म. सा. ने आज से १३ वर्ष पूर्व समाज में अस्पृश्य समझी जाने वाली बलाई जाति को व्यसन-मुक्त कर, संस्कारशील बनाने के युगनिर्माणकारी महान् ऐतिहासिक कार्य की प्रेरणा दी, जिसके फलस्वरूप संघ के अनेक कार्यकर्ता इस जीवन-निर्माणकारी महद् अनुष्ठान में सक्रिय रूप से जुट गये। धर्मपाल बन्धुओं से जीवन्त संपर्क करने और उनमें आत्मविश्वास और स्वावलम्बन की भावना जागृत करने की दृष्टि से संघ ने 'धर्मजागरण पदयात्रा' का एक विशेष कार्यक्रम आरंभ किया है। आचार्यश्री के जन्मशताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में प्रसिद्ध समाजसेवी पद्मश्री डॉ० नन्दलाल जी बोरदिया के मार्गदर्शन में संघ ने धर्मपाल क्षेत्रों में **'श्री जवाहराचार्य चल-चिकित्सालय'** का शुभारंभ किया है।

आचार्यश्री प्रखर वक्ता और असाधारण वाग्मी महापुरुष थे। 'जवाहर किरणावली' नाम से ३५ भागों में आपका प्रेरणादायी प्रवचन–साहित्य संकलित है। जन्मशताब्दी वर्ष में डॉ० नरेन्द्र भानावत के संयोजन सम्पादन में हमने आचार्यश्री की प्रेरणादायी जीवनी तथा धर्म, समाज, राष्ट्रीयता, शिक्षा, नारी जागरण जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर प्रगट किये गये उनके विचारों को 'सुगम पुस्तकमाला' के रूप में जन-जन तक पहुंचाने का निर्णय लिया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ क्रांतद्रष्टा 'श्रीमद् जवाहराचार्य' का प्रकाशन इसी दिशा में एक कदम है। इसे सर्वांग सम्पूर्ण बनाने में जिन विद्वान् मुनियों, लेखकों और कवियों ने अपनी मूल्यवान रचनाएं भेजकर जो सहयोग प्रदान किया है, उसके लिए हम उनके हृदय से आभारी हैं।

गुमानमल चोरड़िया
अध्यक्ष

भंवरलाल कोठारी
मंत्री

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

जन्मशती : एक ज्योतिवाही जागरूक चेतना की

हम सौभाग्यशाली हैं कि हमें महान् क्रांतिकारी युगप्रवर्तक, ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. का जन्म-शती समारोह मनाने का सुअवसर प्राप्त हुआ । यों इतिहास के वृहत् कालक्रम में १०० वर्षों का कोई विशेष महत्त्व नहीं होता पर आचार्यश्री का व्यक्तित्व इतना प्रभावक और लोकप्रवोधकारी रहा है कि उसने तत्कालीन जनजीवन को झंकृत और स्पंदित कर डाला ।

श्रीमद् जवाहराचार्य का समय एक प्रकार से भारतीय राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक पुनर्जागरण का समय है । सामान्य धर्माचार्य जहां राष्ट्र की इस करवट लेती हुई संचेतना से वेसुध थे, वहां आचार्यश्री के ज्योतिवाही, जागरूक चेतनाशील व्यक्तित्व ने समय की नब्ज को पहचाना और उसे स्वस्थ, सबल तथा सतेज बनाये रखने के लिये अपनी संयम-साधना का आलोक बिखेरा । उसके अमृतस्पर्शी स्फुलिंग आज भी हमारा पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं, हममें नई शक्ति और स्फूर्ति का संचार कर रहे हैं ।

आचार्यश्री अपने परिवेश के प्रति अत्यन्त सजग और संवेदनशील थे । विलक्षण प्रतिभा, प्रत्युत्पन्न मतित्व, दूरगामी दृष्टि और त्वरित निर्णयशक्ति ने उनमें एक विशेष प्रकार का ओज और सामर्थ्य भर दिया था जिसके कारण वे आत्मधर्म के साथ-साथ राष्ट्रचेतना के भी प्रबुद्ध व्याख्याता और उद्बोधक

बन गये । यद्यपि उनकी व्याख्या और उद्बोधना धार्मिक और आध्यात्मिक संवेदना के धरातल से प्रेरित होती थी, पर उसमें लोकमंगल और सामाजिक अभ्युदय का स्वर सदैव व्यंजित रहता था । जीवन निर्माणकारी प्राचीन उदात्त परम्पराओं के वाहक होते हुए भी आचार्यश्री नवीन आदर्शों और विचारों के प्रतिष्ठापक थे । इसी नवनवोन्मेषशालिनी दृष्टि और सूक्ष्म प्रज्ञा से वे श्रमण-वर्ग में अन्य-धर्मी पंडितों से संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन की परम्परा प्रारंभ कर सके, कृषिकर्म की अल्पारंभता सिद्ध कर सके और स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग में सापेक्ष दृष्टि से अहिंसा की अधिक परिपालना अनुभव कर सके ।

आज आचार्यश्री का भौतिक पिंड हमारे समक्ष नहीं है, पर उनके विशाल प्रवचन-साहित्य और चरिताख्यान के रूप में उनका तेजस्वी विचारक और आध्यात्मिक धर्मोपदेष्टा का रूप हमारे सामने है । हमारा यह पुनीत कर्तव्य है कि हम अपने नियमित अध्ययन-क्रम में इस सत्साहित्य में अवगाहन करें, उससे आत्मसाक्षात्कार करें और श्रेय तथा अभ्युदय के मार्ग पर निरंतर आगे बढ़ते रहने का अभ्यास करें । आचार्यश्री के प्रति यही हमारी सच्ची श्रद्धांजलि है ।

आचार्यश्री के विचार आज की बदली हुई परिस्थिति में इतने सटीक और सार्थक लगते हैं कि जैसे वे कल के नहीं, आज के हैं । ग्रामधर्म, नगर-धर्म, राष्ट्रधर्म आदि के सम्बन्ध में प्रकट किये गये उनके विचार आज जैसे राष्ट्रीय नीति के अंग बने हुए हैं । आचार्यश्री की जीवन्तता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है ?

राष्ट्र के सभी नागरिकों को और विशेषतः युवापीढ़ी को आचार्यश्री के जीवन, व्यक्तित्व और विचारों का परिज्ञान हो और उनसे वे प्रेरणा प्राप्त करें, इसी दृष्टि से यह ग्रंथ प्रकाशित किया जा रहा है । यह तीन खण्डों में विभक्त है—श्रीमद् जवाहराचार्य जीवन दर्शन, जीवन प्रसंग और काव्यांजलि । विद्वान् लेखकों ने जिस तत्परता और अपनत्व के साथ सामग्री भेजकर सहयोग प्रदान किया, उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना हम अपना पुनीत कर्तव्य मानते हैं । आशा है, यह ग्रंथ श्रीमद् जवाहराचार्य के जीवन, विचार और बहुआयामी व्यक्तित्व को समझने में विशेष प्रेरक और उपयोगी सिद्ध होगा ।

—डॉ. भानावत

अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड

श्रीमज्जवाहराचार्य : जीवन दर्शन

द्वितीय खण्ड

श्रीमज्जवाहराचार्य : जीवन-प्रसंग

तृतीय खण्ड

श्रीमज्जवाहराचार्य : काव्याञ्जलि

परिशिष्ट

अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म सदा मंगलमय है, कल्याणकारी है। जो लोग जीवन में धर्म की अनावश्यकता महसूस करते हैं, उन्होंने या तो धर्म का स्वरूप नहीं समझा है या धर्मभ्रम को ही धर्म समझ लिया है।"

ज. वा.

प्रेरक उद्‌बोधन :

स्वयं जागृत होकर आचार्यश्री से प्रेरणा लें !

● आचार्यश्री नानालालजी म० सा०

युगप्रवर्तक युगद्रष्टा ज्योतिर्धर स्व० आचार्यश्री जवाहरलालजी म० सा० के जन्म शताब्दी वर्ष समारोह के शुभारम्भ, पर आषाढ़ शुक्ला चतुर्थी, ७ नवम्बर १९७५ को देशनोक में दिये गये प्रेरक उद्‌बोधन का अंश यहां प्रकाशित किया जा रहा है। —सम्पादक

आत्म-चेतना की जागृति :

चैतन्य स्वरूप आत्मा परमात्मा के तुल्य अपनी शक्ति का सृजन रखती हुई भी वर्तमान में उसकी चेतना प्रसुप्त है, सोई हुई है। सोई हुई चेतना को जागृत करने का दायित्व स्वयं के ऊपर ही है। परमात्मा ने स्वयं को शक्ति-सम्पन्न घोषित किया है। इन्सान अपने स्वयं से परिपूर्ण है। उसकी शक्तियां परमात्मा की शक्तियों से न्यून नहीं हैं। उसने कभी जागृति की है लेकिन जागृति के स्वर यदा कदा बुलन्द हुआ करते हैं।

इस अवसर्पिणि काल में प्रभु ऋषभदेव से लेकर प्रभु महावीर तक तीर्थंकरों की परम्परा से जो कुछ भी चेतना का उद्‌बोधन मिला है, उन उद्‌बोधनों के साथ-साथ अपूर्व शक्तियों का संचय जिन मेधावी महापुरुषों ने किया है, वह समय-समय पर उपलब्ध होता रहा है।

प्रभु महावीर की इस पवित्र परम्परा के अनेक महान् आचार्य समय-समय पर प्रभु के उपदेशों का उद्बोधन स्वयं की अनुमति के साथ करते हुए आये हैं। जन मानस में जब भी अधिक सुषुप्तता व्याप्त हुई है तब तब उनके उपदेशों से जनमानस जागृत होकर पुनः अपने गन्तव्य पथ पर अग्रसर हुआ है।

आचार्यश्री की पवित्र प्रेरणा :

स्वर्गीय आचार्यदेव श्री जवाहरलाल जी महाराज साहब के जीवन की झांकी का क्या कुछ दिग्दर्शन कराऊँ, अनेक महानुभावों ने आचार्यदेव के प्रति अपने-अपने उद्गार व्यक्त किये हैं। उन उद्गारों के अन्दर जो स्वर झंकृत हो रहा है, उन स्वरों के साथ यदि आप अपने अन्तर की तन्त्री को जगा लें और आचार्यदेव की उस पवित्र प्रेरणा को जीवन में साकार रूप दें, उनके समग्र रूप को भलिभांति समझने का प्रयास करें तो बहुत कुछ आगे बढ़ सकते हैं।

निवृत्ति और प्रवृत्ति : जीवनघड़ी की चलने वाली वृत्तियां :

प्रभु महावीर की जो उदात्त परम्परा है जिसके अन्दर न सिर्फ निवृत्ति थी और न सिर्फ प्रवृत्ति। निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनों एकांगी हो भी नहीं सकतीं। प्रत्येक वस्तु की दो दिशाओं में प्रवृत्ति होती है, प्रवाह होता है। एक से निवृत्ति है तो दूसरी से प्रवृत्ति है। दोनों प्रयोगों के रूप में जीवन की घड़ी में चलनेवाली वृत्तियां हैं। अशुभ भावना की वृत्तियां निवृत्ति और शुभ जीवन की दिशा में शुभ प्रवृत्तियां हैं। जो प्रवृत्ति हैं, वह जीवन को इस जागृति की ओर मोड़ने वाली है।

पूर्व की ऐतिहासिक स्थिति से यहां जो कुछ भी प्रसंग आया है, कभी कभी परिस्थितिवश निवृत्ति का ही एक स्वर समाज के सामने गुंजित होने लगा, एक मात्रा में प्रवृत्ति को भुला दिया जाने लगा। लेकिन आचार्य-देव ने उस एकान्तता की स्थिति को समन्वय के साथ सृजित करते हुए, निवृत्तिपूर्वक प्रवृत्ति की जो कुछ भी व्याख्याएं, विवेचनाएं अपने साधुत्व की स्थिति में रहते हुए दीं, वे जनता के लिये, समाज के लिए, राष्ट्र और विश्व के लिए एक उत्क्रान्ति का स्वर बनीं। इस स्वर की स्थिति से यदि आप अवलोकन करेंगे तो आचार्यदेव ने साधुत्व जीवन की अपनी मर्यादाओं को सुव्यवस्थित स्थिति में सुदृढ़ रखते हुए, जो ज्ञान का आलोक उन्होंने दिया वह वस्तुतः प्रभु

महावीर की उस परम्परा को सुरक्षित रखने का एक भव्य रूपक है, भव्य आदर्श है। जब तक इन्सान अपनी स्वीकृत मर्यादाओं में सुदृढ़ रह कर अपने जीवन को नहीं संभाल पाता है, तब तक वह अपनी ज्ञान रश्मियों को भी दूसरों को दे नहीं सकता, और देने की स्थिति में कदाचित् रहे भी सही तो वे बिखर जायेंगी, स्वयं भी स्थिर नहीं रह पायेगा। सीमाओं और मर्यादाओं में जिस वस्तु स्थिति का प्रतिपादन होता है वह वस्तु स्थिति स्व-पर के लिये हितावह होती है। आप वर्तमान में प्रत्येक वस्तुतत्त्व को इस परिवेश में देख सकते हैं।

घेरे के भीतर से रोशनी :

जहां बिजली के बल्ब से प्रकाश प्राप्त कर रहे हैं, बल्ब की सीमा है, उसका घेरा है, घेरे के भीतर से ही वह रोशनी दे रहा है। यदि घेरा टूट जाता है तो आप विद्युत् की रोशनी प्राप्त नहीं कर सकेंगे। घेरे में सुरक्षित रहते हुए बल्ब प्रकाश दे रहा है। सूर्य अपनी सीमा की स्थिति में रह कर अनादि काल से विश्व को प्रकाश दे रहा है।

कुदरती तत्त्वों के साथ-साथ संत जीवन भी कुदरती तत्त्वों की तरह एक अनूठी देन हुआ करता है। आचार्यदेव ने भी अपनी साधु मर्यादित दशा को सुरक्षित रखते हुए, अक्षुण्ण रखते हुए सभी दिशाओं में प्रकाश दिया। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व को, इस उदात्त धर्म का, ज्ञान रूपी रश्मियों का प्रकाश, स्वयं को सुरक्षित रखते हुए दिया। उन्होंने अपनी सुरक्षित स्थिति को खतरे में डाल कर जनमानस को प्रकाश देने का कतई विचार नहीं किया। जब साधुवर्ग का पहला सम्मेलन अजमेर में हुआ उस समय बहुत से गण्यमान्य व्यक्ति एकत्रित हुए थे। ४० हजार के लगभग जनता एकत्रित थी। आचार्य-देव को अपने अमूल्य विचारों का प्रकाश करना चाहिये, ऐसी लोगों की इच्छा थी। लेकिन जब व्याख्यान देने का प्रसंग आया तब आचार्यदेव ने साफ कहा कि मैं इस माइक के माध्यम से अपने विचारों को नहीं रखना चाहता हूं, यह साधुजीवन की सीमा को तोड़ने वाला है। मैं अपनी सीमा में आबद्ध रह कर ही जनता को अपने विचार देना चाहता हूँ। उस समय की जनता को सब तरह के लोगों को श्रवण करने को मिल रहा था, कुछ लोगों का आग्रह था कि आचार्यश्री अपने विचार माइक के माध्यम से रखें। लेकिन आचार्यश्री अपनी शिष्यमंडली सहित हजारों की भीड़ को एक तरफ करते हुए, अपने स्थान पर पहुंच गये, लेकिन अपनी मर्यादाओं को लांघ करके उन्होंने ज्ञान का प्रकाश नहीं दिया।

जवाहर किरणावलियां न मालूम कितनी होतीं :

उनके जीवन की किन-किन घटनाओं का क्या-क्या उल्लेख किया जाय? उन घटनाओं का कुछ उल्लेख उनके जीवन चरित्र में है लेकिन मैं सोचता हूँ कि समग्र घटनाओं का उल्लेख जीवन चरित्र में आ गया हो, ऐसा कम लग रहा है। जितना स्मृतिपटल पर जो कुछ था, वह आया। लेकिन प्रत्येक समय की रिपोर्ट, प्रत्येक समय की उनकी अनुभूति, मैं समझता हूं समाज ने संगृहीत नहीं की, खो दी। उनकी अनुभूतियाँ क्या-क्या थीं, किस रूप में थीं, उनके एक-एक वचन की यदि समाज कीमत करती तो आज दुनियां के सामने जवाहर किरणावलियां केवल ३५ भागों में ही नहीं होतीं, न मालूम कितना साहित्य होता। यह भी समाज के विवेकशील व्यक्तियों की दूरदर्शिता थी कि इस साहित्य को समाज के कल्याणार्थ संचित कर लिया जो आज प्रकाश का काम दे रहा है। सारा जैन समाज इससे प्रकाश ग्रहण कर सकता है। इसमें जो धारा प्रवाहित हुई है, वह पूर्व में उपलब्ध नहीं थी।

महापुरुष के इस स्वरूप को समझने की क्षमता विरले ही व्यक्तियों में हुआ करती है। उस समय कुछ ही व्यक्तियों ने उन्हें पहचाना। परिपूर्ण पहचानने की स्थिति कइयों में नहीं आई। कुछ लोग जरूर हाथ उठाते रहे लेकिन पहचान नहीं पाये कि वे क्या थे, उनमें क्या शक्ति थी। आज हम उन उपादानों को ढूंढ लेते हैं तो पता चलता है कि उनकी क्या विचारधारा थी। सन् ३८ के आस-पास के व्याख्यानों को ध्यान से देखते हैं तो उन्होंने स्पष्ट कहा था कि समाज के साधारण व्यक्ति संतवर्ग और सतीवर्ग को उनकी मर्यादाओं से हटा कर समाज के कार्यों में डालना चाहते हैं लेकिन यह साधु वर्ग और जनता के लिये हितावह नहीं है। साधु के कर्त्तव्यों और मर्यादाओं को सुरक्षित रख कर जितना प्रकाश लेना चाहें, लेना चाहिये और अवशेष कार्य गृहस्थ करे। वे अपनी मर्यादाओं में रह कर कार्य संभालें। लेकिन गृहस्थ अपनी संपत्ति अर्जन में लगे रहें और सारा काम साधुओं पर डालें तो साधु जीवन सुरक्षित नहीं रह सकता। ये विचार आचार्यश्री ने समय-समय पर उपस्थित किये। मुझे उनके सापेक्ष विचार श्रवण करने का सौभाग्य नहीं के बराबर प्राप्त हुआ, लेकिन जो भी उनकी वाणी, विचार, वीरसंघ की योजना स्वर्गीय आचार्यश्री गणेशीलाल जी महाराज साहब के मुखारविन्द से श्रवण करता था, तब सोचता था कि इन आचार्यश्री का कितना सद्भाग्य था कि इन्होंने उन आचार्यश्री के समीप रह कर अपने जीवन का निर्माण किया। वे आचार्यश्री जवाहरलाल जी के विचारों के अनुरूप विचार रखने का प्रयास करते थे। वीरसंघ योजना के

विषय में आचार्यश्री गणेशीलाल जी महाराज साहब ने भी समय-समय पर उद्बोधन दिया है, उसी का परिणाम समझना चाहिये कि आज इस योजना को कार्यान्वित होने का प्रसंग उपस्थित हो रहा है ।

स्वयं जागृत होकर प्रेरणा लें :

बन्धुओ, आचार्यश्री जवाहरलाल जी महाराज साहब से जो कुछ प्रेरणा लेना चाहते हैं, वह प्रेरणा आप स्वयं जागृत होकर लें । आप यदि यह सोचें कि हमको कोई जगावे, यह सोचना भी कुछ हद तक सही हो सकता है, लेकिन मुख्य स्थिति स्वयं के जागृत होने की है । आज की युवा पीढ़ी जो समाज, राष्ट्र और विश्व के उदात्त रूप में प्रगट होने वाली है, उसमें जो कुछ उत्साह और उमंग की कमी दृष्टिगत हो रही है, उसका क्या कारण है ? उसके कारण अनेक हैं । उन कारणों का विश्लेषण यहां रखूं, यह शक्य नहीं है । लेकिन इतना संकेत अवश्य देता हूं कि आज की युवा पीढ़ी और तरुण अंगड़ाई लेकर खड़े हो जावें, जोश और होश दोनों स्थितियों के समन्वय के साथ, यदि वे स्वयं की स्थिति से जागृत होकर आवें, बुजुर्ग उनको सम्बल दें, उनके पीठबल को मजबूत करें और अपने अनुभव की स्थिति को उडेल दें, युवक विनय के साथ उनको ग्रहण करें, तो आज समाज का रंगमंच जो जर्जरित हो रहा है, विषम वायुमंडल से गुजर रहा है, कुरीति, कुरिवाज जो समाज की छाती पर मूंग दल रहे हैं उन सभी पर अंकुश लग कर बड़ा भव्य रूप समाज का हो सकता है, लेकिन ऐसा न करके यही सोचते रहें कि अमुक आह्वान करे तो आऊं, तो आह्वान कौन किसका करे ? यह व्यक्ति विशेष का कार्य नहीं है । सभी का कार्य है । प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने कर्त्तव्य को अपने स्थान पर देखे और जागृत होकर चले ।

धर्म इस लोक को पहले सुधारता है :

जहां तक धर्म का सम्बन्ध है, मैं समय-समय पर कहता रहा हूं कि यह धर्म अथवा आध्यात्मिक जीवन की बात, सिर्फ परलोक के लिये नहीं है जो भी यह सोचता है कि यह परलोक के लिये है, इस लोक के लिये नहीं है, यह सोचना योग्य नहीं है । मैं स्पष्ट शब्दों में कहता हूं कि यह इस लोक के लिये पहले आलोक देता है, जीवन-निर्माण करता है, जीवन के अणु-अणु को जागृत करता है । इस जागृति के साथ धर्म के तत्त्व को समझा जाय तो धर्म इस लोक और परलोक दोनों को सुधारता है । परलोक को ही सुधारता हो, यह एकांगी दृष्टि नहीं है । दोनों दृश्य इस लोक की स्थिति से ही चालू

होते हैं । इस लोक की समग्र शक्तियां जागृत होंगी तभी आगे बढ़ सकेंगे। तो मैं यह कहने की स्थिति में हूँ कि धर्म इस लोक को पहले सुधारता है। व्यक्ति साधना इसी लोक की स्थिति से करता है, मोक्ष की कामना भी इसी लोक की स्थिति से करता है और मोक्ष की प्राप्ति भी इसी जीवन से होती है। परलोक में तो एक समय की स्थिति में सिद्ध अवस्था में जायगा। जो उदात्त स्वरूप है, तीर्थंकरों की स्थिति है, उसका अवलोकन करने की कोशिश करें।

युवक आगे आयें !

युवकों को धर्मक्षेत्र में उत्साह के साथ प्रवेश करने को आवश्यकता है। यह क्षेत्र प्रत्येक भाई का है, किसी व्यक्ति विशेष का नहीं है। क्या भोजन के लिये परिवार वालों को आमंत्रित करने की आवश्यकता होगी? क्या माता के पास आमंत्रण से जाते हैं या क्षुधा लगने पर स्वयं पहुंचते हैं और माता के चरणों में जाकर याचना करते हैं कि भोजन दे। माता यदि किसी कार्य में व्यस्त है तो स्वयं उठा कर भोजन ग्रहण करते हैं। इसी तरह से धर्म के लिए आप किसी के निमंत्रण की आवश्यकता महसूस नहीं करें और स्वयं पहुंचे और आपकी जो शक्ति है, ऊर्जा है उसका प्रयोग करें। आज के युग में विश्लेषण का प्रसंग है। वैज्ञानिक दृष्टि से सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्वों का विश्लेषण ले सकते हैं। आप तुलनात्मक दृष्टि से भौतिक व आध्यात्मिक विज्ञान के साथ समन्वय के सिद्धान्त के साथ समग्र जीवन के सर्वांगीण विकास के लिये अग्रसर होने का प्रयत्न करें। यदि प्रत्येक भाई-बहिन निद्रा को भंग करके समग्र प्रकार की शक्तियों को ग्रहण कर, आलस्य में न रह कर, जागृति के स्वरों के साथ इस प्रकार का वायुमंडल तैयार करे कि समाज के रंगमंच पर आदर्श उपस्थित हो सके तो कैसा भव्य स्वरूप आचार्यदेव की इस जन्म-शताब्दी के प्रसंग पर उपस्थित हो सकेगा।

वीर संघ योजना में ईमानदारी से प्रविष्ट हों।

वीर संघ की योजना जिस भावना से आचार्यश्री ने रखी है, उसको यदि साकार रूप देने का प्रश्न है तो बुजुर्ग, तरुण, बच्चे और बहिनें सबके सब उत्साह के साथ चलने की कोशिश करें तो मैं यह सोचता हूँ कि आप समन्वय का सूत्र स्थापित कर रहे हैं, शर्त यह है कि आप जिस श्रेणी को स्वीकार करें, उसके प्रति ईमानदार रहें, वेईमानी न करें। जो भी इसके नियम–उपनियम हैं उनका ईमानदारी के साथ पालन करें, उसमें ब्लेक न करें,

धोखाबाजी न करें। और यदि गृहस्थ अवस्था को लेकर चलना है तो उसमें भी ईमानदारी रखें। धर्म–प्रचार की दृष्टि से दूसरा वर्ग तैयार करना है तो मध्यम वर्ग को ईमानदारी के साथ पालन करना होगा। सभी क्षेत्रों में ईमानदारी का पहला तकाजा है। इसी के साथ आप, हम सब लोग चलें, एक दूसरे का सहारा रहे। एक दूसरे की व्यक्तिगत साधना में कदाचित् त्रुटि का प्रसंग हो तो विनयपूर्वक निवेदन करने की कोशिश करें। यह भी भावना नहीं होनी चाहिये कि जो करे सो करने दो।

आज के प्रसंग में क्या कुछ कहूं, मैं अधिक कहने की स्थिति में नहीं हूं। वे युगपुरुष, युगद्रष्टा थे। उन्होंने जिस रहस्य का उद्घाटन किया था, उसे समझने की कोशिश करें। घेरे में डालने की कोशिश करें। यथार्थ के साथ महत्त्व को स्वीकार करके चलें।

दुर्व्यसनों से मुक्त रहें !

आज के युवावर्ग, कालेज के छात्रवर्ग में दुर्व्यसन वृत्ति चल रही है, उसके लिये भी आपको खेद होना चाहिये, चिन्ता होनी चाहिये। इस वृत्ति को पैदा करने वाला कौन है ? क्या धर्म है या अध्यापक हैं ? क्या राष्ट्र के कर्णधार हैं या कौन हैं, इसका भी चिन्तन होना चाहिये। वस्तु स्थिति का विश्लेषण लेना चाहिये। एक ही वस्तु से कार्य संपादन नहीं होता। एक विकृत्ति है तो उसके पीछे कई सम्बन्ध जुड़ते हैं, इसका विश्लेषण करके किसके जिम्मे कितनी जिम्मेदारी आती है, किस वृत्ति के लिये कौन कितना उत्तर-दायित्व रखता है, इसका ज्ञान करके, इसका उपाय ढूंढेंगे तो बढ़नेवाला प्रवाह रोका जा सकता है।

युवकों को सही समाधान दें :

जिस जाति में समाज और कुल–परम्परा से दुर्व्यसनों के शिकार रूप में जीवन व्यतीत हो रहा था, वे आज जागृत होकर उत्तम संस्कारों में आ रहे हैं, तो उत्तम संस्कारों में पलने–पोसे जाने वाले कितने उत्तम होने चाहिये, उनकी जागृति कितनी आगे बढ़ी हुई होनी चाहिये ? लेकिन आज उनकी क्या दशा हो रही है, यह आपसे छिपी हुई नहीं है। इसके लिये स्कूल के विद्यार्थियों का ही सर्वथा दोष नहीं है। उनको संबल मिलना चाहिये। वे जिन संरक्षकों के चरणों में पलते–पोसे जाते हैं वैसी ही शिक्षा पाते हैं। उनका मस्तिष्क प्रस्फुटित होता है, वे धर्म, समाज और राष्ट्र के विषय में जानकारी करना चाहते हैं, कर्त्तव्य समझने की स्थिति भी रहती है। लेकिन उनके प्रारम्भिक प्रश्नों का

समाधान यदि बुजुर्ग दे पावें या संरक्षक दे पावें तो बहुत सुन्दर बात है और यदि उत्तर देने की क्षमता नहीं है तो कम से कम उनको दोषी नहीं बनावें, उनसे टकरावें नहीं और ऐसा नहीं कहें कि तुम इतनी भी बात नहीं जानते, पढ़ते नहीं हो। उनके विचारों का समाधान करते हुए उनसे कहना चाहिये कि भाई, इतनी योग्यता या क्षमता मुझमें नहीं है कि इस प्रश्न का उत्तर दे सकूं। तुम थोड़े रुक जाओ, संतों से या और किसी से पूछकर इसका समाधान करा दूंगा। यदि इस प्रकार का प्रयास किया और समाधान सही तरीके से होता चला जाता है तो वे युवक विद्यार्थी चाहे कालेजों में पढ़नेवाले हों, एक वक्त समझकर विचारों को ग्रहण कर लेंगे और इधर-उधर उलझेंगे नहीं। आपकी बातों का पूरा पालन करेंगे। कभी-कभी बुजुर्ग हिल सकते हैं लेकिन युवक नहीं हिलेंगे। यह भी अनुभव कर चुके हैं। उन युवकों को समाधान देने का प्रसंग है, समाधानदाताओं में क्षमता रहनी चाहिये। यह न हो कि स्वयं समझ नहीं सकें और उनको फतवा दे दें कि तुम नास्तिक हो, समझते नहीं हो। समझाने की क्षमता नहीं है तो साफ कह दो कि मेरे में जितनी क्षमता है उतना समझा देता हूं, आगे तुम अनुसन्धान करो, तो युवक एकाएक बागी नहीं होंगे, धर्म से विमुख नहीं होंगे। लेकिन ऐसे विद्यार्थी धर्म से विमुख होते हैं जिनके प्रारम्भिक विचारों पर आघात होता है। तभी वे आगे चल कर धर्म पर आघात पहुंचाते हैं और उनकी धर्म के सम्मुख आने की स्थिति नहीं रहती।

आध्यात्मिक क्षेत्र में अनुसन्धान हो :

लेकिन इतने मात्र से विद्यार्थियों को हतोत्साह नहीं होना चाहिये। उनको स्वयं को जागृत रह कर चलना है। वैज्ञानिक क्षेत्र में वैज्ञानिक नये-नये अनुसन्धान करके नयी-नयी चीजों की खोज कर रहे हैं तो क्यों नहीं आध्यात्मिक क्षेत्र में अनुसंधान करके शान्त क्रान्ति का सृजन करके आदर्श उपस्थित करें जिससे दुनिया को भी लाभ मिल सके। इस प्रकार की भावना युवक वर्ग, छात्र वर्ग और बुजुर्गों में एक सरीखी व्याप्त हो जाय तो कितना सुन्दरतम कार्य हो सकता है। इस प्रसंग से आप स्वयं उद्यम करें और चिन्तन, मनन की स्थिति को जीवन में स्थान दें।

इस जन्म-शताब्दी के प्रसंग से स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज साहब को हृदय में बैठा दें। उनकी उदात्त भावनाओं को, उनके विचारों को, उनके वचनों को यथार्थ रूप में समझ कर आप जिस स्थान पर

रहें, उसमें ईमानदारी के साथ जीवन को मर्यादित रखें। दूसरों के जीवन को गिराने की कोशिश करेंगे, तो प्रकाश नहीं पा सकेंगे। किसी वस्तु को यथा-स्थान रखकर निर्लिप्त भाव से उसको देखेंगे तभी उसका ज्ञान कर पायेंगे। वैसे ही मन की दशा है। मन अपनी सीमा को छोड़ कर दूसरे पदार्थों में जाता है तो वह अच्छी तरह से देख नहीं सकता। दूसरों से अलिप्त रह कर शरीर की सीमा में रह कर ही दूसरे पदार्थों का ज्ञान कर सकता है। जिस स्थान पर रहें, अपनी मर्यादा को अंगीकार करके चलें। जैसे कमल कीचड़ से निकलता है और पानी के ऊपर आता है पर वह कीचड़ और पानी से निर्लिप्त रहता है, पानी का लेप नहीं लगने देता हुआ पानी की शोभा बढ़ाता है। वैसे ही अपनी सीमा में रहकर शोभा बढ़ावें।

राष्ट्रीय चरित्र को उन्नत बनावें :

आचार्यदेव की जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में प्रण करें कि हम विभिन्न व्यवसायी हैं, कृषक हैं या नौकरी पेशे वाले हैं। जिस-जिस स्थिति के जिस-जिस स्थान पर कार्य करते हैं, उनके नियमों का ईमानदारी से पालन करेंगे और राष्ट्रीय चरित्र को उन्नत बनायेंगे। यह उन्नत तभी बनेगा, जबकि व्यक्तिगत चरित्र उन्नत होगा। व्यक्तिगत चरित्र ठीक रहेगा तो सामाजिक चारित्र भी ठीक बनेगा। सामाजिक चारित्र भव्य है तो राष्ट्रीय चारित्र भी ठीक रहेगा। यदि समाज की जड़ें खोखली हो गई तो टहनियाँ और पत्तियां भी सुरक्षित नहीं रह सकेंगी। समाज के व्यक्ति ही निर्माण कार्य चालू करें। अपने आप को ईमानदार बनाते हुए अपने आप में जागृति लें। दूसरों की सहायता मिलती है तो ठीक है, वरना अपनी स्थिति से आगे चलने की कोशिश करें।

मैं आपको यह संकेत दे रहा हूँ, चाहे कालेज के छात्रों की उपस्थिति यहां पर कम है या ज्यादा है, युवक और बुजुर्ग जितने हैं उनमें से प्रत्येक अपने-अपने जीवन में प्रण करले कि हम इन बातों को शांति और गम्भीरता से प्रत्येक व्यक्ति के सामने रखते रहेंगे। जो भाई दुर्भावना में लिप्त हैं उनको शांत, मधुर स्वर से मोड़ देने की कोशिश करेंगे। इस प्रकार का प्रण आज के प्रसंग से ग्रहण करने की कोशिश करें।

हमारा कर्त्तव्य :

मैं भी यथास्थान रहता हुआ, अपनी मर्यादाओं को सुरक्षित रखता हुआ, जिन-जिन बातों का कथन करना है उनको करता रहता हूँ, करने की

भावना रखता हूं। एक ही समय में सभी बातें नहीं कर सकता। फिर भी समय पर जो बात कहनी होती है, उसको कहता हुआ चला जाता हूं। आचार्यदेव के चरणों की क्या कुछ कहूं, यह उन्हीं आचार्यदेव की महान कृपा है कि जिन्होंने एक जंगली मनुष्य के तुल्य, पशु के समान रहने वाले व्यक्ति को अपनाकर उसको अपना जीवन भव्य बनाने का अवसर उपस्थित किया और उसमें सोचने-समझने की क्षमता हुई। हम सब इन्हीं महापुरुष की देन को लेकर चल रहे हैं।

इन्हीं स्वर्गीय आचार्यश्री के जीवन की कल्पना थी कि सभी साधु-साध्वी एक ही आचार्य के नेतृत्व में चलें। विहार, प्रायश्चित्त आदि सभी कार्य एक के ही नेतृत्व में रहें, यह कल्पना भी स्वर्गीय श्री जवाहरलाल जी म. सा. की थी। इसको अमली रूप स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलाल जी म. सा. ने दिया।

वे महापुरुष अपना कर्त्तव्य पूरा करके चले गये। हम निर्लिप्त भाव से उनको समझें। उनका भौतिक पिंड आज हमारे सामने नहीं है, लेकिन आध्यत्मिक पिंड आज भी मौजूद है, शर्त यह है कि उसको देखने की योग्यता प्राप्त कर लें। देखने की योग्यता तभी आयेगी जबकि इसको जीवन में पूरा स्थान देंगे। ऊपर कुछ और अन्दर कुछ, ऐसी भावना नहीं रखकर शुद्ध भावना से उन्हें याद करेंगे तो हमारे लिये वह प्रकाश–पुञ्ज प्रत्येक क्षण के लिये उपस्थित होगा, प्रत्येक क्षण उसको लेकर चल सकते हैं। इसी भावना के साथ अपनी बात को यहीं पर विराम देता हूं।

❀
❀
❀
❀

मोतियों की माला पहिन कर लोग फूले नहीं समाते, परन्तु उससे जीवन का वास्तविक कल्याण नहीं हो सकता। वीरवाणी रूपी अनमोल मोतियों की माला अपने गले में धारण करने वाले ही अपने जीवन को कल्याणमय बना सकते हैं।

पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.

प्रथम खण्ड

श्रीमज्जवाहराचार्य

जीवन-दर्शन

श्रीमज्जवाहराचार्य : जीवन-झांकी

● डॉ० नरेन्द्र भानावत, श्री महावीर कोटिया

जन्म :

तपोनिष्ठ साधक एवं प्रभावशाली संत श्रीमद् जवाहराचार्यजी का जन्म कार्तिक शुक्ला चतुर्थी वि. संवत् १९३२ को कस्बा थांदला (जिला झाबुआ) मध्यप्रदेश में हुआ था। इनके पिता श्री जीवराज जी कस्बे के प्रतिष्ठित सद्-गृहस्थ थे। आप कवाड़ गोत्रीय ओसवाल जैन थे। आपकी मातुश्री नाथीबाई भी इसी कस्बे के एक अन्य प्रतिष्ठित परिवार से थीं।

शिक्षा :

बालक जवाहर के भाग्य में माता-पिता का प्यार नहीं लिखा था। जब आप दो वर्ष के अबोध शिशु थे, तब माता का और पांच वर्ष की वय में पिता का साया सिर से उठ गया। पांच वर्ष के मातृ-पितृ हीन बालक जवाहर को मामा श्री मूलचन्द जी धोका का आश्रय प्राप्त हुआ। श्री मूलचन्द जी ने थांदला में ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालय में आपको पढ़ने भेजा, परन्तु विद्यालय की पढ़ाई में और वहां के वातावरण में आपका मन न लगा तथा आपने विद्यालय छोड़ दिया। विद्यालय से आपने हिन्दी तथा गुजराती भाषाएँ व गणित का कुछ प्रारम्भिक ज्ञान ही प्राप्त किया।

व्यवसाय :

श्री मूलचन्द जी थांदला में ही कपड़े का व्यवसाय [illegible] वर्ष के बालक जवाहर को भी उन्होंने कपड़े की दूकान [illegible] किया। बालक जवाहर ने भी अपने आपको पूर्ण [illegible] इस धन्धे में लगाया और शीघ्र ही इस व्यवसाय में अच्छी [illegible]। मामा श्री मूलचंद जी भी बड़े संतुष्ट थे। उन्होंने धीरे-धीरे [illegible]

लालजी पर छोड़ दिया । सम्भवतः जवाहरलालजी को उत्तरदायित्व
देने की अन्तःप्रेरणा, प्रकृति ही उन्हें दे रही थी । कभी-कभी ऐसा
घटित हो जाता है जिसका कारण अनुत्तरित ही रह जाता है । ऐसा
जब कि तेरह वर्ष की वय भी जवाहरलालजी पूरी नहीं कर पाए थे अ
श्री मूलचन्द जी तेतीस वर्ष की अल्प आयु में परमधाम सिधार गए
उत्तरदायित्व को मामाजी ने धीरे-धीरे किशोर वय बालक को सौंपना
किया था, वह सम्पूर्ण दायित्व ही उनके बाल कंधों पर एकाएक आ प

सन्त-सान्निध्य :

मामा श्री मूलचन्दजी अपने पीछे विधवा पत्नी तथा पांच वर्ष
मात्र पुत्र को छोड़ गए थे । इनके पालन-पोषण का एक मात्र उत्त
अब किशोर जवाहरलाल पर था । वे अपने इस उत्तरदायित्व का
करने हेतु दूकान का काम अवश्य करते थे परन्तु उनका मन अब स
उदासीन रहने लगा था । मामा की असामयिक मृत्यु ने उनके म
उद्वेलित कर दिया था । जीवन की क्षणभंगुरता तथा सांसारिक जी
दुःख-बहुलता ने उन्हें वैराग्योन्मुख कर दिया । विधवा मामी तथा प
असहाय ममेरे भाई के कारण वे कुछ समय असमंजस में पड़े रहे । प
एक समाधान उनके मन में कौंध गया—जब मैं पांच वर्ष का मातृ-वि
हो गया था, तब क्या हुआ ? संसार में प्रत्येक प्राणी अपना भाग्य
आता है । इन विचारों के आते ही उनकी दुविधा दूर हो गई । वैराग
करने का निश्चय दृढ़ हो गया ।

संयोग से उन्हीं दिनों थांदला में श्री राजमलजी महाराज
शिष्य मुनि श्री घासीलाल जी तथा श्री मगनलाल जी और श्री घासीलाल
सा. के शिष्य श्री मोतीलालजी व श्री देवीलाल जी पधारे थे । जवाहर
ने इस अवसर का पूरा लाभ उठाया । उनका मन अब वैराग्य ग्रहण क
छटपटाने लगा था ।

दृढ़ निश्चय कर लेने के पश्चात् जवाहरलालजी ने अ
श्री धनराज जी से मुनि दीक्षा लेने की आज्ञा मांगी । धनराजजी
यह विचार पसन्द नहीं आया । उनका विचार हुआ कि अभी यह
अतः साधुओं के बहकाने में आकर ऐसा कह रहा है । उन्होंने जवा
को डांटा, फटकारा तथा उनका साधुओं के पास आना-जाना बन्द क
अपने इष्ट-मित्रों के माध्यम से भी उन्होंने जवाहरलाल जी को डराय

। साधुओं के बारे में ऐसी मनगढ़ंत बातें प्रचारित कराईं ताकि जवाहरलाल मन में साधुओं से भयभीत रहने का भाव उत्पन्न हो सके। धनराज जी डराने-धमकाने तथा प्रलोभन के सभी प्रयत्न निष्फल रहे और जवाहर-र जी का वैराग्य ग्रहण करने का भाव दृढ़तर होता गया।

ाग्य :

समय निकलता गया। जवाहरलाल जी अब सोहलवें वर्ष में प्रवेश कर थे। थांदला के पास ही के कस्बे लींवड़ी में कुछ मुनिराज पधारे। अवसर कर जवाहरलाल जी लींवड़ी पहुंच गए। धनराज जी को जब सारी स्थिति त हुई तो उन्होंने एक चाल चली। थांदला के सरपंच शाहजी श्री प्यार-दजी से एक पत्र जवाहरलाल के नाम लिखवाया, जिसमें यह आश्वासन था उन्हें मुनि-दीक्षा की आज्ञा दिलवा दी जाएगी। यह आश्वासन पाकर जवा-लाल जी पुनः थांदला लौट आए; परन्तु दीक्षा की आज्ञा उन्हें फिर भी ीं मिल सकी। अब पुनः जवाहरलाल जी अवसर की इन्तजारी करने लगे। होंने चुपचाप थांदला से पलायन का निश्चय कर लिया। भैरा नाम के धोबी घोड़ा उन्होंने किराये पर तय किया और इस प्रकार अवसर पाकर वे ः लींवड़ी जा पहुंचे। धनराज जी भी तुरन्त वहां पहुंच गए; परन्तु किशोर ाहर को अपने पथ से डिगाने में वे असमर्थ रहे। लाचार हो उन्होंने दीक्षा े की आज्ञा उन्हें प्रदान कर दी। मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया वि. संवत् १९४८ । श्री जवाहरलाल जी ने जैन भागवती दीक्षा अंगीकार की। आप श्री मगन-ाल जी महाराज सा. के शिष्य बने। इस समय उनकी आयु मात्र सोलह र्ष की थी।

नि-जीवन :

साधुत्व ग्रहण करने के पश्चात् मुनि श्री जवाहरलाल जी ने अपने गुरु ी मगनलाल जी महाराज सा. से शास्त्रों का अध्ययन आरम्भ किया परन्तु र्भाग्य यहां भी साथ लगा रहा। उन्हें दीक्षित हुए मुश्किल से डेढ़ मास ही ी पाया था कि श्री मगनलाल जी महाराज सा. का स्वर्गवास हो गया। गुरु ी इस असामयिक मृत्यु ने पुनः उनके मानस को बुरी तरह झकझोर दिया। प्रायः उदासीन रहने लगे और एकान्त में बैठकर सोचते रहते। इससे उनके ानसिक स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ा तथा उनका चित्त विक्षिप्त हो गया। ह समाचार सुनकर धनराज जी उन्हें घर लिवा ले जाने के लिए आए। इस ठिन समय में मुनि श्री मोतीलाल जी ने उन्हें बड़े धैर्य से संभाला तथा धनराजजी

को समझा-बुझाकर वापिस भेजा। युवा मुनि का यथोचित इलाज कराया गया और उन्होंने कुछ ही समय में स्वास्थ्य लाभ किया।

संवत् १९४९ में धार चातुर्मास के अवसर पर मुनि श्री की प्रतिभा प्रकट होने लगी। इस समय उनका झुकाव अध्ययन-मनन तथा काव्य-रचना की ओर ही मुख्यतः हो गया। धीरे-धीरे अपनी कवित्व प्रतिभा, बुद्धिमत्ता, व्याख्यान-शक्ति आदि से उन्होंने लोगों को प्रभावित करना प्रारंभ किया। उनकी प्रारम्भिक अवस्था में ही उनकी प्रतिभा से प्रभावित होने वालों में पूज्य श्री हुक्मीचन्द्र जी महाराज सा. की सम्प्रदाय के तीसरे पाट को सुशोभित करने वाले आचार्य श्री उदयसागर जी महाराज सा. तथा बाद में चतुर्थ आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित होने वाले श्री चौथमल जी महाराज सा. भी थे। उन्होंने इस होनहार किशोर को पहचान कर मुनि श्री घासीराम जी को रामपुरा जाने तथा शास्त्रमर्मज्ञ श्रावक श्री केसरीमल जी से उन्हें शास्त्रज्ञान कराने का परामर्श दिया।

दो वर्ष की अल्प अवधि में ही मुनि श्री एक सफल व प्रभावशाली उपदेशक के रूप में जन-मानस में प्रतिष्ठित होने लगे थे। उनकी प्रतिभा बहु-मुखी थी और वे नए विचारों को जांचने-विचारने तथा खरे उतरने पर अप-नाने को तत्पर रहते थे। संवत् १९५५ में खाचरौद चातुर्मास के दिनों में आपको 'संग्रहणी' रोग हो गया। इलाज कराते रहने पर भी रोग बढ़ता ही गया। तभी संयोगवश आपने छह उपवास एक साथ कर डाले और इसके चमत्कारिक प्रभाव-स्वरूप आप रोगमुक्त हो गए। इस घटना से मुनिश्री का प्राकृतिक चिकित्सा से साक्षात् परिचय हुआ और कालान्तर में इसमें उनकी आस्था बढ़ती ही गई। अपने प्रवचनों में वे लोगों को प्रायः उपवास, तपस्या आदि प्राकृतिक चिकित्सा के बारे में कहते रहते थे।

संवत् १९५६ में जब श्री चौथमल जी महाराज सा. सम्प्रदाय के चतुर्थ आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित हुए तो उन्होंने अपनी सम्प्रदाय के विभिन्न प्रान्तों में विचरण करने वाले अनेक साधुओं के पथ-प्रदर्शन व देखरेख के लिए चार योग्य साधुओं को नियुक्त किया। इनमें एक, युवा साधु श्री जवाहरलालजी भी थे, जो उस समय मात्र २४ वर्ष की अवस्था के थे। यह उनकी प्रतिभा का आदर था।

आचार्य-पद :

मुनि श्री जवाहरलाल जी की ख्याति अब दिनोंदिन बढ़ने लगी थी।

उनकी व्याख्यान-शैली हृदयग्राही थी उनका कहानी कहने का ढंग बड़ा रोचक था। उनकी इस चमत्कारिक प्रवचनकला ने अनेक लोगों को नया प्रकाश दिया, अन्धविश्वासों पर कुठाराघात किया, सामाजिक-सुधारों का मार्ग प्रशस्त किया। कसाइयों तक ने हिंसा का परित्याग किया तथा पूर्णतः अहिंसक जीवन जीने का वचन दिया। पशुबलि को रोकने, दलित-पीड़ित और शोषित अस्पृश्यों को उठाने में मुनिश्री की वाणी बड़ी प्रभावक सिद्ध हुई। ऐसे सन्त को पाकर भक्तजन प्रमुदित थे और सम्प्रदाय के आचार्य तथा अन्य सभी सन्तगण गौरवान्वित अनुभव करते थे। उनकी योग्यता तथा तपोनिष्ठा से प्रभावित होकर ही श्री हुक्मचन्द जी महाराज सा. की सम्प्रदाय के पांचवें पाट को सुशोभित करने वाले आचार्य श्री श्रीलाल जी महाराज सा. ने उन्हें सवत् १९७१ में अपने सम्प्रदाय के सन्तजन के पथ-प्रदर्शन के लिए एक गणी के रूप में नियुक्त किया और अन्ततः कार्तिक शुक्ला द्वितीया, संवत् १९७५ को उन्हें अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। वाद में चैत्र कृष्णा नवमी बुधवार, संवत् १९७५ तदनुसार २६ मार्च १९१९ को रतलाम में आपको युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। तत्पश्चात आचार्यश्री की आज्ञा से आपने उदयपुर की ओर प्रस्थान किया तथा संवत् १९७६ का चातुर्मास काल उदयपुर में व्यतीत किया। चातुर्मास के पश्चात् आप साम्प्रदायिक एकता सम्मेलन में भाग लेने अजमेर पधारे। इस सम्मेलन के पश्चात् आचार्यश्री श्रीलाल जी महाराज सा. व्यावर होते हुए जैतारण नामक स्थान पर पधारे। यहीं आषाढ़ शुक्ला तृतीया, संवत् १९७७ ब्राह्ममुहूर्त में आपने देह त्याग किया। युवाचार्य श्री जवाहरलाल जी को यह दुखद समाचार भीनासर में प्राप्त हुआ। उस समय आप तीन दिवसीय उपवास व्रत में थे। इस दुखद वेला में मन की शान्ति के लिए आपने उपवास क्रमशः चालू रखा तथा वाद में लोगों के वहुत अनुनय-विनय के कारण आठ दिन पश्चात् उपवास समाप्त किया। श्री श्रीलाल जी महाराज सा. के देहावसान से सम्प्रदाय के आचार्यत्व का भार आप पर आ पड़ा। आषाढ़ शुक्ला तृतीया, संवत् १९७७ को आप श्री हुक्मीचन्द जी महाराज सा. की सम्प्रदाय के छठे आचार्य घोषित किए गए।

आचार्य-जीवन :

आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के वाद का आपका प्रथम चातुर्मास बीकानेर में सम्पन्न हुआ। आपके उद्बोधन से प्रभावित होकर समाज के गण्यमान्य व्यक्तियों द्वारा एक सभा में स्व. श्री श्रीलाल जी महाराज सा. की स्मृति में 'श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन गुरुकुल' स्थापित करने का निश्चय किया

को समझा-बुझाकर वापिस भेजा । युवा मुनि का यथोचित इलाज कराया गया और उन्होंने कुछ ही समय में स्वास्थ्य लाभ किया ।

संवत् १९४९ में धार चातुर्मास के अवसर पर मुनि श्री की प्रतिभा प्रकट होने लगी । इस समय उनका झुकाव अध्ययन-मनन तथा काव्य-रचना की ओर ही मुख्यत: हो गया । धीरे-धीरे अपनी कवित्व प्रतिभा, बुद्धिमत्ता, व्याख्यान-शक्ति आदि से उन्होंने लोगों को प्रभावित करना प्रारंभ किया । उनकी प्रारम्भिक अवस्था में ही उनकी प्रतिभा से प्रभावित होने वालों में पूज्य श्री हुक्मीचन्द्र जी महाराज सा. की सम्प्रदाय के तीसरे पाट को सुशोभित करने वाले आचार्य श्री उदयसागर जी महाराज सा. तथा बाद में चतुर्थ आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित होने वाले श्री चौथमल जी महाराज सा. भी थे। उन्होंने इस होनहार किशोर को पहचान कर मुनि श्री घासीराम जी को रामपुरा जाने तथा शास्त्रमर्मज्ञ श्रावक श्री केसरीमल जी से उन्हें शास्त्रज्ञान कराने का परामर्श दिया ।

दो वर्ष की अल्प अवधि में ही मुनि श्री एक सफल व प्रभावशाली उपदेशक के रूप में जन-मानस में प्रतिष्ठित होने लगे थे । उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी और वे नए विचारों को जांचने-विचारने तथा खरे उतरने पर अपनाने को तत्पर रहते थे । संवत् १९५५ में खाचरौद चातुर्मास के दिनों में आपको 'संग्रहणी' रोग हो गया । इलाज कराते रहने पर भी रोग बढ़ता ही गया । तभी संयोगवश आपने छह उपवास एक साथ कर डाले और इसके चमत्कारिक प्रभाव-स्वरूप आप रोगमुक्त हो गए। इस घटना से मुनिश्री का प्राकृतिक चिकित्सा से साक्षात् परिचय हुआ और कालान्तर में इसमें उनकी आस्था बढ़ती ही गई । अपने प्रवचनों में वे लोगों को प्राय: उपवास, तपस्या आदि प्राकृतिक चिकित्सा के बारे में कहते रहते थे ।

संवत् १९५६ में जब श्री चौथमल जी महाराज सा. सम्प्रदाय के चतुर्थ आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित हुए तो उन्होंने अपनी सम्प्रदाय के विभिन्न प्रान्तों में विचरण करने वाले अनेक साधुओं के पथ-प्रदर्शन व देखरेख के लिए चार योग्य साधुओं को नियुक्त किया । इनमें एक, युवा साधु श्री जवाहरलालजी भी थे, जो उस समय मात्र २४ वर्ष की अवस्था के थे । यह उनकी प्रतिभा का आदर था ।

आचार्य-पद :

मुनि श्री जवाहरलाल जी की ख्याति अब दिनोंदिन बढ़ने लगी थी।

उनकी व्याख्यान-शैली हृदयग्राही थी उनका कहानी कहने का ढंग बड़ा रोचक था। उनकी इस चमत्कारिक प्रवचनकला ने अनेक लोगों को नया प्रकाश दिया, अन्धविश्वासों पर कुठाराघात किया, सामाजिक-सुधारों का मार्ग प्रशस्त किया। कसाइयों तक ने हिंसा का परित्याग किया तथा पूर्णतः अहिंसक जीवन जीने का वचन दिया। पशुबलि को रोकने, दलित-पीड़ित और शोषित अस्पृश्यों को उठाने में मुनिश्री की वाणी बड़ी प्रभावक सिद्ध हुई। ऐसे सन्त को पाकर भक्तजन प्रमुदित थे और सम्प्रदाय के आचार्य तथा अन्य सभी सन्तगण गौरवान्वित अनुभव करते थे। उनकी योग्यता तथा तपोनिष्ठा से प्रभावित होकर ही श्री हुक्मचन्द जी महाराज सा. की सम्प्रदाय के पांचवें पाट को सुशोभित करने वाले आचार्य श्री श्रीलाल जी महाराज सा. ने उन्हें सवत् १९७१ में अपने सम्प्रदाय के सन्तजन के पथ-प्रदर्शन के लिए एक गणी के रूप में नियुक्त किया और अन्ततः कार्तिक शुक्ला द्वितीया, संवत् १९७५ को उन्हें अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। बाद में चैत्र कृष्णा नवमी बुधवार, संवत् १९७५ तदनुसार २६ मार्च १९१९ को रतलाम में आपको युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। तत्पश्चात आचार्यश्री की आज्ञा से आपने उदयपुर की ओर प्रस्थान किया तथा संवत् १९७६ का चातुर्मास काल उदयपुर में व्यतीत किया। चातुर्मास के पश्चात् आप साम्प्रदायिक एकता सम्मेलन में भाग लेने अजमेर पधारे। इस सम्मेलन के पश्चात् आचार्यश्री श्रीलाल जी महाराज सा. व्यावर होते हुए जैतारण नामक स्थान पर पधारे। यहीं आषाढ़ शुक्ला तृतीया, संवत् १९७७ ब्राह्ममुहूर्त में आपने देह त्याग किया। युवाचार्य श्री जवाहरलाल जी को यह दुखद समाचार भीनासर में प्राप्त हुआ। उस समय आप तीन दिवसीय उपवास व्रत में थे। इस दुखद वेला में मन की शान्ति के लिए आपने उपवास क्रमशः चालू रखा तथा बाद में लोगों के बहुत अनुनय-विनय के कारण आठ दिन पश्चात् उपवास समाप्त किया। श्री श्रीलाल जी महाराज सा. के देहावसान से सम्प्रदाय के आचार्यत्व का भार आप पर आ पड़ा। आषाढ़ शुक्ला तृतीया, संवत् १९७७ को आप श्री हुक्मीचन्द जी महाराज सा. की सम्प्रदाय के छठे आचार्य घोषित किए गए।

आचार्य-जीवन :

आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के बाद का आपका प्रथम चातुर्मास बीकानेर में सम्पन्न हुआ। आपके उद्बोधन से प्रभावित होकर समाज के गण्यमान्य व्यक्तियों द्वारा एक सभा में स्व. श्री श्रीलाल जी महाराज सा. की स्मृति में 'श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन गुरुकुल' स्थापित करने का निश्चय किया

गया। इसके लिए विपुल धनराशि के आश्वासन प्राप्त हुए पर वह योजना तत्काल मूर्तरूप नहीं ले सकी। सात वर्ष पश्चात् श्री श्वे० साधुमार्गी जैन हित-कारिणी संस्था की स्थापना की गई तथा इसके माध्यम से धार्मिक जागरण, शैक्षणिक विकास और सामाजिक हित के अनेक कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए। यह संस्था आज भी उक्त क्षेत्रों में अग्रणी है तथा इसके द्वारा सत्साहित्य प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण कार्य भी अनवरत किया जाता रहा है।

प्रेरणा और प्रभाव :

आचार्यश्री के प्रेरणा-परक उद्‌बोधनों से स्थापित अन्य संस्थाएं हैं—हितेच्छु श्रावक मण्डल रतलाम, सार्वजनिक जीवदया मण्डल घाटकोपर (बम्बई), जैन छात्रावास जलगांव (महाराष्ट्र) आदि। सार्वजनिक जीवदया मण्डल की पशुशालाओं में आज भी अनेक पशुओं का पालन हो रहा है। दूध देना बन्द कर देने के पश्चात् पशुओं के पालन के लिए संस्था की कई शाखाएं पनवेल, जलगांव, इगतपुरी, गोटी आदि स्थानों में कार्यरत हैं।

आचार्यश्री अपने समय के अत्यधिक प्रभावशाली वक्ता, दूरदर्शी अगुआ तथा विचारक विद्वान थे। राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए किए जाने वाले संघर्ष के विषम दिनों में वे न केवल स्वयं खादी के वस्त्र पहनते थे अपितु अपने अनुयायियों को खद्दर पहनने के प्रेरणापरक उद्‌बोधन देते थे तथा "परतन्त्रता पाप है," "बिना स्वतन्त्र हुए कोई भी जाति धर्म का भी ठीक तरह पालन नहीं कर सकती"— ऐसी उद्‌घोषणाएँ अपने प्रवचनों में करते रहते थे। इसी कारण संवत् १९८८ में देहली चातुर्मास के समय समाज को उनकी अंग्रेज सरकार द्वारा गिरफ्तारी की भी आशंका हो गई थी, परन्तु आचार्य श्री का सिंहनाद अविराम होता रहा।

चाहे हरिजन-उद्धार का कार्य हो, दुर्भिक्ष राहत का कार्यक्रम हो, शोषित-पीड़ित की सूदखोरी से मुक्ति का प्रश्न हो या दूषित सामाजिक कुप्रथाओं के विरोध की बात हो, आचार्यश्री जीवन पर्यन्त इनके लिए संघर्ष करते रहे तथा प्राणिमात्र के कल्याण के लिए अपनी वाणी तथा शक्ति का उपयोग करते रहे। उनकी तेजस्विता, प्रखर प्रतिभा तथा व्यापक प्रभाव का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि राष्ट्र के तत्कालीन श्रेष्ठ पुरुषों यथा महात्मा गांधी, पं० मदन मोहन मालवीय, सरदार वल्लभभाई पटेल, विनोबा भावे, लोकमान्य तिलक, श्री विट्ठलभाई पटेल, श्रीमती कस्तूरबा गांधी, सेनापति बापट, प्रो० राममूर्ति, श्री जमनालाल बजाज, सर मनुभाई मेहता, हिन्दी

के सुप्रसिद्ध कवि और लोक साहित्य के अध्येता श्री रामनरेश त्रिपाठी, काका कालेलकर, शेख अताउल्लाशाह बुखारी तथा शेख हबीबुल्ला शाह बुखारी, पट्टाभि सीतारामैय्या, श्री ठक्कर बापा, श्रीमती रामेश्वरी नेहरु आदि ने उनके दर्शन लाभ करने, उपदेश श्रवण करने तथा विचार-विमर्श करने को अत्यधिक महत्त्व का कार्य माना। आचार्य श्री के प्रभावक व्यक्तित्व का अनुमान उनकी शिष्य सम्पदा से भी लगाया जा सकता है। उनके सानिध्य में लगभग २५ दीक्षाएँ सम्पन्न हुईं। संवत् १९४९ से लेकर १९९९ तक के पचास-इक्कावन वर्ष के दीर्घ साधनाकाल में उन्होंने राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र तथा दिल्ली प्रदेश के विशाल भूभाग में लोगों को धर्मलाभ देने के लिए पद-विहार किया तथा अपने चातुर्मास किए। उनका व्यक्तित्व, व्यक्ति से बढ़कर संस्था का रूप ले सका था, जिसके माध्यम से समाज-सुधार, धर्म प्रचार, ज्ञानदान, लोक कल्याणकारी संस्थाओं की स्थापना आदि महत्त्वपूर्ण हितकारी कार्य सम्पन्न हुए।

संवत् १९८१ में जलगांव चातुर्मास की अवधि में आचार्यश्री की हथेली में एक छोटी सी फुनसी निकलकर पकने लगी तथा उसने एक भयंकर फोड़े का रूप धारण कर लिया। रोग की निरन्तर बढ़ती अवस्था ने उन्हें जीवन की नश्वरता का अहसास करा दिया और उन्हें अपने उत्तरदायित्व से धीरे-धीरे मुक्त होने का संकेत सा दे दिया। तदनुसार उन्होंने उपस्थित समाज से विचार-विमर्श करके मुनि श्री गणेशीलाल जी महाराज को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। श्री गणेशीलालजी का युवाचार्य पद महोत्सव लगभग ९ वर्ष बाद फाल्गुन शुक्ला ३, संवत् १९९० को जावद में सम्पन्न हुआ। संवत् १९९२ में रतलाम चातुर्मास के अवसर पर आचार्यश्री ने अपने संघ की देखरेख तथा व्यवस्था आदि का उत्तरदायित्व श्री गणेशीलाल जी महाराज को सौंप दिया तथा तत्सम्बन्धी अधिकार-पत्र प्रदान किया।

आचार्य श्री जवाहरलाल जी की अवस्था इस समय लगभग ६० वर्ष की हो चुकी थी। वृद्धावस्था की अशक्तता तथा शारीरिक दुर्बलता बढ़ने लगी थी फिर भी आचार्यश्री अपने मिशन में दत्तचित्त होकर लगे रहे। पूर्ववत पद-विहार, प्रवचन आदि का क्रम बना रहा। संवत् १९९७ में बगड़ी चातुर्मास के अवसर पर उनकी अशक्तता अधिक बढ़ गई थी। अब उनके स्थिरवास का समय आ गया था। अजमेर, ब्यावर, रतलाम, उदयपुर, जलगांव, भीनासर, बीकानेर, जोधपुर आदि स्थानों के लोग उनसे अपने-अपने नगर में स्थिरवास करने की बार-बार प्रार्थना कर रहे थे। वे बीकानेर की ओर विहार करने का वचन दे चुके थे। मार्ग में बलुंदा नामक स्थान पर वे पुनः अस्वस्थ हो

गए । कुछ दिन वहां रुककर तथा स्वास्थ्य लाभ कर वे नोखा, देशनोक, उदयरामसर, भीनासर होकर बीकानेर पधारे । संवत् १९९८ का चातुर्मास काल उन्होंने भीनासर में बिताया ।

महाप्रस्थान :

भीनासर चातुर्मास की अवधि में अपनी अशक्तता के कारण वे प्रवचन करने में भी असमर्थ थे । वे व्याख्यान-सभा में आकर मौन बैठे रहते । उनकी इस मौन परवशता से भीनासर के श्रद्धालु सेठ श्री चम्पालाल जी बांठिया के मन में आचार्यश्री के प्रवचनों के प्रकाशन का विचार आया । तदनुसार श्री पं० शोभाचन्द्र जी भारिल्ल के सम्पादकत्व में 'जवाहर किरणावली' के कई भागों का प्रकाशन किया गया । चातुर्मास के बाद आप भीनासर से बीकानेर पधार गए थे । बीकानेर में ही मार्गशीर्ष शुक्ला २ तदनुसार १८ फरवरी, १९४२ रविवार को आपकी दीक्षा स्वर्ण जयन्ती (दीक्षा के पचासवें वर्ष का उत्सव) बड़ी धूमधाम से मनाई गई । बीकानेर से आचार्यश्री पुनः भीनासर आ गए तथा सेठ श्री चम्पालाल जी बांठिया के विशाल भवन में ठहरे । यहीं ३० मई १९४२ को उनको पक्षाघात का आक्रमण हुआ तथा उनका दाहिना भाग शिथिल हो गया । कुछ ही दिन बाद उनकी कमर में पीछे बाईं ओर एक जहरी फोड़ा (Carbuncle) हो गया । इस फोड़े के ठीक होने में लगभग छह मास का समय लगा । इस सारी अवधि में आचार्य श्री असह्य वेदना को शान्त भाव से सहन करते रहे । इसी अस्वस्थता की स्थिति में उनका अन्तिम चातुर्मास भीनासर में व्यतीत हुआ । दर्शनार्थियों का तांता लगा रहा । सम्भवतः श्रद्धालु भक्तों को यह अहसास हो गया था कि आचार्यश्री के ये अब अन्तिम दर्शन ही हैं । उन्हें भी अपना अन्त सन्निकट लगता था । जुलाई १९४३ के प्रारम्भ में ही उनकी गर्दन पर भयंकर फोड़ा निकल आया तथा शरीर के अन्य भागों पर भी उसी तरह के छोटे-छोटे कई अन्य फोड़े निकल आए । आषाढ़ शुक्ला अष्टमी दि० १० जुलाई १९४३ को उनकी दशा अधिक कारुणिक हो गई । युवाचार्य श्री गणेशीलाल जी महाराज ने पूज्य श्री के कथनानुसार तथा अन्य मुनियों एवं श्री संघ की सहमति से लगभग पौने बारह बजे तिविहार संथारा तथा पुनः एक बजे चौविहार संथारा करा दिया । उसी दिन पांच बजे के लगभग उनकी महान आत्मा ने नश्वर शरीर का बन्धन त्यागकर महाप्रस्थान किया । अन्तिम समय उनके मुखमण्डल पर एक दिव्य शान्ति व सौम्यभाव विराजमान था । लगता था वे गहरी समाधि में लीन हैं । ●

आचार्यश्री के सान्निध्य में सम्पन्न दीक्षाएं

नाम	दीक्षा-संवत्	दीक्षा-स्थल
श्री राधालाल जी म०	१९५६	खाचरौद
श्री घासीलाल जी म०	१९५८	तरावलीगढ़
श्री गणेशीलाल जी म०	१९६२	उदयपुर
श्री पन्नालाल जी म०	१९६२	उदयपुर
श्री लालचन्द जी म०	१९६६	जावरा
श्री वख्तावरमल जी म०	१९६९	चिंचवड़
श्री सूरजमल जी म०	१९७५	हिवडा
श्री भीमराज जी म०	१९७९	सतारा
श्री सिरेमल जी म०	१९७९	सतारा
श्री जीवनलाल जी म०	१९७९	पूना
श्री जवाहरमल जी म०	१९७९	पूना
श्री केसरीमल जी म०	१९८०	घाटकोपर (बम्बई)
श्री चुन्नीलाल जी म०	१९८१	जलगांव
श्री वीरवल जी म०	१९८१	जलगांव
श्री सुगालचन्द जी म०	१९८३	ब्यावर
श्री रेखचन्द जी म०	१९८५	चूरू
श्री हमीरमल जी म०	१९८५	चुरू
श्री चुन्नीलाल जी म०	१९८९	जोधपुर
श्री गोकुलचन्द जी म०	१९८९	जोधपुर
श्री मोतीलाल जी म०	१९८९	जैतारण
श्री फूलचन्द जी म०	१९९१	कपासन
सुश्री झम्मुवाई म०	१९९२	रतलाम
सुश्री सम्पतवाई म०	१९९२	रतलाम
श्री ईश्वरचन्द जी म०	१९९९	भीनासर
श्री नेमीचन्द जी म०	१९९९	भीनासर

आचार्यश्री के चातुर्मास

विक्रम सं०	चातुर्मास-स्थान	विक्रम सं०	चातुर्मास-स्थान
१९४९	धार	१९७५	हिवडा
१९५०	रामपुरा	१९७६	उदयपुर
१९५१	जावरा	१९७७	बीकानेर
१९५२	थांदला	१९७८	रतलाम
१९५३	शिवगढ़	१९७९	सतारा
१९५४	सैलाना	१९८०	घाटकोपर (वम्बई)
१९५५	खाचरौद	१९८१	जलगांव
१९५६	खाचरौद	१९८२	जलगांव
१९५७	महीदपुर (उज्जैन)	१९८३	ब्यावर
१९५८	उदयपुर	१९८४	भीनासर
१९५९	जोधपुर	१९८५	सरदारशहर
१९६०	ब्यावर	१९८६	चूरू
१९६१	बीकानेर	१९८७	बीकानेर
१९६२	उदयपुर	१९८८	देहली
१९६३	गंगापुर	१९८९	जोधपुर
१९६४	रतलाम	१९९०	उदयपुर
१९६५	थांदला	१९९१	कपासन
१९६६	जावरा	१९९२	रतलाम
१९६७	इन्दौर	१९९३	राजकोट
१९६८	अहमदनगर	१९९४	जामनगर
१९६९	जुन्नेर	१९९५	मोरवी
१९७०	घोड़नदी	१९९६	अहमदाबाद
१९७१	जामगांव	१९९७	वगड़ी
१९७२	अहमदनगर	१९९८	भीनासर
१९७३	घोड़नदी	१९९९	भीनासर
१९७४	मीरी		

धर्मनायक जवाह

● मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी 'कमल

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. ऐसे विचक्षण व्यक्तित्व के ध
एवं राष्ट्रधर्म के प्रवर्तक थे कि स्वयं महात्मा गांधी ने उनकी मुक्तकंठ
सराहना की । गुजराती दैनिक "संदेश" में उनकी सराहना इस शीर्षक से छ
थी कि देश में दो जवाहर हैं—एक धर्मनायक जवाहर (आचार्य श्री जवाह
लाल जी म. सा.) तथा दूसरे राष्ट्रनायक जवाहर (पं जवाहरलाल नेह
और ये दोनों जवाहर अपने अपने क्षेत्र में राष्ट्र को अपनी अमूल्य सेव
प्रदान कर रहे हैं । अपने गूढ़ चिन्तन से उन्होंने धर्म की विशद व्याख्या
तथा समाज को कुंठाग्रस्त धारणाओं से दूर हटा कर राष्ट्रीयता को धर्म
बनाने का उपदेश दिया । राष्ट्रधर्म आचार्यश्री के मौलिक चिन्तन
नवनीत था ।

धर्म के विराट् रूप से साक्षात्कार :

आचार्य श्री का दीक्षा-काल उस समय देश में प्रमुख रूप से
त्रता का संघर्ष-काल था । महात्मा गांधी के नेतृत्व में विदेशी शासन से
पाने का कठोर प्रयास चल रहा था । स्वयं गांधी जी के जीवन-निर्माण
जैन तत्त्ववेत्ता श्रीमद् राजचन्द्र का बड़ा प्रभाव पड़ा था और इसी पृष्ठ
के साथ उन्होंने देश में अहिंसक आन्दोलन का सूत्रपात किया । अहिंस
श्रेष्ठ पालन आत्म-बल के धरातल पर ही संभव हो सकता है एवं आ
की साधना धर्म के विराट् रूप को आत्मसात् किये बिना सफल नहीं हो
है । धर्मनायक जवाहर ने उस समय धर्म के उस विराट् रूप से साक्ष
किया, जो समाज या राष्ट्र को ही नहीं, समस्त विश्व को अपने में स
कर लेने की क्षमता रखता है ।

एक प्रखर उपदेष्टा के रूप में आचार्यश्री ने अपनी मौलिक
में धर्म के इस विराट् रूप का दर्शन भी कराया । उन्होंने बताया कि

व्यक्ति की निष्ठा पर आधारित होता है, किन्तु वह व्यक्ति की ही सीमा तक संकुचित नहीं होता । व्यक्ति के ही माध्यम से वह ग्राम, नगर, राष्ट्र एवं सारे संसार को भी प्रभावित करता है । राष्ट्रधर्म के निरूपण में उन्होंने दस धर्म का विश्लेषण किया तथा सामान्य जन को भी यह बोध कराया कि विशुद्ध धर्म के धरातल पर खड़े होकर राष्ट्रीयता का आह्वान करो ।

राष्ट्रीयता की धारा को सजीव सम्बल :

रूढ़ परम्पराओं की छाया में पलती आ रही धार्मिक मान्यताओं को आचार्य श्री ने एक जागृत स्वर प्रदान किया तथा उस रूढ़ता की काई को हटा कर निर्मल जल के रूप में उन्होंने दिखाया कि धर्म ही के प्रगतिशील स्वरूप के आधार पर राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता को सजीव सम्बल दिया जा सकता है । धार्मिक दृष्टि से उन्होंने सिद्ध किया कि रेशमी वस्त्र पवित्र नहीं होता, बल्कि हिंसा की क्रूरता से रंगा हुआ होता है । शुद्ध होता है खादी का वस्त्र जो अहिंसा का प्रतीक है । स्वयं उन्होंने खादी अपनाई तथा जैन समाज में खादी का व्यापक प्रचार उन्हीं के समर्थन से हुआ । खादी के परिवेश में उन्होंने समग्र रूप से सादगी को अपनाने का आग्रह किया ।

भारतीय स्वतंत्रता–संघर्ष की जो दार्शनिक भूमिका थी, उसके निर्माण एवं पुष्टिकरण का बहुत कुछ श्रेय आचार्य श्री को दिया जा सकता है जिन्होंने देश के सुदूर प्रान्तों में कठिन पद–विहार करते हुए राष्ट्र–धर्म की जागृति का शंखनाद किया । स्वदेशी की भावना का आचार्यश्री ने अथक प्रचार किया ।

दयामूर्ति आचार्य :

करुणा मानवता का स्वाभाविक धर्म माना गया है किन्तु आचार्य श्री के समय में अहिंसा की ही कुछ ऐसी संकुचित व्याख्या की जाने लगी कि प्राणों की रक्षा करने में पाप है । रक्षा को पाप बताना करुणा के सिद्धान्त को नकारना था—अहिंसा के स्वरूप को भ्रान्ति से रंगना था । अहिंसा का निषेध रूप "नहीं मारना" है, किन्तु उसका विधि–रूप होता है "रक्षा करना ।" जैन साधु को इसी दृष्टि से एक काया का ही नहीं, छः काया का रक्षक कहा गया है । आचार्यश्री ऐसे दयामूर्ति थे कि उन्होंने अहिंसा के रक्षा–रूप को नकारने के भ्रम का विध्वंसन तथा सद्धर्म का मंडन किया । इस करुणा की धारा प्रवाहित करने की उनकी शैली इतनी ओजपूर्ण थी कि अनेकानेक व्यक्तियों ने भ्रान्ति से दूर हटकर उस धारा में अपने को बहा दिया । वे उस समय के युगप्रवर्तक आचार्य माने गये हैं ।

आचार्य श्री का व्यक्तित्व एवं कृतित्व इतना महान्, इतना गूढ़ तथा इतना प्रभावपूर्ण है कि उसका वर्णन सरल नहीं है। उनके विशाल जीवन के एक एक गुण को भी अपने जीवन में उतारा जाय तो अपने जीवन को उर्ध्वगामी एवं आत्मानन्द से सम्पन्न बनाया जा सकता है। ऐसे महान् सन्त की जन्म–शती के अवसर पर मै उन्हें अपनी नम्र श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ तथा अनुरोध करता हूं कि उनके विकास–प्रेरक साहित्य को अधिकाधिक प्रकाश में लाया जाय तथा राष्ट्र को उस दिशा में अग्रसर बनने के लिये प्रेरित किया जाय। उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि हमें इसी रूप में देनी चाहिये।

न्यायवृत्ति रखना और प्रामाणिक रहना, यह सुव्रतियों का मुद्रालेख है। यह मुद्रालेख उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय होता है। सुव्रती अन्याय के खिलाफ अलख जगाता है। वह न स्वयं अन्याय करता है और न सामने होने वाले अन्याय को टुकुर–टुकुर देखता रहता है। वह अन्याय का प्रतिकार करने के लिए कटिबद्ध रहता है। अन्याय का प्रतिकार करने में वह अपने प्राणों को हंसते–हंसते निछावर कर देता है। वह समाज और देश के चरणों में अपने जीवन का बलिदान देकर भी न्याय की रक्षा करता है।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज)

क्रान्तदर्शी आचार्य

● श्री रिषभदास रांका

व्यापक क्षेत्र :

अतीत के पचास वर्षों में जैन समाज के जितने भी प्रभावशाली आचार्य हुए, उनमें आचार्य जवाहरलाल जी का स्थान परमोत्कृष्ट है। यद्यपि वे स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य हुक्मीचन्द जी महाराज की परम्परा के आचार्य थे, तथापि उनका कार्यक्षेत्र आचार्य हुक्मीचन्द जी महाराज की परम्परा अथवा स्थानकवासी समाज तक ही सीमित न रहकर पूरे जैन समाज एवं राष्ट्रीय क्षेत्र तक व्याप्त था। इसीलिये कवि मेघाणी ने एक बार कहा था कि भारत में एक नहीं, दो जवाहर हैं। एक जवाहरलाल नेहरू हैं जो भारतीय राजनीति पर छाये हुए हैं और दूसरे आचार्य जवाहरलाल जी महाराज हैं, जो भारतीय धर्म क्षेत्र को प्रभावित कर रहे है।

क्रान्त द्रष्टा :

आचार्य जवाहरलाल जी महाराज ने जैन और अजैन समाज के समक्ष धर्म का सर्वाङ्गीण एवं व्यापक स्वरूप प्रस्तुत किया था, जिसका आधार था युग–युग की शिक्षा, और इसी शिक्षा के माध्यम से वर्त्तमान में जीवन–विकास तथा जीवन–विकास के साथ–साथ भविष्य के लिये प्रशस्त मार्ग का निर्धारण। इसलिये वे विनोबाजी के शब्दों में क्रान्तद्रष्टा थे। उसी का यह परिणाम है कि उन्होंने आज से पचास वर्ष पूर्व जो भी कुछ कहा, वह आज भी उतना ही उपादेय है, जितना उस समय उपयोगी था। दूसरे शब्दों में वे समयज्ञ थे। वे समय की गति को समझ कर तदनुसार धर्म को मोड़ने में समाज का हित मानते थे और आचार का धर्म के हित की दृष्टि से परिवर्त्तन करने में कभी संकोच नहीं करते थे। यही कारण था कि सर्वप्रथम आपने विद्याध्ययन को प्राथमिकता दी और भगवान् के 'पढमं नाणं तवोदया' के उपदेश को चरितार्थ करते हुए विभिन्न मतानुयायी विद्वानों से भी संस्कृत भाषा का अध्ययन प्रा

किया । क्योंकि ऐसा करना उस समय साधु के आचार से प्रतिकूल समझा जाता था । दूर दृष्टि के कारण आचार्य श्री ने आचार को धर्म के हित से थोड़ा मोड़ दिया और स्वयं ने और प्रमुख शिष्य गणेशीलाल जी और घासीलाल जी प्रभृति मुनियों ने संस्कृत का प्रशस्त रीति से अध्ययन किया ।

निवृत्ति/प्रवृत्ति :

आगे फिर आपश्री ने विचार किया कि शिक्षा के क्षेत्र में मालवा और राजस्थान की अपेक्षा से महाराष्ट्र आगे है क्योंकि यहां पर बुद्धिवादी वातावरण है । साथ ही शिक्षितों में धर्मरुचि भी है, इसलिये यहां धर्म का प्रसार और प्रचार अधिक हो सकता है । उस समय अहमदनगर में श्री कुन्दनमल जी फिरोदिया और श्री माणकचंद जी मुथा युवक वकील थे । इनका सामाजिक दृष्टि से सम्पर्क विशेष लाभदायक सिद्ध हुआ । इसके कारण नगर और उसके आस-पास के क्षेत्रों में पांच वर्षावास भी हुए । नगर के वर्षावास के समय फिरोदिया जी एवं स्थानीय श्रावकों के प्रयत्न से लोकमान्य तिलक का मुनिश्री से सम्पर्क हुआ तथा महत्त्वपूर्ण पारस्परिक विचार-विमर्श हुआ । प्रसंगात् मुनिश्री ने लोकमान्य तिलक से कहा कि 'जैन धर्म केवल निवृत्ति प्रधान नहीं है, यह अनासक्ति-प्रधान है । जैन धर्म में वाह्यवेश अथवा आचार को खेत की वाड़ की तरह सहायक माना है । वेश मुक्ति का कारण नहीं है । कोई किसी वेश में हो, किन्तु विषयों में पूर्ण रूप से अनासक्त हो तो मोक्ष प्राप्त कर सकता है । निवृत्ति मार्ग का अभ्यास मुक्ति का कारण है । अतः स्वलिङ्गसिद्ध कहा है । अनासक्ति के अभ्यास के लिए साधुधर्म और निवृत्ति मार्ग है । गृहस्थ होते हुए भी जो महापुरुष अनासक्ति-युक्त हो जाते हैं, वे गृहस्थलिङ्ग से भी मुक्ति के अधिकारी हो सकते हैं । मुक्ति के लिये जिस प्रकार निवृत्ति आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार शुद्ध प्रवृत्ति भी आवश्यक है ।

अनासक्ति का प्राधान्य :

साधु अमुक प्रकार के वस्त्र पहने विना भी मोक्ष पा सकता है । भरत चक्रवर्ती सम्राट् थे । वे राजवेश में ही अपने शीशमहल में खड़े-खड़े केवलज्ञानी हो गये । माता मरुदेवी और इलायची-पुत्र आदि के अनेक उदाहरण हैं, जो गृहस्थलिङ्ग से ही मुक्त हुए हैं । यहां आन्तरिक भावना का प्रकर्ष ही समझना चाहिये । जैन धर्म में मोक्ष के अधिकारियों के पन्द्रह भेद हैं । उन भेदों में से एक अन्यलिङ्ग-सिद्ध भी है । पूर्ण अनासक्ति अथवा निर्मोहावस्था में किसी भी वेश में रहते हुए केवलज्ञानी हो सकता है । इससे स्पष्ट है कि जैन धर्म न तो सर्वथा निवृत्ति की हिमायत करता है और न मुक्ति के लिये अमुक

प्रकार के वेश की अनिवार्यता मानता है। वस्तुतः जैन धर्म में अनासक्ति का ही प्राधान्य है। अनासक्ति के अभाव में निवृत्ति निस्सार है क्योंकि कामभोगों में मूर्छा अथवा आसक्ति होना ही संसार का कारण है और इसका न होना ही मोक्ष का कारण है। इसलिये जैन धर्म को सर्वथा निवृत्ति-प्रधान कहने से जैन धर्म का सम्यक् परिचय नहीं कहा जा सकता।

निषेध और विधेय :

साधु के लिये जितनी त्याज्य बातें आवश्यक रूप में बताई गई हैं, उनसे कम विधेय बातें भी नहीं हैं। इस प्रकार पञ्च महाव्रती के लिये त्याज्य और विधेय ये दोनों ही बातें हैं। किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करना, यह अहिंसा महाव्रत का त्याज्य अंश है, किन्तु संसार के सभी प्राणियों के प्रति मैत्री रखना, उनकी रक्षा करना, उनके लिये कल्याण की कामना करना यह सब विधेय अंश है। असत्य भाषण न करना, यह सत्य महाव्रत का त्याज्य अंश है, किन्तु हित, मित और सत्य वचन द्वारा जन-कल्याण करना यह उस महाव्रत का विधेय अंश है। ऐसा ही शास्त्र-पठन, स्वाध्याय, सत्य की खोज के लिये युक्तिसंगत वाद करना, ये सभी सत्य महाव्रत के विधेय अंश हैं। नहीं दी हुई वस्तु न लेना, यह तृतीय महाव्रत का त्याज्ज अंश है, किन्तु प्रत्येक वस्तु को ग्रहण करते समय उसके स्वामी की आज्ञा लेना विधेय अंश है। कामभोगों का त्याग चतुर्थ महाव्रत का निषिद्ध अंश है, किन्तु आत्मरमण यह प्रवृत्ति का अंश है। किसी भी वस्तु में मूर्छा अथवा मोह न रखना, यह पञ्चम महाव्रत का निवृत्तिपरक त्याग है और तप, परीषह-जय आदि के द्वारा शरीर वस्त्र आदि सभी वस्तुओं में अनासक्ति का अभ्यास बढ़ाना यह प्रवृत्ति का अंश है। एवमेव समिति, गुप्ति आदि का परिपालन, पदयात्रा तथा अन्य सभी बातें ऐसी हैं, जिनमें प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दोनों ही उपलब्ध हैं। अशुभ योग से निवृत्ति और शुद्ध एवं शुभ योग में प्रवृत्ति यह जैन धर्म का सिद्धान्त है।

आत्मा कर्माधीन होकर संसार में भ्रमण करता है। जैन साधक आत्मा को नये कर्म के बन्धन से बचाना चाहता है और बंधे कर्मों से आत्मा को अलग रखना चाहता है। इसके दो मार्ग हैं। जिनके नाम क्रमशः संवर और निर्जरा हैं। संवर प्रवृत्तिपरक है और निर्जरा निवृत्तिपरक है। संवर का अर्थ है-अशुभ प्रवृत्तियों से दूर रहना और निर्जरा का अर्थ है-बंधे हुए कर्मों को तप, स्वाध्याय, ध्यान, समाधि आदि के द्वारा आत्मा से पृथक् करना। इस प्रकार जैन धर्म में निवृत्ति और प्रवृत्ति साथ साथ चलती है।'

सफल और श्रेष्ठ साधु :

इस पर लोकमान्य तिलक ने संक्षिप्त भाषण दिया—"जैन धर्म और

वैदिक धर्म दोनों प्राचीन हैं, किन्तु जैन धर्म अहिंसा धर्म का प्रणेता है। जैन धर्म ने अपनी अहिंसा की कभी न मिटने वाली छाप वैदिक धर्म पर भी लगा दी। इस विषय में जैन-धर्म वैदिक-धर्म पर विजयी हुआ है। जैन धर्म के विषय में मेरा ज्ञान अल्प है, और जो भी है, वह भी जैन दर्शन के मूल ग्रन्थों के आधार पर नहीं है। अंग्रेज अथवा दूसरे अजैन विद्वानों ने जो थोड़ा-बहुत लिखा है, उसे पढ़कर जैन धर्म की जानकारी प्राप्त की है। जैन दर्शन के ग्रन्थ या तो प्राकृत में हैं या संस्कृत में। उन में से कोई एक ऐसा ग्रन्थ मेरे देखने में नहीं आया, जिसको पढ़कर जैन धर्म का मौलिक ज्ञान प्राप्त हो सके। जैन विद्वानों के द्वारा आधुनिक शैली में लिखा हुआ तो एक भी ग्रन्थ नहीं है। समय के अभाव में संस्कृत-प्राकृत के विशाल साहित्य का मन्थन करना मेरे लिये बहुत कठिन है। इसलिये अंग्रेज या अजैन विद्वानों के लिखे हुए फुटकर निबंधों से मुझे अपने विचार बनाने पड़े।'

फिर आगे कहते हुए आपने कहा कि 'मुनि जी ने आज जो बातें समझाई, उनसे मुझे बड़ा लाभ हुआ है। मेरी मान्यता है कि जैन दर्शन का गहराई से अध्ययन किया हुआ जैन विद्वान् जो सूक्ष्म बातें बता सकता है, तद-नुसार दूसरा विद्वान् नहीं बता सकता।'

साथ ही आपने स्पष्ट किया कि 'अहिंसा धर्म के लिये सम्पूर्ण जगत् भगवान् महावीर और बुद्ध का ऋणी रहेगा। मैं मुनिश्री का आभारी हूं, जिन्होंने महान् धर्म के विषय में भ्रान्त धारणा दूर करके उसका शुद्ध रूप सम-झाया। आज के भारतीय समाज में जैन साधु त्याग-तपस्या आदि सद्गुणों से सर्वश्रेष्ठ हैं। उनमें से मुनि जवाहरलाल जी भी एक हैं, जिनके दर्शन कर मुझे सुनने का अवसर मिला। आप सफल और श्रेष्ठ साधु हैं।'

'मैं जैसे अनेक देवों का उपासक हूं, वैसे ही सन्तों का भी अनन्य भक्त हूँ। इसलिये मेरे व्याख्यान का प्रारम्भ सन्त तुकाराम के अभंग से करता हूँ।'

मातृभूमि का उद्धार:

फिर मुनिश्री को लक्ष्य करते हुए कहने लगे कि—'मुनि महाराज! आप सन्त हैं। सर्वस्व तथा सभी कामनाओं के त्यागी हैं। फिर भी आप में जीव मात्र के कल्याण की कामना है। भारत की स्वतन्त्रता में करोड़ों लोगों की भलाई है। जब भारत स्वाधीन होगा, तभी जैन धर्म फूलेगा-फलेगा। यह आप जानते हैं और मैं भी जानता हूं कि आप सन्तों के आचार एवं नियमों से बद्ध हैं। आपको राज्य-विरोधी कामों में भाग लेने की आज्ञा नहीं है। अतएव हमें आशीर्वाद दीजिये। कार्यकर्त्ता हम कई करोड़ हैं।'

'अन्त में मैं इतना कहना उचित समझता हूं कि जैन धर्म तो प्रारम्भ से अहिंसा का समर्थक रहा ही है, किन्तु वैदिक धर्म भी जैन धर्म के प्रभाव से अहिंसा का आराधक बना है। अब अहिंसा के विषय में हम एकमत हैं। अतः हम सबको कन्धे से कन्धा मिलाकर अपनी मातृभूमि के उद्धार में लग जाना चाहिये।'

इस प्रकार लोकमान्य तिलक की भेंट बड़ी उपयोगी और जैन समाज के लिये दिशा-दर्शक रही।

महाराष्ट्र में धर्म प्रचार :

महाराष्ट्र के विहार में मुनि श्री जवाहरलाल जी महाराज ने समाज की स्थिति का अत्यन्त गहराई से अध्ययन कर समाज को जो मार्ग दिखाया, वह आज भी सही दिशा का दर्शक बना हुआ है। जैन समाज में कई ऐसी गलत मान्यताएं धर्म के नाम पर चल रही थीं कि जो समाज के लिए हानिप्रद थीं। खेती और गौपालन को महारम्भ का काम समझ कर व्याज का धन्धा अल्पारम्भ का कारण समझा जाता था। आचार्यश्री महारम्भ और अल्पारम्भ के विषय में विवेक और यतना को अधिक प्राधान्य देते थे। खेती करने में एकान्त पाप होता तो भगवान् महावीर के प्रमुख श्रावक अधिक संख्या में खेती करते थे। संसार में कोई क्रिया एकान्त पाप अथवा एकान्त पुण्य की नहीं होती। वे कहते थे कि कोई जैन खेती करे तो हिंसा-अहिंसा का विचार सावधानी रखकर करे। जो बिना विवेक अथवा असावधानी से खेती करता है, वह अधिक पाप करता है। इसी प्रकार जो खेती न कर अविवेक से बिना यतना से होने वाली खेती का अन्न खाते हैं तो अधिक पाप करते हैं। यदि विवेकपूर्वक खेती कर हम अधिक धान्य इस भावना से पैदा करते हैं कि संसार के लोग कम मांसाहार करेंगे तो खेती से होने वाली हिंसा अल्पारम्भी हो सकेगी। गौपालन और खेती को विवेकपूर्वक करने के उपदेश से महाराष्ट्र में अनेक श्रावक उत्तम खेती के बड़े-बड़े किसान हो गए। यह तो सर्वविदित है कि जैन किसानों की खेती अन्य किसानों की अपेक्षा से महाराष्ट्र में अच्छी होती है।

महाराष्ट्र में मृत्युभोज, कन्या विक्रय, वृद्ध और बालविवाह जैसी रूढ़ियों के विरुद्ध जो प्रबल आन्दोलन हुए, उनमें आचार्य श्री की प्रेरणा ही काम करती थी।

आपने मिलों के चर्बी लगे कपड़ों से खादी के कपड़े पहनने में कम

हिंसा है, यह प्रभावपूर्ण भाषा में समझा कर सहस्रशः मनुष्यों को खादी पहनने के लिये प्रेरित किया ।

दृढ़धर्मी आचार्य :

आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज की सबसे बड़ी एक देन यह थी कि आपने श्रावकों में आत्म-विश्वास उत्पन्न किया और स्वत्व का भान कराया । वे सदा कहा करते थे कि श्रावक-श्राविकायें सन्त और सतियों के माता-पिता हैं, इसलिये सन्त-सतीजन की वे सदा सार-संभाल किया करें ।

आपश्री ने रतलाम की स्थानकवासी कांफ्रेंस में प्रवचन करते हुए व्यक्त किया था कि यह क्रान्फ्रेन्स रूपी कामधेनु साधु-साध्वियों और श्रावक-श्राविकाओं के रूप में चतुर्विध संघ के सहारे खड़ी है । अतः इस कामधेनु को अपनाकर मन से उज्ज्वल और वचन से मधुर बनना चाहिये । सर्वस्व का उत्सर्ग कर परोपकार का पाठ सीखना चाहिये ।

जब मुनि श्री जवाहरलाल जी महाराष्ट्र में विहार कर रहे थे, तभी पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज ने आपको युवाचार्य के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया था, किन्तु चादर ओढाने का कार्यक्रम मार्च २९ सन् १९१९ को रतलाम में हुआ था । उस समय पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज ने कहा था कि 'उदयपुर में श्रीसंघ की प्रार्थना ने मुझे सूचित किया था कि मुझे योग्य व्यक्ति का चुनाव करना चाहिये । तब मुझे आपका स्मरण आया । मुझे लगा कि संघ के शासन की बागडोर आपके हाथ में सौंपने से कोई डर नहीं है, क्योंकि आप जैसे प्रतिभाशाली, तेजस्वी, कठोर संयमी और दृढधर्मा आचार्य को पाकर हुक्मीचंद जी महाराज का सम्प्रदाय अधिकाधिक विकसित होगा ।

इसके उत्तर में युवाचार्य श्री जवाहरलाल जी ने कहा था कि 'इस पद के अनुरूप श्री संघ की सेवा कर सका तो मैं अपने आपको गौरवशाली समझूंगा । श्री संघ की दृष्टि से भले ही मैं ऊंचा समझा जाऊं, परन्तु अपनी नजरों में मैं धर्म का एक अकिञ्चन सेवक ही रहूंगा ।

रचनात्मक कार्य :

पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज ने अपने उत्तराधिकारी कितने योग्य चुने, इसकी प्रतीति दोपहर को दिये व्याख्यान से हो गई । युवाचार्य ने अपने व्याख्यान में आज से पचास वर्ष पूर्व जो बात कही थी, वह आज भी उतनी ही उपयुक्त है, जितनी कि वह उस समय उपयुक्त थी । आपने कहा था कि समाज की उन्नति के लिये घूम घूम कर प्रचार करने वाले प्रचारकों की आवश्यकता

है, उनके ऊपर यह भी दायित्व रहना चाहिये कि वे संभाल भी करते रहे और आवश्यकताओं की पूर्त्ति भी करते रहें। इससे धर्म–विमुखता हटेगी और धर्माभिमुखता बढ़ेगी। इसी प्रकार शिक्षा की समुचित व्यवस्था होनी चाहिये, जिसका उपयोग सभी धर्म–प्रेमी ले सकें। इसलिये शिक्षा संस्थाओं और धार्मिक संस्थाओं की स्थापना परम आवश्यक है।

आपश्री कहा करते थे कि—'व्याख्यान देने मात्र से समाज का श्रेय नहीं हो सकता। इसके लिये रचनात्मक व ठोस कार्य करने की आवश्यकता है। योजनाबद्ध कार्य करने से ही समाज का उत्थान होगा।

ऐसे अनेक क्षेत्र हैं, जहां पर साधु महाराजों का विचरण नहीं हो पाता, क्योंकि इन क्षेत्रों में साधु–मर्यादाओं का पालन करना कठिन हो जाता है। ऐसे क्षेत्रों में सश्रद्ध विद्वान और सत्यनिष्ठ गृहस्थ ही कार्य कर सकते हैं। केवल साधुओं पर सारा भार डालकर गृहस्थों को निश्चित नहीं होना चाहिये।'

उक्त विषय की मुख्यता के कारण से ही दिल्ली में स्थानकवासी कान्फ्रेन्स की ११–१०–१९३७ की जनरल कमेटी में साधु और श्रावक के बीच एक तीसरा वर्ग संस्थापित हो, यह एक योजना रखी गई थी।

आपश्री ने आगे यह भी कहा कि 'हमारे समाज में आज साधु और श्रावक दो वर्ग हैं। यदि समाज–सुधार के कार्य को श्रावक न करे तो उस कार्य को साधु को करना पड़ता हैं। इससे प्रत्यक्ष या परोक्ष में ऐसे काम हो जाते हैं, जो साधुता के लिये शोभनीय नहीं हैं।'

समाज–सुधार का प्रश्न उपेक्षणीय इसलिये नहीं है कि लौकिक व्यवहार के बिगड़ने से धर्म की स्थिरता नहीं रहती और यदि साधुवर्ग इस कार्य को हाथ में न ले तो फिर समाज बिगड़ता हैं। अतः यह समस्या है, जिसका समाधान श्रावकों को ढूंढ़ना ही चाहिये, जिससे समाज–सुधार का कार्य भी हो और साधुओं को भी इसके लिये कुछ सोचना न पड़े। श्रावकवर्ग का निरन्तर की दुनियादारी में लगे रहने से समाज–सुधार की ओर ध्यान नहीं जाता, जब कि यह आवश्यक और उपयोगी है। अतः श्रावकवर्ग की प्रवृत्ति इस ओर भी बढ़नी चाहिये।

हमारी दृष्टि में इस समस्या का समाधान तीसरा वर्ग हो सकता जो श्रावक साधुजन के बीच में हो। ब्रह्मचारी और अपरिग्रही होकर समाज-सुधार के कार्य के अतिरिक्त धार्मिक कार्य भी कर पायेंगे एवं सेवा भावना से प्रेरित होकर शिक्षा–साहित्य प्रकाशनादि के लिये भी अग्रसर हो सकते हैं। साथ ही अन्यथा की भावनायें भी स्वतः समाप्त हो सकेंगी।

ग्रामधर्म, समाजधर्म, राष्ट्रधर्म :

आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज ग्रामधर्म समाजधर्म, और राष्ट्रधर्म के महत्त्व को भलीभांति जानते थे। इसलिये उनके विचारों में राष्ट्रीयता ओत-प्रोत थी। लोकमान्य तिलक, गांधीजी, विनोवा भावे, जमनलाल वजाज, सरदार पटेल आदि से आपका सम्पर्क हुआ था। आपका यह दृढ़ विश्वास था कि दास व्यक्ति धर्म का पालन नहीं कर सकता। इसलिये वे अपनी साधु मर्यादा में राष्ट्रीय कार्यों का निर्भय होकर साथ देते थे। उनके व्याख्यानों में खादी, ग्रामोद्योग, अस्पृश्यता निवारण आदि का उपदेश तो होता ही था, परन्तु राष्ट्रीयता का भी समावेश रहता था। इसका असर सरकार पर भी पड़ा था। इसी वजह से कुछ गुप्तचर आचार्यश्री के साथ भी रहने लगे थे।

इस सब से श्रावक चिन्तित होने लगे। अतः श्रावकों की चिन्ता दूर करते हुए आपने निर्भय होकर कहा था कि 'मैं अपने कर्त्तव्य को भली भांति समझता हूं। मुझे अपने उत्तरदायित्व का पूरा भान है। मैं जानता हूं कि धर्म क्या है ? मैं साधु हूं। अधर्म के मार्ग पर नहीं चल सकता। परतन्त्रता पाप है परतन्त्र व्यक्ति धर्म की ठीक तरह से आराधना नहीं कर सकता। मैं व्याख्यान में प्रत्येक बात समझ सोचकर तथा मर्यादा के भीतर रहकर करता हूं। इस पर भी यदि राज्यसत्ता हमें गिरफ्तार करती है तो हमें डरने की क्या आवश्यकता है ? कर्त्तव्य-पालन में डर कैसा ? साधु को भी सभी उपसर्ग और परीषह सहने चाहिये। किन्तु अपने कर्त्तव्यपथ से विचलित नहीं होना चाहिये। सभी परिस्थितियों में धर्मरक्षा का मार्ग मुझे मालूम है। यदि कर्त्तव्य-पालन के लिये जैन समाज का आचार्य गिरफ्तार होता है तो जैन समाज के लिये किसी प्रकार के अपमान की बात नहीं होगी। इसमें अत्याचारी के अत्याचार सभी के सामने आते हैं।

लोकेषणा से मुक्त :

इन सब बातों के होते हुए भी आचार्यश्री लोकेषणा से मुक्त थे। यह मैंने अधिक निकट से देखा है। मैं आपकी सेवा में दो वर्ष तक साथ साथ रहा हूं। जलगांव के वर्षावास के समय तो मैं और मेरे मित्र राजमल जी ललवानी दोनों ही महाराज श्री के सम्पर्क में थे। उस समय मैं घर का धन्धा छोड़कर खादी के कार्य में संलग्न था। यह कार्य आचार्यश्री को भी प्रिय था। मेरा घर भी ५० कदम की दूरी पर था। इसलिये कम से कम ४-५ घंटे तो आचार्यश्री के सत्संग में व्यतीत होते ही थे। 'नवजीवन' तथा गांधी साहित्य आचार्यश्री की सेवा में पहुंचाने का कार्य मेरा ही था। मेरे ही कारण से सेठ

जमनालाल बजाज और आचार्य विनोबा भावे भी आचार्यश्री के सम्पर्क में आये थे ।

आपश्री की समाज-सुधार, शिक्षा प्रचार, साहित्य प्रकाशन आदि कार्यो के प्रति रुचि होते हुए भी अनासक्ति फिर भी बनी रहती थी। आज की भाषा में 'अवेयरनेस' के मुझे उनमें दर्शन होते थे ।

साथ ही सत्ता अथवा प्रतिष्ठा का कोई मोह नहीं था । तभी तो अन्तिम समय से पूर्व ही आपने युवाचार्य को संघ का शासन सौंप दिया था और निवृत्ति का जीवन विताया था। अन्तिम समय पर सभी से क्षमा-याचना कर मैत्रीभाव की साधना की ।

उनकी जैन तत्त्वों में पूर्ण निष्ठा थी, सम्प्रदाय के प्रति समर्पित थे तो भी स्पष्टवक्ता थे । आपने पचास वर्ष पूर्व जो बातें कही थीं, वे आज भी समाज के लिये उतनी ही लाभदायक हैं। इसीलिये वे क्रान्तद्रष्टा थे । मुझे ऐसी विभूति की सेवा में और सम्पर्क में आने का लाभ मिला, अतः मैं अपने आपको भाग्यवान् समझता हूं। मैंने आपश्री के सत्संग से बहुत कुछ पाया, इसलिये मुझे श्रद्धासुमन चढ़ाते हुए अपार सन्तोष हो रहा है । आप केवल जैनाचार्य ही नहीं थे, अपितु भारतमाता के सच्चे सपूत भी थे ।

तुम्हारे हृदय में अपनी माता का स्थान ऊंचा है या दासी का ? अगर माता का स्थान ऊंचा है तो मातृभाषा के लिए भी ऊंचा स्थान होना चाहिए । मातृभाषा माता के स्थान पर है और विदेशी भाषा दासी के स्थान पर । दासी कितनी ही सुरूपवती और सुघड़ क्यों न हो, माता का स्थान कदापि नहीं ले सकती ।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज)

—○—
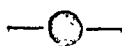
विचारक भी : क्रांतिकारी भी

● **श्री अजितमुनि 'निर्मल'**

भगवान् महावीर की परम–पुण्य–पावन परम्परा में प्रचुर रूप से प्रतिभाशाली पुरुष पुंगव हो गये हैं, जिनकी चिरंतन चेतना का चमत्कार चतुर्दिक फैलकर चित्तवृत्ति को आह्लादित किये दे रहा है। अद्यावधि यह सांस्कृतिक धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवहमान है और भविष्य में भी इसी प्रकार अनवरत गतिशील रहेगी। जन–जीवन हमेशा ही इनसे अनुप्राणित होता रहा है तथा दिशा–निर्देश पाकर एवं तदनुकूल आचरण निर्माण के लिए अपने सौभाग्य को धन्यवाद देता रहा है।

महिमामय संप्रदाय :

इसी मुनि–परम्परा में स्थानकवासी समाज में शास्त्रानुमोदित आचारिक क्रिया के धनी महिमामय श्रद्धेय पूज्य श्री हुक्मीचंद जी म. हो गये हैं, जिन्हें साम्प्रदायिक नायकत्व का सर्वोच्च श्रद्धाभिनन्दन चतुर्विध संघ द्वारा अर्पित किया गया है। उन्होंने अपने जीवन भर किसी भी प्रकार से 'यश एवं पद' की कामना नहीं की। निरंतर आत्म–साधना की सतर्क–तल्लीनता ही बनी रहती थी।

ज्योतिर्धर जवाहर :

श्री हुकमेश गच्छ की उज्ज्वल धारा में ही स्वनाम धन्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. के तेजस्वी, ओजस्वी व्यक्तित्व का अग्रगारी जन्म हुआ। अपने समय में आपकी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है जो युग–इतिहास के चमकते पृष्ठों में आज भी सुरक्षित है।

आचार्यश्री; विचारक भी : क्रांतिकारी भी

आचार्यश्री के क्रांतिपूर्ण विचारों की विरासत उनके जीवन–चरित्र

एवं प्रवचन-पुस्तकों में सुरक्षित है। हम पाते हैं कि वे आचार्य होने के साथ ही एक विचारक की भी सुस्पष्ट गरिमा को संजोए हुये हैं। सुलझी-सुथरी चिंतन की थाती समाज को वही दे सकता है, जो स्वयं क्रांतिवर की साक्षात् प्रतिमा हो और जो समाज को पूर्ण सक्षमता के साथ दिशानिर्देश दे सके।

विचार और आचार का प्रणेता एवं पालक ही 'आचार्य' की गरिमा से विभूषित होता है। आचार्यश्री स्वयं आचार्य होने के साथ ही विचारक भी थे। अतः स्पष्टता एवं क्रांति का सुगम संगम तो फिर परिलक्षित हो ही जाता है।

दो महाशक्तियां :

भगवान् महावीर के शासन में हमारी इस पूज्य श्री हुकमेश-गच्छीय परम्परा में एवं समग्र स्थानकवासी समाज में सर्वमान्य दो महाशक्तियां थीं, जिनका प्रतिभा-प्रताप अजब-गजब का था। जिनमें से एक जैनदिवाकर, जगत-वल्लभ श्री 'चौथमल जी म. एवं दूसरे आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. थे। दोनों ही समकालीन ओजस्वी वक्ता, अहिंसा के प्रबल प्रचारक, समाज-संगठन के हामी और मर्मज्ञ विचारक थे।

क्रांति का आह्वान :

आचार्य श्री ने भारतीय परतंत्रता के जकड़े हुए उस युग में सिंहनाद किया जब कि कुरूढ़ियों के जाल में व्यक्ति एवं समाज के साथ ही युग-समय भी आबद्ध था। पराधीनता का जूड़ा वहन करते-करते पांव लड़खड़ा गए थे। 'उफ' उच्चारण तक अपराध माना जाता था। धार्मिक विश्वास डोल रहा था। तब ऐसी स्थिति के प्रति एवं जर्जरित ढकोसलों को समूल समाप्त करने का क्रांति-आह्वान किया।

वे प्रत्येक विचार की गहराई तक पैठते थे और इसमें उन्हें विशेषज्ञता हासिल थी। किसी भी विषय का कैसा ही चिंतन हो, उसमें उनका अपना संशोधन तैयार रहता था, क्योंकि समाज के अधिकारी व्यक्ति को हर प्रकार के तबके से वास्ता पड़ता रहता है। उनकी अनियंत्रित मनोवृत्तियों के भयंकर-तम काले साये से मुक्त करना ही मुनिवर्ग का प्रमुख कार्य होता है। इस नाते आचार्यश्री भी तो मुनि ही थे। उन्होंने भी इस दिशा में कार्य किया।

समता-समाज की स्थापना :

समाज विकास-रचना के कार्यक्रम सैद्धान्तिक नीतियों पर ही आधारित

की तरह है किन्तु कार्य–रचना के ठीक अवसर पर वह स्वयं को चुराने लगता है। कथनी और करनी की अंतर्दृष्टि ने उसे एकदम बदल दिया है। यह बदला हुआ रूप आचार्यश्री को पसन्द नहीं आया। इसके लिए भी उन्होंने चर्चा के स्वर में अंततः कहा ही— "सौ निरर्थक बातें करने की अपेक्षा एक सार्थक कार्य करना अधिक श्रेयस्कर है[८]। दूसरे के किसी सद्गुण की प्रशंसा करना अच्छा है, परन्तु उसे अपने जीवन में उतारने की प्रबल चेष्ठा करना उससे भी अच्छा है। जैसे मक्खी गन्दगी खोजती है, उसी प्रकार तुम दूसरों के दुर्गुण खोजोगे तो अपने ही पैर पर कुल्हाड़ा मारना होगा। पराये दुर्गुणों पर दृष्टि डालने की अपेक्षा, चुपचाप अपने दुर्गुणों को पहचानना और उन्हें नष्ट करने का प्रयत्न करना, लाख दर्जे श्रेष्ठ कार्य है।

अभिशाप : अकर्मण्यता का :

आचार्यश्री ने भारतीय मनुष्यों की सार्वत्रिक अकर्मण्यता को देख कर कितने शानदार शब्दों में बोध–व्याख्या प्रस्तुत की है, उसकी बानगी वास्तविकता में देखते ही बनती है। उन्होंने कहा—"जो भारत अखिल विश्व का गुरु था और सबको सभ्यता सिखाने वाला था, आज वह इतना दीन–हीन हो गया है कि आध्यात्मिक विद्या की पुस्तकें जर्मनी से मंगाता है। युद्ध-सामग्री के लिए अमेरिका के प्रति याचक बनता है। नीति, धर्म की पुस्तकों के लिए इंग्लैंड के सामने हाथ पसारता है और–तो–और सूई जैसी तुच्छ चीज के लिए भी वह विदेशियों का मुंह ताकता है। इसका क्या कारण है[९]? इस दुर्दशा का कारण आचार्यश्री की दृष्टि में वर्ण–व्यवस्था की दूषित प्रणाली है। अकर्मण्यता के अभिशाप से कब मुक्ति होगी ?

आज की अपंग शिक्षा :

आज की शिक्षा भी इस अकर्मण्यता में और वृद्धि करती जा रही है। आचार्यश्री के शब्दों में भारत में शिक्षा की बहुत कमी है। जो शिक्षा दी भी जाती है, वह इतनी निकम्मी है कि शिक्षा प्राप्त करने वाले युवक किसी काम के नहीं रहते[१०]। वे अपने को समाज का एक अंग मान कर समाज के श्रेय में अपना श्रेय एवं समाज के अमंगल में अपना अमंगल नहीं मानते[११]। आजकल जो शिक्षा मिलती है, उसका जीवन–सिद्धि के साथ कोई सरोकार नहीं है। वह बेकार सी है, फिर भी वह बड़ी बोझीली है। विद्यार्थियों पर पुस्तकों का इतना अधिक बोझा लादा जाता है कि वे बिचारे रोगी बन जाते हैं। आचार्यश्री ने व्यावहारिक शिक्षा के साथ ही धर्म–शिक्षा की अनिवार्यता स्वीकार की है।

की तरह है किन्तु कार्य–रचना के ठीक अवसर पर वह स्वयं को चुराने लगता है। कथनी और करनी की अंतर्दृष्टि ने उसे एकदम बदल दिया है। यह बदला हुआ रूप आचार्यश्री को पसन्द नहीं आया। इसके लिए भी उन्होंने चर्चा के स्वर में अंततः कहा ही—"सौ निरर्थक बातें करने की अपेक्षा एक सार्थक कार्य करना अधिक श्रेयस्कर है[८]। दूसरे के किसी सद्गुण की प्रशंसा करना अच्छा है, परन्तु उसे अपने जीवन में उतारने की प्रबल चेष्टा करना उससे भी अच्छा है। जैसे मक्खी गन्दगी खोजती है, उसी प्रकार तुम दूसरों के दुर्गुण खोजोगे तो अपने ही पैर पर कुल्हाड़ा मारना होगा। पराये दुर्गुणों पर दृष्टि डालने की अपेक्षा, चुपचाप अपने दुर्गुणों को पहचानना और उन्हें नष्ट करने का प्रयत्न करना, लाख दर्जे श्रेष्ठ कार्य है।

अभिशाप : अकर्मण्यता का :

आचार्यश्री ने भारतीय मनुष्यों की सार्वत्रिक अकर्मण्यता को देख कर कितने शानदार शब्दों में बोध–व्याख्या प्रस्तुत की है, उसकी बानगी वास्तविकता में देखते ही बनती है। उन्होंने कहा—"जो भारत अखिल विश्व का गुरु था और सबको सभ्यता सिखाने वाला था, आज वह इतना दीन–हीन हो गया है कि आध्यात्मिक विद्या की पुस्तकें जर्मनी से मंगाता है। युद्ध-सामग्री के लिए अमेरिका के प्रति याचक बनता है। नीति, धर्म की पुस्तकों के लिए इंग्लैंड के सामने हाथ पसारता है और–तो–और सूई जैसी तुच्छ चीज के लिए भी वह विदेशियों का मुंह ताकता है। इसका क्या कारण है[९]? इस दुर्दशा का कारण आचार्यश्री की दृष्टि में वर्ण–व्यवस्था की दूषित प्रणाली है। अकर्मण्यता के अभिशाप से कब मुक्ति होगी?

आज की अपंग शिक्षा :

आज की शिक्षा भी इस अकर्मण्यता में और वृद्धि करती जा रही है। आचार्यश्री के शब्दों में भारत में शिक्षा की बहुत कमी है। जो शिक्षा दी भी जाती है, वह इतनी निकम्मी है कि शिक्षा प्राप्त करने वाले युवक किसी काम के नहीं रहते[१०]। वे अपने को समाज का एक अंग मान कर समाज के श्रेय में अपना श्रेय एवं समाज के अमंगल में अपना अमंगल नहीं मानते[११]। आजकल जो शिक्षा मिलती है, उसका जीवन–सिद्धि के साथ कोई सरोकार नहीं है। वह बेकार सी है, फिर भी वह बड़ी बोझीली है। विद्यार्थियों पर पुस्तकों का इतना अधिक बोझा लादा जाता है कि वे बिचारे रोगी बन जाते हैं। आचार्यश्री ने व्यावहारिक शिक्षा के साथ ही धर्म–शिक्षा की अनिवार्यता स्वीकार की है।

की तरह है किन्तु कार्य-रचना के ठीक अवसर पर वह स्वयं को चुराने लगता है। कथनी और करनी की अंतर्दृष्टि ने उसे एकदम वदल दिया है। यह बदला हुआ रूप आचार्यश्री को पसन्द नहीं आया। इसके लिए भी उन्होंने चर्चा के स्वर में अंततः कहा ही—"सौ निरर्थक वातें करने की अपेक्षा एक सार्थक कार्य करना अधिक श्रेयस्कर है[८]। दूसरे के किसी सद्गुण की प्रशंसा करना अच्छा है, परन्तु उसे अपने जीवन में उतारने की प्रवल चेष्ठा करना उससे भी अच्छा है। जैसे मक्खी गन्दगी खोजती है, उसी प्रकार तुम दूसरों के दुर्गुण खोजोगे तो अपने ही पैर पर कुल्हाड़ा मारना होगा। पराये दुर्गुणों पर दृष्टि डालने की अपेक्षा, चुपचाप अपने दुर्गुणों को पहचानना और उन्हें नष्ट करने का प्रयत्न करना, लाख दर्जे श्रेष्ठ कार्य है।

अभिशाप : अकर्मण्यता का :

आचार्यश्री ने भारतीय मनुष्यों की सार्वत्रिक अकर्मण्यता को देख कर कितने शानदार शब्दों में बोध-व्याख्या प्रस्तुत की है, उसकी वानगी वास्तविकता में देखते ही वनती है। उन्होंने कहा—"जो भारत अखिल विश्व का गुरु था और सबको सभ्यता सिखाने वाला था, आज वह इतना दीन-हीन हो गया है कि आध्यात्मिक विद्या की पुस्तकें जर्मनी से मंगाता है। युद्ध-सामग्री के लिए अमेरिका के प्रति याचक बनता है। नीति, धर्म की पुस्तकों के लिए इंग्लैंड के सामने हाथ पसारता है और-तो-और सूई जैसी तुच्छ चीज के लिए भी वह विदेशियों का मुंह ताकता है। इसका क्या कारण है[९]? इस दुर्दशा का कारण आचार्यश्री की दृष्टि में वर्ण-व्यवस्था की दूषित प्रणाली है। अकर्मण्यता के अभिशाप से कब मुक्ति होगी?

आज की अपंग शिक्षा :

आज की शिक्षा भी इस अकर्मण्यता में और वृद्धि करती जा रही है। आचार्यश्री के शब्दों में भारत में शिक्षा की वहुत कमी है। जो शिक्षा दी भी जाती है, वह इतनी निकम्मी है कि शिक्षा प्राप्त करने वाले युवक किसी काम के नहीं रहते[१०]। वे अपने को समाज का एक अंग मान कर समाज के श्रेय में अपना श्रेय एवं समाज के अमंगल में अपना अमंगल नहीं मानते[११]। आजकल जो शिक्षा मिलती है, उसका जीवन-सिद्धि के साथ कोई सरोकार नहीं है। वह वेकार सी है, फिर भी वह वड़ी वोझीली है। विद्यार्थियों पर पुस्तकों का इतना अधिक वोझा लादा जाता है कि वे विचारे रोगी वन जाते हैं। आचार्यश्री ने व्यावहारिक शिक्षा के साथ ही धर्म-शिक्षा की अनिवार्यता स्वीकार की है।

की तरह है किन्तु कार्य–रचना के ठीक अवसर पर वह स्वयं को चुराने लगता है। कथनी और करनी की अंतर्दृष्टि ने उसे एकदम वदल दिया है। यह वदला हुआ रूप आचार्यश्री को पसन्द नहीं आया। इसके लिए भी उन्होंने चर्चा के स्वर में अंततः कहा ही— "सौ निरर्थक वातें करने की अपेक्षा एक सार्थक कार्य करना अधिक श्रेयस्कर है[8]। दूसरे के किसी सद्गुण की प्रशंसा करना अच्छा है, परन्तु उसे अपने जीवन में उतारने की प्रवल चेष्ठा करना उससे भी अच्छा है। जैसे मक्खी गन्दगी खोजती है, उसी प्रकार तुम दूसरों के दुर्गुण खोजोगे तो अपने ही पैर पर कुल्हाड़ा मारना होगा। पराये दुर्गुणों पर दृष्टि डालने की अपेक्षा, चुपचाप अपने दुर्गुणों को पहचानना और उन्हें नष्ट करने का प्रयत्न करना, लाख दर्जे श्रेष्ठ कार्य है।

अभिशाप : अकर्मण्यता का :

आचार्यश्री ने भारतीय मनुष्यों की सार्वत्रिक अकर्मण्यता को देख कर कितने शानदार शब्दों में बोध–व्याख्या प्रस्तुत की है, उसकी वानगी वास्तविकता में देखते ही वनती है। उन्होंने कहा—"जो भारत अखिल विश्व का गुरु था और सबको सभ्यता सिखाने वाला था, आज वह इतना दीन–हीन हो गया है कि आध्यात्मिक विद्या की पुस्तकें जर्मनी से मंगाता है। युद्ध-सामग्री के लिए अमेरिका के प्रति याचक वनता है। नीति, धर्म की पुस्तकों के लिए इंग्लैंड के सामने हाथ पसारता है और–तो–और सूई जैसी तुच्छ चीज के लिए भी वह विदेशियों का मुंह ताकता है। इसका क्या कारण है[9]? इस दुर्दशा का कारण आचार्यश्री की दृष्टि में वर्ण–व्यवस्था की दूषित प्रणाली है। अकर्मण्यता के अभिशाप से कब मुक्ति होगी ?

आज की अपंग शिक्षा :

आज की शिक्षा भी इस अकर्मण्यता में और वृद्धि करती जा रही है। आचार्यश्री के शब्दों में भारत में शिक्षा की वहुत कमी है। जो शिक्षा दी भी जाती है, वह इतनी निकम्मी है कि शिक्षा प्राप्त करने वाले युवक किसी काम के नहीं रहते[10]। वे अपने को समाज का एक अंग मान कर समाज के श्रेय में अपना श्रेय एवं समाज के अमंगल में अपना अमंगल नहीं मानते[11]। आजकल जो शिक्षा मिलती है, उसका जीवन–सिद्धि के साथ कोई सरोकार नहीं है। वह वेकार सी है, फिर भी वह वड़ी वोझीली है। विद्यार्थियों पर पुस्तकों का इतना अधिक वोझा लादा जाता है कि वे विचारे रोगी वन जाते हैं। आचार्यश्री ने व्यावहारिक शिक्षा के साथ ही धर्म–शिक्षा की अनिवार्यता स्वीकार की है।

सीमित रखें। राष्ट्रीय बातों के आने से सरकार को संदेह हो रहा है। कहीं ऐसा न हो कि आप गिरफ्तार कर लिये जाएं और सारे समाज को नीचा देखना पड़े।"

पूज्यश्री ने उत्तर दिया—"मैं अपना कर्त्तव्य भली-भांति समझता हूं। मुझे अपने उत्तरदायित्व का भी पूरा भान है। मैं जानता हूं कि धर्म क्या है? मैं साधु हूँ। अधर्म के मार्ग पर नहीं जा सकता, किन्तु परतंत्रता पाप है। परतंत्र व्यक्ति ठीक तरह धर्म की आराधना नहीं कर सकता। मैं अपने व्याख्यान में प्रत्येक बात सोच-समझ कर तथा मर्यादा के भीतर रह कर कहता हूं। इस पर यदि राजसत्ता हमें गिरफ्तार करती है तो हमें डरने की क्या आवश्यकता है? कर्त्तव्य पालन में डर कैसा? साधु को सभी उपसर्ग व परीषह सहने चाहिए, अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं होना चाहिए। सभी परिस्थितियों में धर्म की रक्षा का मार्ग मुझे मालूम है। यदि कर्त्तव्य का पालन करते हुए जैन-समाज का आचार्य गिरफ्तार हो जाता है तो इनमें जैन-समाज के लिए किसी प्रकार के अपमान की बात नहीं है। इसमें तो अत्याचारी का अत्याचार सभी के सामने आ जाता है[१६]।"

आज के युग में आचार्यश्री के समान इस प्रकार निर्भीक सत्य उगलने वाले कितने हैं? अडिग चट्टान की भांति अपने को सुदृढ़ रखना कोई हंसी-मजाक नहीं है। वे अपने कर्त्तव्य-मर्यादा पालन में सजगता के साथ किस सीमा-स्थिति तक तैयार रहते थे, यह उक्त कथन से जाना जा सकता है।

नारी : घर का स्वराज्य :

अभी हमने अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष मनाया और अब महिला-शताब्दी मना रहे हैं। अतः स्वाभाविक ही है कि नारी उत्थान के कार्यक्रम आयोजित हों। परन्तु पूज्यश्री ने महिलाओं की उन्नति के बाबत तब मननीय विचार प्रगट किये जब कि 'स्त्री को पैरों की जूती' माना जाता था। ऐसे समय पुरुषों के सम्मुख स्त्री जाति को धन्यवाद के साथ, गुण-गीत का बखान करना, कोई कम बात नहीं थी। आचार्यश्री ने इस बीड़े को उठाया। नारी सम्मान की तथा महत्ता की खुली घोषणा की। पुरुषों को ललकारते हुए कहा—"आप अंग्रेजी सरकार से स्वराज्य की मांग करते हैं, किन्तु पहले अपने घर में तो स्वराज्य की स्थापना कर स्त्रियों के साथ समता और उदारता का व्यवहार करो[२०]। यह स्त्रियां जगजननी का अवतार हैं[२१]। मैं समभाव का व्यवहार करने के लिए कहता हूं। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि स्त्रियों को पुरुषों के अधिकार दे दिये जायें। मेरा आशय यह है कि स्त्रियों को स्त्रियों के

लिए जो भाष्य उन्होंने प्रस्तुत किया, वह मनोमुग्धकारी एवं प्रशंसनीय है। सच्चे संघ-सेवक के लिए तो यह सैद्धान्तिक सत्य है। वह तो संघ के लिए समर्पित होकर संघ के लिए जीता है और संघ के लिए ही मरता है। आज के युग-संदर्भ में आत्म-निरीक्षण के लिए उनका विचारावेश पूर्णतः सत्यता की उद्घोषणा कर रहा है—

संघ की एकता के पवित्र कार्य में विघ्न डालना घोर पाप के बन्ध का कारण है। भगवान् ने संघ में अनेकता उत्पन्न करना सब से बड़ा पाप बताया है। और सभी पाप इस पाप से छोटे हैं। चतुर्थ व्रत खंडित होने पर नवीन दीक्षा देकर साधु को शुद्ध किया जा सकता है लेकिन संघ की शांति और एकता भंग करके अशांति और अनैक्य फैलाने वाला—संघ को छिन्न-भिन्न करने वाला दशवें प्रायश्चित्त का अधिकारी माना गया है। इससे यह स्पष्ट हैं कि संघ को छिन्न-भिन्न करना घोर पाप का कारण है। जो लोग अपना वड़प्पन कायम करने के लिए दुराग्रह करके संघ में विग्रह उत्पन्न करते हैं, वे घोर पाप करते हैं। अगर आप संघ की शांति और एकता के लिए सच्चे हृदय से प्रार्थना करेंगे तो आपका हृदय तो निष्पाप बनेगा ही, साथ ही संघ में अशांति फैलाने वालों के हृदय का पाप भी धुल जायगा। संघ में एकता होने पर संघ की सब बुराइयां नष्ट हो जाती हैं[30]।

सेवा का संकल्प लें !

विचार एवं क्रांति से प्रेरित वाणी के धनी—मनस्वी पूज्यश्री की जन्म-शताब्दी पर एक नवीन संकल्प लें कि उनके वैचारिक सपने को मूर्तरूप देकर भक्तिसेवा का अनूठा उदाहरण उपस्थित करें जिससे कि समाज सुदृढ़ता की ओर वढ़े। आप अपने कर्त्तव्य की पुकार से मुकरिये नहीं। मैं अपनी भावना को आचार्यश्री के शब्दों में व्यक्त करदूं कि—

भारत रूपी मानसरोवर के हंसो[31]! संगठित होकर अपनी शक्ति केन्द्रित करो[32]। संघ-सेवा का बहुत बड़ा माहात्म्य है। यह कोई साधारण कार्य नहीं है। संघ की उत्कृष्ट सेवा करने से तीर्थंकर गौत्र-वन्ध हो सकता हैं। अगर आप संघ की सेवा करेंगे तो आपका कल्याण होगा[33]।

संदर्भ – सूत्र

१. जवाहर विचारसार, अ० ६, साम्यवाद।

२. जवाहर विचारसार, अ० ६, संचयवृत्ति।

लिए जो भाष्य उन्होंने प्रस्तुत किया, वह मनोमुग्धकारी एवं प्रशंसनीय है। सच्चे संघ-सेवक के लिए तो यह सैद्धान्तिक सत्य है। वह तो संघ के लिए समर्पित होकर संघ के लिए जीता है और संघ के लिए ही मरता है। आज के युग-संदर्भ में आत्म-निरीक्षण के लिए उनका विचारावेश पूर्णतः सत्यता की उद्घोषणा कर रहा है—

संघ की एकता के पवित्र कार्य में विघ्न डालना घोर पाप के वन्ध का कारण है। भगवान् ने संघ में अनेकता उत्पन्न करना सब से बड़ा पाप बताया है। और सभी पाप इस पाप से छोटे हैं। चतुर्थ व्रत खंडित होने पर नवीन दीक्षा देकर साधु को शुद्ध किया जा सकता है लेकिन संघ की शांति और एकता भंग करके अशांति और अनैक्य फैलाने वाला—संघ को छिन्न-भिन्न करने वाला दशवें प्रायश्चित्त का अधिकारी माना गया है। इससे यह स्पष्ट है कि संघ को छिन्न-भिन्न करना घोर पाप का कारण है। जो लोग अपना बड़प्पन कायम करने के लिए दुराग्रह करके संघ में विग्रह उत्पन्न करते हैं, वे घोर पाप करते हैं। अगर आप संघ की शांति और एकता के लिए सच्चे हृदय से प्रार्थना करेंगे तो आपका हृदय तो निष्पाप बनेगा ही, साथ ही संघ में अशांति फैलाने वालों के हृदय का पाप भी धुल जायगा। संघ में एकता होने पर संघ की सब बुराइयां नष्ट हो जाती हैं[30]।

सेवा का संकल्प लें !

विचार एवं क्रांति से प्रेरित वाणी के धनी—मनस्वी पूज्यश्री की जन्म-शताब्दी पर एक नवीन संकल्प लें कि उनके वैचारिक सपने को मूर्तरूप देकर भक्तिसेवा का अनूठा उदाहरण उपस्थित करें जिससे कि समाज सुदृढ़ता की ओर बढ़े। आप अपने कर्त्तव्य की पुकार से मुकरिये नहीं। मैं अपनी भावना को आचार्यश्री के शब्दों में व्यक्त करदूं कि—

भारत रूपी मानसरोवर के हंसो[31] ! संगठित होकर अपनी शक्ति केन्द्रित करो[32]। संघ-सेवा का बहुत बड़ा माहात्म्य है। यह कोई साधारण कार्य नहीं है। संघ की उत्कृष्ट सेवा करने से तीर्थंकर गौत्र-वन्ध हो सकता हैं। अगर आप संघ की सेवा करेंगे तो आपका कल्याण होगा[33]।

संदर्भ – सूत्र

१. जवाहर विचारसार, अ० ६, साम्यवाद।

२. जवाहर विचारसार, अ० ६, संचयवृत्ति।

लिए जो भाष्य उन्होंने प्रस्तुत किया, वह मनोमुग्धकारी एवं प्रशंसनीय है। सच्चे संघ-सेवक के लिए तो यह सैद्धान्तिक सत्य है। वह तो संघ के लिए समर्पित होकर संघ के लिए जीता है और संघ के लिए ही मरता है। आज के युग-संदर्भ में आत्म-निरीक्षण के लिए उनका विचारावेश पूर्णतः सत्यता की उद्घोषणा कर रहा है—

संघ की एकता के पवित्र कार्य में विघ्न डालना घोर पाप के बन्ध का कारण है। भगवान् ने संघ में अनेकता उत्पन्न करना सब से बड़ा पाप बताया है। और सभी पाप इस पाप से छोटे हैं। चतुर्थ व्रत खंडित होने पर नवीन दीक्षा देकर साधु को शुद्ध किया जा सकता है लेकिन संघ की शांति और एकता भंग करके अशांति और अनैक्य फैलाने वाला—संघ को छिन्न-भिन्न करने वाला दशवें प्रायश्चित्त का अधिकारी माना गया है। इससे यह स्पष्ट है कि संघ को छिन्न-भिन्न करना घोर पाप का कारण है। जो लोग अपना बड़प्पन कायम करने के लिए दुराग्रह करके संघ में विग्रह उत्पन्न करते हैं, वे घोर पाप करते हैं। अगर आप संघ की शांति और एकता के लिए सच्चे हृदय से प्रार्थना करेंगे तो आपका हृदय तो निष्पाप बनेगा ही, साथ ही संघ में अशांति फैलाने वालों के हृदय का पाप भी धुल जायगा। संघ में एकता होने पर संघ की सब बुराइयां नष्ट हो जाती हैं[30]।

सेवा का संकल्प लें!

विचार एवं क्रांति से प्रेरित वाणी के धनी—मनस्वी पूज्यश्री की जन्म-शताब्दी पर एक नवीन संकल्प लें कि उनके वैचारिक सपने को मूर्तरूप देकर भक्तिसेवा का अनूठा उदाहरण उपस्थित करें जिससे कि समाज सुदृढ़ता की ओर बढ़े। आप अपने कर्त्तव्य की पुकार से मुकरिये नहीं। मैं अपनी भावना को आचार्यश्री के शब्दों में व्यक्त करदूं कि—

भारत रूपी मानसरोवर के हंसो[31]! संगठित होकर अपनी शक्ति केन्द्रित करो[32]। संघ-सेवा का बहुत बड़ा माहात्म्य है। यह कोई साधारण कार्य नहीं है। संघ की उत्कृष्ट सेवा करने से तीर्थंकर गोत्र-बन्ध हो सकता हैं। अगर आप संघ की सेवा करेंगे तो आपका कल्याण होगा[33]।

संदर्भ – सूत्र

१. जवाहर विचारसार, अ० ६, साम्यवाद।

२. जवाहर विचारसार, अ० ६, संचयवृत्ति।

लिए जो भाष्य उन्होंने प्रस्तुत किया, वह मनोमुग्धकारी एवं प्रशंसनीय है। सच्चे संघ-सेवक के लिए तो यह सैद्धान्तिक सत्य है। वह तो संघ के लिए समर्पित होकर संघ के लिए जीता है और संघ के लिए ही मरता है। आज के युग-संदर्भ में आत्म-निरीक्षण के लिए उनका विचारावेश पूर्णतः सत्यता की उद्घोषणा कर रहा है—

संघ की एकता के पवित्र कार्य में विघ्न डालना घोर पाप के बन्ध का कारण है। भगवान् ने संघ में अनेकता उत्पन्न करना सब से बड़ा पाप बताया है। और सभी पाप इस पाप से छोटे हैं। चतुर्थ व्रत खंडित होने पर नवीन दीक्षा देकर साधु को शुद्ध किया जा सकता है लेकिन संघ की शांति और एकता भंग करके अशांति और अनैक्य फैलाने वाला—संघ को छिन्न-भिन्न करने वाला दशवें प्रायश्चित्त का अधिकारी माना गया है। इससे यह स्पष्ट हैं कि संघ को छिन्न-भिन्न करना घोर पाप का कारण है। जो लोग अपना बड़प्पन कायम करने के लिए दुराग्रह करके संघ में विग्रह उत्पन्न करते हैं, वे घोर पाप करते हैं। अगर आप संघ की शांति और एकता के लिए सच्चे हृदय से प्रार्थना करेंगे तो आपका हृदय तो निष्पाप बनेगा ही, साथ ही संघ में अशांति फैलाने वालों के हृदय का पाप भी धुल जायगा। संघ में एकता होने पर संघ की सब बुराइयां नष्ट हो जाती हैं[30]।

सेवा का संकल्प लें !

विचार एवं क्रांति से प्रेरित वाणी के धनी—मनस्वी पूज्यश्री की जन्म-शताब्दी पर एक नवीन संकल्प लें कि उनके वैचारिक सपने को मूर्तरूप देकर भक्तिसेवा का अनूठा उदाहरण उपस्थित करें जिससे कि समाज सुदृढ़ता की ओर बढ़े। आप अपने कर्त्तव्य की पुकार से मुकरिये नहीं। मैं अपनी भावना को आचार्यश्री के शब्दों में व्यक्त करदूं कि—

भारत रूपी मानसरोवर के हंसो[31]! संगठित होकर अपनी शक्ति केन्द्रित करो[32]। संघ-सेवा का बहुत बड़ा माहात्म्य है। यह कोई साधारण कार्य नहीं है। संघ की उत्कृष्ट सेवा करने से तीर्थंकर गौत्र-बन्ध हो सकता है। अगर आप संघ की सेवा करेंगे तो आपका कल्याण होगा[33]।

संदर्भ – सूत्र

१. जवाहर विचारसार, अ० ६, साम्यवाद।
२. जवाहर विचारसार, अ० ६, संचयवृत्ति।

अधिकार देने में कृपणता न की जाये[२२]। प्रकृति के नियम को याद रखिये, बिना स्त्री जाति के उद्धार के आपका उद्धार होना कठिन है[२३]।

नारी-शिक्षा कैसी हो ?

नारी जाति के प्रति सम्मान की भावना के कर्त्तव्य-बोध की चुटीली लताड़ के साथ पुरुषों को उसका गौरव बताया। उन्होंने केवल पुरुष को ही कहा हो, ऐसी बात नहीं है। उन्होंने नारी को ही नारी-जागरण का प्रशस्त पथ भी निर्देश किया। नारी को उसका जाति-स्वरूप बताते हुए कहा—"पुरुष आपको आपके अधिकार दे देंगे तो बिना शिक्षा के आप उन्हें निभा सकेंगी ? आपका शिक्षित होना, इसलिए जरूरी है[२४]। स्त्री-शिक्षा का तात्पर्य कोरा पुस्तक ज्ञान नहीं है। अक्षर-ज्ञान के साथ कर्त्तव्य-ज्ञान की शिक्षा दी जायेगी, तभी शिक्षा का वास्तविक प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा[२५]। विद्या-लाभ के लिए लोग सरस्वती-अरे ! स्त्री की पूजा करते हैं, फिर कहते हैं कि स्त्री-शिक्षा निषिद्ध है[२६]। स्त्री-शिक्षा का अर्थ यह नहीं है कि आप अपनी बहू-बेटियों को यूरोपियन लेडी बनावें और न यही अर्थ है कि उन्हें घूंघट में लपेटे रहें[२७]। उन्हें ऐसी शिक्षा दी जाये, जिससे वे अज्ञान के अन्धकार से बाहर निकल कर ज्ञान के प्रकाश में आ सकें[२८]। उन्हें ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिये, जिसके कारण उन्हें अपने कर्त्तव्य का, उत्तरदायित्व का, अपने स्वरूप का, अपनी शक्ति का, अपनी महत्ता का और अपनी दिव्यता का बोध हो सके। उन्हें ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए, जिससे वे अबला न रहें—प्रबला बनें। पुरुषों का बोझ न रहें, शक्ति बनें। वे कलहकारिणी न हों, कल्याणी बनें। उन्हें जगज्जननी, वरदानी एवं भवानी बनाने वाली शिक्षा की आवश्यकता है[२६]।

इन उपर्युक्त शब्दों में तथा इनमें निहित उदात्त विचारों की दीर्घ दृष्टि, क्या नहीं कह गई, देख गई ? यदि नारी जाति उक्त भावानुसार हो जाये, तो विश्व को स्वर्ग बनने में देर न लगे।

हमें आचार्यश्री के विचारक स्वरुप में विराट क्रांति का दर्शन होता है। हर पहलू और हर रंग का विषय उनकी चिंतन की परतों को एक के बाद एक उजागर करता ही चला गया।

संघ-निष्ठा का सच्चा उद्‌घोष :

पूज्यश्री संघ के अधिनायक पद पर थे, इस नाते संघीय व्यवस्थाओं से वे अपने को परे नहीं समझते थे। संघीय निष्ठा और एकता-संगठन के

लिए जो भाष्य उन्होंने प्रस्तुत किया, वह मनोमुग्धकारी एवं प्रशंसनीय है । सच्चे संघ-सेवक के लिए तो यह सैद्धान्तिक सत्य है । वह तो संघ के लिए समर्पित होकर संघ के लिए जीता है और संघ के लिए ही मरता है । आज के युग-संदर्भ में आत्म-निरीक्षण के लिए उनका विचारावेश पूर्णतः सत्यता की उद्घोषणा कर रहा है—

संघ की एकता के पवित्र कार्य में विघ्न डालना घोर पाप के बन्ध का कारण है । भगवान् ने संघ में अनेकता उत्पन्न करना सब से बड़ा पाप बताया है । और सभी पाप इस पाप से छोटे हैं । चतुर्थ व्रत खंडित होने पर नवीन दीक्षा देकर साधु को शुद्ध किया जा सकता है लेकिन संघ की शांति और एकता भंग करके अशांति और अनैक्य फैलाने वाला—संघ को छिन्न-भिन्न करने वाला दशवें प्रायश्चित्त का अधिकारी माना गया है । इससे यह स्पष्ट हैं कि संघ को छिन्न-भिन्न करना घोर पाप का कारण है । जो लोग अपना बड़प्पन कायम करने के लिए दुराग्रह करके संघ में विग्रह उत्पन्न करते हैं, वे घोर पाप करते हैं । अगर आप संघ की शांति और एकता के लिए सच्चे हृदय से प्रार्थना करेंगे तो आपका हृदय तो निष्पाप बनेगा ही, साथ ही संघ में अशांति फैलाने वालों के हृदय का पाप भी धुल जायगा । संघ में एकता होने पर संघ की सब बुराइयां नष्ट हो जाती हैं[30] ।

सेवा का संकल्प लें !

विचार एवं क्रांति से प्रेरित वाणी के धनी—मनस्वी पूज्यश्री की जन्म-शताब्दी पर एक नवीन संकल्प लें कि उनके वैचारिक सपने को मूर्तरूप देकर भक्तिसेवा का अनूठा उदाहरण उपस्थित करें जिससे कि समाज सुदृढ़ता की ओर बढ़े । आप अपने कर्त्तव्य की पुकार से मुकरिये नहीं । मैं अपनी भावना को आचार्यश्री के शब्दों में व्यक्त करदूं कि—

भारत रूपी मानसरोवर के हंसो[31] ! संगठित होकर अपनी शक्ति केन्द्रित करो[32] । संघ-सेवा का बहुत बड़ा माहात्म्य है । यह कोई साधारण कार्य नहीं है । संघ की उत्कृष्ट सेवा करने से तीर्थंकर गोत्र-बन्ध हो सकता हैं । अगर आप संघ की सेवा करेंगे तो आपका कल्याण होगा[33] ।

संदर्भ – सूत्र

१. जवाहर विचारसार, अ० ६, साम्यवाद ।

२. जवाहर विचारसार, अ० ६, संचयवृत्ति ।

३. वही, धन ।

४. वही, धन ।

५. जवाहर विचारसार, अ० ७, आहार त्याग–अनशन ।

६. वही, उपवास ।

७. वही, अ० ८, क्रियाशील बनो ।

८. वही, वचन और कार्य ।

९. जवाहर विचारसार, अ० ९, वर्ण–व्यवस्था के विना भारत की दुर्दशा ।

१०. वही, अ० १०, आधुनिक शिक्षा और उसका दुष्परिणाम ।

११. वही, " "

१२. वही,

१३. जवाहर विचारसार, अ० १३, गौ ।

१४. वही, १५. वही ।

१६. वही, खेती ।

१७. वही, कृषि । १८. वही, चरखा ।

१९. पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. की जीवनी, सन् ३१ का दिल्ली चातुर्मास ।

२०. जवाहर विचारसार, अ० १४, स्त्री सुधार ।

२१. वही, २२. वही, २३. वही ।

२४. जवाहर विचारसार, अ० १४, स्त्री शिक्षा ।

२५. वही, २६. वही, २७. वही, २८. वही, २९. वही ।

३०. जवाहर विचारसार, अ० ६, ऐक्य भंग पाप है ।

३१. वही, संघ सेवा ।

३२. वही, ३३. वही ।

★ ☆

प्रभावक व्यक्तित्व : कल्याणक विचार

● डा० महेन्द्र भानावत

संत : सौरभ :

संत सुगंध होता है । एक ऐसी सुगन्ध जो हर प्राणी को खुशनुमा बनाती है । तब कितना महक पड़ता है मन । आदमी कितना सुखद और स्वस्थ बन जाता है जब उसकी सारी पीड़ाएं, दुखदर्द, कलह, चिंताएं और झगड़े-टंटे सूखे पत्तों की तरह हवा हो जाते हैं रड़खड़ जाते हैं । यह सुगंध फूलों की सुगंध से भी निराली होती है । फूलों की सुगंध अस्थायी, क्षणिक होती है । फूल सुगंध देकर झड़ जाते हैं, क्षीण हो जाते हैं, अपने आपको मिटा देते हैं पर संतों की सुगन्ध कभी नहीं मिटती, फलती, फूलती, फूटती रहती है। इस सुगन्ध का प्रभाव बड़ा व्यापक और गहन होता है और उतना ही इसका विस्तार, फैलाव होता है ।

संत : बहता पथ :

संत बहता पथ होता है । पथ का क्या बहना, वह तो स्थिर होता है । बहती तो नदी है परन्तु खासियत उसकी है जो पथ को बहाये । रुकता पथ रोड़ी हो जा जाता है, गन्दगी का ढेर । संत स्वयं बहता है और पथ को अपने साथ बहाता है । यह बहाव गंगा का बहाव है जो अपने साथ सारे जहान का मैला-कुचैला ले जाने की क्षमता रखता है परन्तु जो स्वयं निर्मल है, संत ऐसा ही होता है ।

संत : मन-आंगन का बुहारनहार :

संत बुहारा होता । बुहारा जैसे हमारे घर आंगन को स्वच्छ-साफ कर देता है, उसी प्रकार मनुष्य के मन-आंगन की समस्त बुराइयों को संत बुहारता है । बुहारा अच्छाइयां नहीं चाहता, संत भी अच्छाइयां नहीं मांगता। बुहारे की तरह वह भी मनुष्य की समस्त बुराइयों की भिक्षा मांगता है ।

बुराइयां जब बुहर जाती है आंगन स्वतः ही साफ सुथरा और आइना बन जाता है। संत इसी प्रकार मनुष्य–मन को बुहार कर उसे आइना बनाता है ताकि वह स्वयं अपने आपको देखे–परखे। अपनी आत्मा को देखता हुआ वह परमात्मा को प्राप्त करे।

सान्निध्य और प्रेरणा :

आचार्य श्री जवाहरलाल जी ये तीनों थे। उनका सान्निध्य, उनकी प्रेरणा, उनके प्रवचन, उनके दर्शन, सचमुच में एक दिव्य पुरुष की ज्योति–किरण थे, जिसने अनेकानेक मनुष्यों को सुपथ दिया, जीवन–ज्योति दी और आत्मबल–प्रकाश का वह सब कुछ दिया जिससे मनुष्य 'उत्तम मनुष्य' बन कर कइयों का आराध्य, पथ–प्रदर्शक और उन्नायक, अधिनायक बन कर एक मिसाल कायम कर सके। वे सचमुच में जवाहर थे, हर हर थे, क्या जैन और क्या अजैन, सभी धर्मों, पंथों और संप्रदायों के लोग उन्हें बड़ी श्रद्धापूर्वक सुनते थे, उनके उपदेशों को हृदयंगम करते और वन्दना–नमस्कार करते थे। उनके प्रभावी व्यक्तित्व और कल्याणक विचारों ने कइयों को अमानवीय कुकृत्यों से बचाया।

उनकी वाणी के प्रभाव में आकर कई लोगों ने आत्मसमर्पण कर अपनी बुराइयों को, अपने पापों को प्रकटित किया, उनके लिये प्रायश्चित्त किया और भविष्य में ऐसा कार्य नहीं करने के लिये सौगन्ध लिये। कई चोर, मीणों ने चोरियां करनी बंद कर दीं, लूटेरों ने लूटपाट मचाना छोड़ दिया, कइयों ने मदिरा–मांस का त्याग किया। हमेशा के लिये कई कसाइयों ने हिंसा कर्म छोड़ दिया। उनके संपर्क में आकर कई लोग जैनी बन गये। इनकी श्रद्धा, शरण और आस्था रखने वाले कई व्यक्तियों को भारी संकटों और कठिनाइयों से मुक्ति मिली, अनिष्ट की आशंकाओं से उनका बचाव हुआ और इज्जत आबरू पर आई आंच, गई साबित होकर उनकी प्रतिष्ठा को चार चाँद लगे। इससे लोकमन पर उनके प्रभाव का अनुमान भली प्रकार लगाया जा सकता है।

आचार्यश्री से प्रेरणा पाकर कई व्यक्तियों ने लोक–शिक्षण का कार्य हाथ में लिया, कइयोंने अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपनी कमाई में से कुछ हिस्सा निकाल कर जनहित कार्य में लगाया तथा कुछ ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने अपने आपको जनसेवा के लिये समर्पित कर दिया। सरकारी अथवा गैर सरकारी नौकरियों में काम करने वाले कई लोगों ने ईमानदारीपूर्वक बिना किसी रिश्वत और भ्रष्ट आचरण के सेवा कार्य करने के व्रत लिये और अपने जीवन को कंचन की तरह खरा बनाया।

मेवाड़ क्षेत्र में आदिवासी इलाके में पंडित उदय जैन ने कानोड़ में एक छोटा सा स्कूल प्रारंभ किया, जिसका नाम ही 'जवाहर विद्यापीठ' रखा। कोई तीस वर्ष पूर्व स्थापित यह विद्यापीठ आज एक महाविद्यालय के रूप में उस आदिवासी क्षेत्र में शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग बना हुआ है। 'जवाहर छात्रावास' नाम से एक छात्रवास भी यहां चलता है, जहां धार्मिक शिक्षा-दीक्षा मूलक संस्कारों में बच्चों को ढाला पाला जाता है।

पूज्य श्री जवाहराचार्य के ही प्रेरणापरक उद्‌बोधनों से श्री चिमनलाल जी सिरोहिया में साधु बावों तथा फकीरों को नियमित रूप से भोजन कराने की भावना पैदा हुई जो ठेठ उनके जीवन काल तक चलती रही। उनके स्वर्गवास के बाद उनके सुपुत्र श्री झूमरलाल जी सिरोहिया ने पैंतालिस हजार रुपये की राशि धर्मार्थ निकाल कर 'झूमरलाल सिरोहिया ट्रस्ट' स्थापित किया। इस ट्रस्ट द्वारा विद्यार्थी, विधवा और वृद्धों की सहायता की जाती है।

असहाय छात्रों को छात्रवृत्ति, पुस्तकें खरीदने के लिये पैसा, विधवाओं को प्रतिमाह सहायता तथा वृद्धों के भरण पोषण की समुचित व्यवस्था के लिये नियमित रूप से प्रतिमाह दान स्वरूप राशि निकाली जाती है। उदयपुर में श्मशान घाट के पास गौशाला बनाने में भी ट्रस्ट का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। उदयपुर के पास सीसारमा में बोकड़शाला के लिये हाल ही में इस ट्रस्ट ने सोलह बीघा जमीन खरीद कर संघ को दी हैं जहां अमरये बकरों को पाला जायेगा। इस ट्रस्ट द्वारा जैन, अजैन, हरिजन, मुसलमान आदि ऐसे प्रत्येक छात्र को छात्रवृत्ति दी जाती है जो गरीब और निस्सहाय होता है।

पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज की ही प्रबल प्रभावना से उदयपुर के श्री गणेशलाल जी वंब ने राजकीय सेवा से अवकाश प्राप्त करने के बाद मरीजों की सेवा का व्रत लिया। तदनुसार श्री वंब उदयपुर के जनाना तथा मरदाना दोनों अस्पतालों में जाकर प्रतिदिन मरीजों की देख भाल, उनकी सेवा-सुश्रुषा, गरीबों के लिये दवाई का प्रबन्ध, भोजन आदि की व्यवस्था तथा उसकी अन्यान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। ये नियमित रूप से प्रतिदिन अस्पताल जाकर हर वार्ड के हर मरीज को देखते भालते हैं। मरीजों की सेवा का, निःस्वार्थ सेवा का इससे बड़ा अनुकरणीय उदाहरण शायद ही कहीं मिले।

इसी प्रकार का एक सेवा-कार्य मांडलगढ़ में श्री मोहनलालजी नागोरी करते आ रहे हैं। श्री नागोरीजी राजकीय सेवा से अवकाश प्राप्त हैं परन्तु कई बरसों से मांडलगढ़ के ऐसे निराश्रित, गरीब और असहाय लोगों को इनका

बुराइयां जब बुहर जाती है आंगन स्वतः ही साफ सुथरा और आइना बन जाता है। संत इसी प्रकार मनुष्य–मन को बुहार कर उसे आइना बनाता है ताकि वह स्वयं अपने आपको देखे–परखे। अपनी आत्मा को देखता हुआ वह परमात्मा को प्राप्त करे।

सान्निध्य और प्रेरणा :

आचार्य श्री जवाहरलाल जी ये तीनों थे। उनका सान्निध्य, उनकी प्रेरणा, उनके प्रवचन, उनके दर्शन, सचमुच में एक दिव्य पुरुष की ज्योति–किरण थे, जिसने अनेकानेक मनुष्यों को सुपथ दिया, जीवन–ज्योति दी और आत्मबल–प्रकाश का वह सब कुछ दिया जिससे मनुष्य 'उत्तम मनुष्य' बन कर कइयों का आराध्य, पथ–प्रदर्शक और उन्नायक, अधिनायक बन कर एक मिसाल कायम कर सके। वे सचमुच में जवाहर थे, हर हर थे, क्या जैन और क्या अजैन, सभी धर्मों, पंथों और संप्रदायों के लोग उन्हें बड़ी श्रद्धापूर्वक सुनते थे, उनके उपदेशों को हृदयंगम करते और वन्दना–नमस्कार करते थे। उनके प्रभावी व्यक्तित्व और कल्याणक विचारों ने कइयों को अमानवीय कुकृत्यों से बचाया।

उनकी वाणी के प्रभाव में आकर कई लोगों ने आत्मसमर्पण कर अपनी बुराइयों को, अपने पापों को प्रकटित किया, उनके लिये प्रायश्चित्त किया और भविष्य में ऐसा कार्य नहीं करने के लिये सौगन्ध लिये। कई चोर, मीणों ने चोरियां करनी बंद कर दीं, लूटेरों ने लूटपाट मचाना छोड़ दिया, कइयों ने मदिरा–मांस का त्याग किया। हमेशा के लिये कई कसाइयों ने हिंसा कर्म छोड़ दिया। उनके संपर्क में आकर कई लोग जैनी बन गये। इनकी श्रद्धा, शरण और आस्था रखने वाले कई व्यक्तियों को भारी संकटों और कठिनाइयों से मुक्ति मिली, अनिष्ट की आशंकाओं से उनका बचाव हुआ और इज्जत आबरू पर आई आंच, गई साबित होकर उनकी प्रतिष्ठा को चार चाँद लगे। इससे लोकमन पर उनके प्रभाव का अनुमान भली प्रकार लगाया जा सकता है।

आचार्यश्री से प्रेरणा पाकर कई व्यक्तियों ने लोक–शिक्षण का कार्य हाथ में लिया, कइयोंने अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपनी कमाई में से कुछ हिस्सा निकाल कर जनहित कार्य में लगाया तथा कुछ ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने अपने आपको जनसेवा के लिये समर्पित कर दिया। सरकारी अथवा गैर सरकारी नौकरियों में काम करने वाले कई लोगों ने ईमानदारीपूर्वक बिना किसी रिश्वत और भ्रष्ट आचरण के सेवा कार्य करने के व्रत लिये और अपने जीवन को कंचन की तरह खरा बनाया।

मेवाड़ क्षेत्र में आदिवासी इलाके में पंडित उदय जैन ने कानोड़ में एक छोटा सा स्कूल प्रारंभ किया, जिसका नाम ही 'जवाहर विद्यापीठ' रखा। कोई तीस वर्ष पूर्व स्थापित यह विद्यापीठ आज एक महाविद्यालय के रूप में उस आदिवासी क्षेत्र में शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग बना हुआ है। 'जवाहर छात्रावास' नाम से एक छात्रवास भी यहां चलता है, जहां धार्मिक शिक्षा-दीक्षा मूलक संस्कारों में बच्चों को ढाला पाला जाता है।

पूज्य श्री जवाहराचार्य के ही प्रेरणापरक उद्बोधनों से श्री चिमनलाल जी सिरोहिया में साधु बावों तथा फकीरों को नियमित रूप से भोजन कराने की भावना पैदा हुई जो ठेठ उनके जीवन काल तक चलती रही। उनके स्वर्गवास के बाद उनके सुपुत्र श्री भूमरलाल जी सिरोहिया ने पैंतालिस हजार रुपये की राशि धर्मार्थ निकाल कर 'भूमरलाल सिरोहिया ट्रस्ट' स्थापित किया। इस ट्रस्ट द्वारा विद्यार्थी, विधवा और वृद्धों की सहायता की जाती है।

असहाय छात्रों को छात्रवृत्ति, पुस्तकें खरीदने के लिये पैसा, विधवाओं को प्रतिमाह सहायता तथा वृद्धों के भरण पोषण की समुचित व्यवस्था के लिये नियमित रूप से प्रतिमाह दान स्वरूप राशि निकाली जाती है। उदयपुर में श्मशान घाट के पास गौशाला बनाने में भी ट्रस्ट का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। उदयपुर के पास सीसारमा में बोकड़शाला के लिये हाल ही में इस ट्रस्ट ने सोलह बीघा जमीन खरीद कर संघ को दी है जहां अमरये बकरों को पाला जायेगा। इस ट्रस्ट द्वारा जैन, अजैन, हरिजन, मुसलमान आदि ऐसे प्रत्येक छात्र को छात्रवृत्ति दी जाती है जो गरीब और निस्सहाय होता है।

पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज की ही प्रबल प्रभावना से उदयपुर के श्री गणेशलाल जी बंब ने राजकीय सेवा से अवकाश प्राप्त करने के बाद मरीजों की सेवा का व्रत लिया। तदनुसार श्री बंब उदयपुर के जनाना तथा मरदाना दोनों अस्पतालों में जाकर प्रतिदिन मरीजों की देख भाल, उनकी सेवा-सुश्रुषा, गरीबों के लिये दवाई का प्रबन्ध, भोजन आदि की व्यवस्था तथा उसकी अन्यान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। ये नियमित रूप से प्रतिदिन अस्पताल जाकर हर वार्ड के हर मरीज को देखते भालते हैं। मरीजों की सेवा का, निःस्वार्थ सेवा का इससे बड़ा अनुकरणीय उदाहरण शायद ही कहीं मिले।

इसी प्रकार का एक सेवा-कार्य मांडलगढ़ में श्री मोहनलालजी नागोरी करते आ रहे हैं। श्री नागोरीजी राजकीय सेवा से अवकाश प्राप्त हैं परन्तु कई बरसों से मांडलगढ़ के ऐसे निराश्रित, गरीब और असहाय लोगों को इनका

बहुत बड़ा संबल है जो बीमार रहते हैं और दवादारू की स्थिति में नहीं हो
हैं। प्रातःकाल मे घूमने के बहाने ऐसे लोगों के घरों में चले जाते हैं और ज
लोग बीमार होते हैं, उन्हें सम्बन्धित दवा गोलियां, जो प्रायः अपनी जेब में र
रहते है, दे देते हैं। जिनके पास खाने की व्यवस्था नहीं होती है, उन्हें अप
घर से दलिया, खिचड़ी पहुंचवाते हैं और जब तक वे पूर्ण स्वस्थ नहीं हो
जाते, उनकी लगातार देख भाल करते रहते हैं। कई जगह धर्मार्थ औषधालय
भी चल रहे हैं।

इससे यह स्पष्ट है कि आचार्यश्री में मानव-कल्याण की भावना
कितने गहरे रूप में गहराई हुई थी। आज इस बात की महती आवश्यकता है
कि आचार्यश्री की प्रेरक घटनाओं और जीवन प्रसंगों को अधिकाधिक रूप में
लोगों के पास पहुंचायें और उनसे प्रेरणा पाकर समाज के विविध क्षेत्रों में जो
लोग एकांत निष्ठा-भाव से कल्याणकार्यों में जुटे हुए हैं, उन्हें भी समाज के
समक्ष उजागर किया जाय ताकि अन्य लोगों पर भी उनका व्यापक असर हो
और उन्हें भी ऐसे कार्य करने की प्रेरणा और प्रोत्साहन प्राप्त हो।

मनुष्यों के लिये अगर मृग निरर्थक है तो मृगों के लिये क्या मनुष्य निरर्थक नहीं है ? निरर्थकता और सार्थकता की कसौटी मनुष्य का स्वार्थ होना उचित नहीं है। मानवीय स्वार्थ की कसौटी पर किसी की निरर्थकता का निर्णय नहीं किया जा सकता। मृग प्रकृति की शोभा हैं। उन्हें जीवित रहने का उतना ही अधिकार है जितना मनुष्य को। क्या समग्र विश्व का पट्टा किसी ने मनुष्य-जाति के नाम लिख दिया ? अगर नहीं, तो जङ्गली पशुओं को सुख-चैन से क्यों न रहने दिया जाय ?

भारत का सामाजिक-राजनीतिक पुनर्जागरण का काल और आचार्यश्री की भूमिका

● श्री जवाहरलाल मूणोत

साधु संस्था और परम्परा :

आम तौर पर, संस्थागत साधु-संत, परम्परा और गतानुगति के पुजारी होते हैं। अपने आस-पास की घटनाएं उन्हें आलोड़ित नहीं करतीं। अपना परिवेश उन्हें परेशान नहीं करता। वे जिन मूल्यों और उपदेशों को शाश्वत समझते हैं, उन्ही के घेरे में अपने आपको बन्द कर रखना उन्हें सुहाता है। उनके लिये, अपने युग विशेष की सामयिकता कोई कीमत नहीं रखती। और यह बात, अमूमन सभी प्राचीन और परम्परागत संस्थागत साधुओं और सन्तों पर लागू होती है।

सामयिक समस्याओं से उदासीनता के कारण :

सामयिक समस्याओं से दूर भागने के पीछे शायद अनेक कारण हों। हो सकता है, धर्मगुरु को, सामयिक समस्या को समझने में कठिनाई होती हो। यह डर भी हो सकता है कि कहीं वह आधुनिक समस्या की मीमांसा में कोई भद्दी भूल न कर बैठे और इस तरह, अपने धर्म का उपहास कर डाले। उसकी उदासीनता इसलिये भी हो सकती है क्योंकि वह पुरातन और प्राचीन में ही अपने आपको सुरक्षित पाता है और सामयिक प्रश्नों में अपने आपको असहाय पाता है। कारण कुछ भी हो, सचाई यह जरूर है कि अधिकतर, हमारे धर्मगुरु (फिर वे चाहें किसी भी प्राचीन धर्म के हों), धार्मिक प्रमाण ग्रन्थों के चिन्तन, मनन और उन्हीं के उपदेशों तक अपने आपको सीमित रखते हैं। किसी भी प्रकार का मौलिक चिन्तन हो भी तो परिधि वही प्राचीन

धर्मग्रन्थों की ही रहती है। उनको सामयिकता की कसौटी पर कसा नहीं जाता।

इस भूमिका में, आइये, हम स्वयं अपने जैन धर्म की स्थिति को याद करें।

हिन्दुस्तान ने बीसवीं शताब्दी में कदम रखा। आवागमन के नये साधनों और उद्योगों के उत्पादनों के नये उपादानों ने देश की आर्थिक स्थिति को नया कलेवर देना शुरु किया। आधुनिक शिक्षा और विज्ञान-ज्ञान ने जनता के एक वर्ग विशेष को, चेतना का नया आलम्बन दिया, भारत में सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलनों की जड़े फैलने लगीं। और जागरण के इस अनुपम वातावरण में भारत के धार्मिक सत्पुरुषों और साधुओं ने अपनी दृष्टि के आयाम बढ़ाये, उन्हें केवल धार्मिक परम्पराएं और धर्म ग्रन्थ ही नहीं अपने आस-पास की जनता, उसकी समस्याएं और उसके जीवन के प्रश्न परेशान करने लगे।

दृष्टि का नया आयाम :

लेकिन कुछ बिरले क्रान्तदर्शी साधु ही साहस से परम्परागत जंजीर को तोड़ पाते हैं। बहुत कम होते हैं वे निडर संत जो लोकनिन्दा और नई बात को कहने की स्वाभाविक झिझक को भूल पाते हैं। आचार्यश्री जवाहर-लालजी महाराज साहब, उन इने-गिने युग-द्रष्टाओं में से थे जिनके लिये समाज की सामयिकता, सब से महत्त्वपूर्ण बात थी, धर्म और उसके उपदेश इसीलिये थे कि उनके माध्यम से जनता आज की समस्याओं के जवाब पा सके। जिस काल में श्री जवाहरलालजी महाराज साहब ने इन सामयिक समस्याओं की बात कहने की हिम्मत की, उन दिनों में जैन साधु के लिये यह सब बिलकुल अप्रत्याशित और अव्यावहारिक था।

याद करिये, आज से ६०-७० बरसों के पहिले के दिनों को। जैन समाज की हालत पर नजर डालिये। विशेष रूप से राजस्थान के जैन समाज को याद करिये। पर्दा एक ऐसी परम्परा दिखलाई पड़ती थी जो हिमालय जैसी अडिग और कठोर हो और जिस पर कोई चोट, कुछ भी कारगर न हो। जैन साधुओं को इस पर्दे से प्रतिदिन सरोकार पड़ता था, हर रोज वे अपने सामने अपने श्रावक वर्ग की अनगिनत महिलाओं को इस बन्धन में बंधी देखते थे, परन्तु यह बन्धन उन्हें कोई पीड़ा नहीं देता था। इस सामाजिक कुरीति से कोई सम्बन्ध नहीं था, जैन श्रमणों का।

सामयिक प्रश्नों का हल : आत्मयुद्ध की पहली लड़ाई :

श्री जवाहरलालजी महाराज ने भी उस काल का कठोर पर्दा देखा और उनकी वाणी फटकार की चाबुक बन गई। उनके चातुर्मास, उनके संभाषण, उनके व्याख्यान, इस पर्दे की निंदा करने, इसे दूर करने के लिये ही होने लगे। उनके लिये, अपने काल, अपने देश की कुरीति, आत्म-युद्ध की पहिली बड़ी लड़ाई थी।

और बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, वे भी तो आम-फहम थे। हमारे श्रावक मानते थे, इन गृहस्थी की बातों से महाराज साहब का क्या सरोकार ? वे भले और उनके हाथों में प्राचीन धर्मग्रन्थ भले, जिनमें से तीर्थंकरों और उनके काल के राजा-महाराजाओं की कथाएं सुनाई जाती थीं। परन्तु जवाहरलालजी महाराज साहब के लिये पहिला धर्म था, उनके सामने उपस्थित जन समुदाय को सच्ची शिक्षा देने का। और सामयिक प्रश्नों से भाग जाने से तो यह सही शिक्षा मिलने वाली नहीं थी। अतः हमारे आचार्यश्री, तेज तलवार की धार की तरह, इन सामाजिक कुरीतियों से लड़ने चले और उन्होंने सैकड़ों नौजवानों को इन बुराइयों का सामना करने की अद्भुत प्रेरणा दी।

लेकिन ये तो फिर भी बहुत नीचे स्तर की सामाजिक बुराइयां थीं। और फिर सारे देश में तो ये कुरीतियां थीं भी नहीं। अनेक प्रान्तों-प्रदेशों में न पर्दा था और न ही बाल-विवाह आदि। परन्तु कुछ कोढ़ जरूर थे जो सारे देश के समाज पर फैल रहे थे, जैसे अस्पृश्यता-अछूत समस्या। साधारण जैन जगत् तब यह मान कर चलता था कि इस जटिल प्रश्न पर भला महाराज साहब क्यों बोलने लगे ? धर्म के मूल में क्या है, कौन जाने परन्तु आम व्यवहार में तो जैन समाज में भी, ऊंच-नीच, छुआछूत और अस्पृश्य समस्या गहरी घुसी थी (और आज भी मौजूद है)। लेकिन क्रान्तिकारी साधु के लिये वर्जित क्षेत्र तो होते नहीं। १९२५ में, १९२६ और १९२७ में यानि उन दिनों में जब अछूतों के बारे में बोलना बहुत खतरनाक माना जाता था और स्वयं महात्मा गांधी को स्पृश्य हिन्दूओं की गालियां और पत्थरों का सामना करना पड़ता था, आचार्यश्री जवाहरलाल जी ने बार बार इस गर्हित परम्परा पर प्रहार किया और समाज से अछूत अस्पृश्य की समस्या को मानवीय आधार पर समाप्त करने की जोरदार मांग की।

स्वावलम्बन और स्वदेशीपन :

यह याद रखना बहुत आवश्यक है कि श्री आचार्यश्री ने अपनेआप

को इन्हीं सामाजिक प्रश्नों तक सीमित नहीं रखा। उन्होंने समाज की मूलभूत आर्थिक समस्याओं पर भी अपनी उंगली रखी। पहिला सवाल था—कृषि कार्य का। देश का सब से बड़ा और सब से अधिक गौरवशाली उद्योग—खेती। परन्तु जैन धर्म और जैन समाज की तथाकथित समझ से तो यह धंधा, यह पेशा, बिलकुल त्याज्य और वर्जित है। और भला इस असत्य और बेबुनियाद धारणा के साथ, आचार्यश्री की विचारधारा मेल क्यों खाने लगी? उन्होंने बहुत साहस के साथ, इस भ्रामक धारणा को निराधार बतलाया और कृषि कार्य, कृषि कर्म को, उत्तम आर्थिक व्यवसाय बतलाया। अपने आप में, यह एक असाधारण और अत्यन्त क्रान्तिकारी कदम था।

यही बात खादी और स्वदेशी पर लागू होती है। अगर गहराई से अनुशीलन किया जाय तो यह मानने के लिये अनेक कारण मिलेंगे कि श्री जवाहरलाल जी महाराज, परोक्ष रूप से स्वदेशी राजनीति और स्वदेशी आन्दोलन के बहुत प्रबल और सशक्त समर्थक थे। वे जहां जाते, खादी के गुणगान करते, खादी के व्यवहार के लिये श्रावकों पर दबाव डालते और बार-बार स्वदेशी के व्रत को अंगीकार करने के लिये उपदेश देते। उनके लिये स्वदेशी, सही सामयिक जैन धर्म था जो अहिंसा और अपरिग्रह का युग-संगम था।

और चूंकी श्री जवाहरलाल जी महाराज साहब के लिये अछूतोद्धार, खादी, स्वदेशी के प्रश्न समस्त भारत और विशेष रूप से जैन समाज के लिये परमावश्यक सवाल थे, यह प्रकट है कि उनका, महात्मा गांधी और उनके रचनात्मक कार्यकर्ताओं के लिये अपार आदर था। अपने अनेक व्याख्यानों में उन्होंने महात्मा गांधी के कामकाज की दिल खोल कर प्रशंसा की है। अछूतों के लिये अपना जीवन देने वाले श्री ठक्कर बापा, आचार्यश्री की सभाओं में आते और श्री महाराज साहब ठक्कर बापा को सच्चे जैनी, सच्चे श्रावक का आदर्श सिद्ध करते।

राष्ट्रधर्म की प्रतिष्ठा :

केवल ये गुण ही आचार्यश्री की स्मृति को सदैव उज्ज्वल रखने के लिये बहुत हैं। परन्तु आचार्यश्री केवल सामयिक समस्या को उठाने में ही सिद्धहस्त नहीं थे, उनका उतना ही बड़ा गुण था, उस सामयिक प्रश्न को अपनी अनूठी शैली से, समस्त श्रोताओं, समस्त जैन श्रावक-श्राविकाओं के लिये एक महान् धार्मिक और महत्त्वपूर्ण प्रश्न बना देना। आचार्यश्री के व्याख्यान, कोई नीरस उपदेशक के प्रवचन नहीं थे। इन्हीं ग्राम लोगों के और स्वदेश के

प्रमुख राष्ट्रीय प्रश्नों को, आचार्यश्री प्राचीन परम्पराओं, कथाओं और धर्म की खूबियों में इस प्रकार पिरो देते थे कि सुनने वालों के लिये, पर्दा हो या अछूत का सवाल, खादी हो, चाहे बाल विवाह का प्रश्न–गहन धार्मिक प्रश्न बन जाते थे जिनके उत्तर पाने के लिये श्रोता का मानसिक मन्थन शुरु हो जाता था।

यह आचार्यश्री जवाहरलाल जी महाराज की सफलता की बहुत बड़ी उपलब्धि थी और इसी उपलब्धि के फलस्वरूप, अनेक कमजोरियां और निर्बलताओं के बावजूद, हमारा जैन समाज, राष्ट्रीय पुनर्जागरण और राष्ट्रीय पुनरुत्थान के महान कार्य में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सका।

हम न भूलें कि भारत की लम्बी आजादी की लड़ाई की यात्रा में अनेक जैन युवक और युवतियों ने अपना सर्वस्व निछावर कर दिया। अनेक अज्ञात और ज्ञात युवक–युवतियों ने पर्दा छोड़ा, सामाजिक कुरीतियों को तोड़ा और दूसरों को तोड़ने की प्रेरणा दी।

जैन समाज ने खादी और स्वदेशी का व्रत लिया और राष्ट्रीय स्वतंत्रता के संग्राम में जेल गये, जुर्माने दिये, घर–बार कुर्क करवाये और कठिन यातनाएं सहीं। स्वदेशी का व्रत लेने वाले और अपनी संस्कृति और अपनी भाषा का गौरव धारण करने वाले बहादुर, समाज में पैदा हुए। क्या हम यह भूल सकते हैं कि इस समस्त जागरण और हलचल में, आचार्यश्री जवाहरलाल जी महाराज साहब का बहुत प्रमुख और विशिष्ट योगदान था।

सही श्रद्धांजलि :

परन्तु केवल स्व. आचार्यश्री के यशोगान से ही, अपने कर्तव्य से हम मुक्त नहीं हो सकते। आज भी इसी बात की भारी आवश्यकता है कि हमारे पूजनीय श्रमणगण, सामयिक समस्याओं, समाज की आधुनिक जरूरतों के प्रति जागरूक हों और उनकी ओर, उदासीन न रह कर, दृढ़तापूर्वक, इन विभिन्न प्रश्नों के प्रति समाज में जागृति–निर्माण में सहायक हों और उनके सही हल ढूंढ़ने में समाज की मदद करें। आचार्यश्री की स्मृति में यही सही श्रद्धांजलि हो सकेगी।

—●—

राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना के उन्नायक

● डॉ० सागरमल जैन

क्रान्तिकारी जीवन-धर्म :

जैनधर्म गतिशील (Dynamic) एवं क्रान्तिकारी धर्म रहा है और इसीलिये वह आज भी एक जीवित धर्म है। युग की आवश्यकता के अनुरूप चिन्तन और आचार-नियमों को नयी दिशा देने में वह सदैव जागृत रहा है और यथास्थितिवाद के विरुद्ध उसने सदैव ही क्रान्ति का बिगुल बजाया है। जब भी धर्म की मूलात्मा को रूढ़ियों और परम्पराओं ने दबोचने का प्रयत्न किया जैन तीर्थंकरों और जैन आचार्यों ने उसे उन सड़ी-गली परम्पराओं से मुक्ति दिलाकर नवचेतना दी है। ऋषभ, अरिष्टनेमि और पार्श्वनाथ ने अपने युग की मान्यताओं और रूढ़ियों के विरुद्ध क्रान्ति का स्वर मुखरित कर धर्म को नयी दिशा और नया जीवन दिया था। महावीर ने तो न केवल यज्ञयाग, वर्ण-व्यवस्था आदि की लोकरूढ़ियों को झकझोरा था अपितु स्वयं जैन धारा में भी क्रान्ति का नया स्वर दिया था। जैनधारा के परवर्ती चिन्तक और आचार्य भी युग की आवश्यकता के पारखी रहे हैं। उन्होंने काल प्रवाह में निस्सार हो गई रूढ़ियों को तोड़ा है और आचार विधियों की युग की आवश्यकता के अनुरूप नयी व्याख्याएं दी हैं। इस सम्बन्ध में आचार्य हरिभद्र, क्रान्तिवीर लोंकाशाह, पूज्य धर्मदासजी और ऋषि लवजी के योगदानों को भी नहीं भुलाया जा सकता है।

ज्योतिर्धर नक्षत्र :

इन्हीं क्रान्तिधरों की परम्परा में युगपुरुष आचार्य श्री जवाहर भी एक ज्योतिर्धर नक्षत्र थे। सम्भवतः समकालीन स्था० जैन परम्परा के

आचार्यों में वे एक ऐसे आचार्य थे, जिन्होंने युग की आवश्यकता को समझा था और हिंसा-अहिंसा, अल्प आरम्भ और महारम्भ आदि की युगानुकूल नयी व्याख्याएं प्रस्तुत कर समाज की रूढ़िवादिता को झकझोर दिया था। वे राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना के उन्नायक तथा शोषण, उत्पीड़न एवं विलासितापूर्ण जीवन के प्रखर आलोचक थे। वह युग था, जब देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा विलासी पाश्चात्य सभ्यता की ओर अभिमुख होता जा रहा था, जनता की सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना मर सी गई थी। धर्म के नाम पर प्रत्यक्ष की अल्पहिंसा की अपेक्षा परोक्ष की महाहिंसा अधिक उपादेय बन गई थी। स्वयं हिंसा नहीं करना, मात्र इसे ही अहिंसा का प्राण समझ लिया गया, फिर चाहे उस प्रत्यक्ष की अल्पहिंसा से बचने के लिये परोक्ष रूप में महाहिंसा का अनुमोदन ही क्यों नहीं होता हो। स्वयं चक्की चलाकर आटा पीसने की अपेक्षा मिलों का पिसा-पिसाया आटा खरीद लेना अहिंसक कार्य माना जाता था, ब्याज के धन्धे को निर्दोष एवं अल्पारम्भ और कृषि के धंधे को हिंसायुक्त एवं महारम्भ कहा जाता था। अत्याचार और उत्पीड़न का प्रतिरोध करने की अपेक्षा उसे सहन कर लेना ही वरेण्य समझ लिया गया था।

नई दृष्टि : नई दिशा :

आचार्य श्री ने इन सब भ्रान्त मान्यताओं की प्रखर आलोचना की और राष्ट्र और समाज को एक नयी दृष्टि दी। सर्व प्रथम उन्होंने बताया कि धर्म निरा वैयक्तिक नहीं है। धर्म समाज सापेक्ष है और समाज धर्म सापेक्ष है। धर्मविहीन समाज और समाजविहीन धर्म दोनों ही व्यक्ति के कल्याण में सहायक नहीं हो सकते हैं। वे कहते थे कि 'जब तक मनुष्य लौकिक (सामाजिक) धर्मों का पालन करने में दृढ़ नहीं होता तब तक वह लोकोत्तर (आध्यात्मिक) धर्मों का पालन भी ठीक ठीक नहीं कर सकता, क्योंकि लौकिक धर्म (सामाजिक धर्म) जनता का आचरण सुधारने वाले हैं।' उनकी दृष्टि में जिस प्रकार अच्छी फसल प्राप्त करने के लिये भूमि को सुधारना आवश्यक है, उसी प्रकार आध्यात्मिकता की फसल प्राप्त करने के लिये सामाजिकता की भूमि का सुधार करना आवश्यक है।

व्यक्ति समाज में रहता है, समाज में जीता है; अतः समाज की उपेक्षा करके अध्यात्म की बात करना एक कपोल कल्पना है। उनका आध्यात्म, समाज की उपेक्षा करने के लिये नहीं अपितु समाज को स्वस्थ बनाने के लिये था। 'समवायांग' सूत्र में वर्णित ग्राम धर्म, नगर धर्म, राष्ट्र धर्म, कुल धर्म,

संघ धर्म आदि की उन्होंने जो व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं, वे इस बात का सबल प्रमाण हैं कि आचार्यश्री की दृष्टि समाजसापेक्ष थी। उन्होंने भारतीय समाज और जैन समाज की दुःखती हुई रगों को पहचाना था और उस दिशा में समाज को एक युगबोध दिया था। उनके ही शब्दों में "संसार में बैठे हुए प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह समष्टि (समाज) को अपनी नजर में रखकर उसे हानि पहुंचे ऐसा बुरा काम न करे। जो मनुष्य समष्टि (समाज) को अपनी दृष्टि में रखकर कार्य नहीं करता, वह नीतिज्ञ नहीं कहा जा सकता।"

धर्म की समाज-सापेक्षता :

वे स्पष्ट रूप से यह मानते थे कि वह धर्म जो समष्टि (समाज) के कल्याण की उपेक्षा करके व्यष्टि (व्यक्ति) के कल्याण की बात करता है, एक बिना नींव के भवन की तरह है। उन लोगों की विचार धारा पर, जो कि धर्म को समाज-निरपेक्ष मानते हैं, चोट करते हुए वे कहते थे कि 'कई लोग कहते हैं कि ये (समाज और राष्ट्र की बातें) सांसारिक बाते हैं किन्तु यह नहीं सोचते कि जितनी धर्म की बाते हैं, वे सब संसार के ही विचार से की जाती हैं, जिससे संसार का कल्याण हो उसे ही धर्म की बात और जिससे संसार का पतन हो उसे पाप की बात कहते हैं। समाज और राष्ट्र आध्यात्मिक साधना की आधार भूमि हैं, उनकी अवहेलना करके अध्यात्म की दिशा में आगे बढ़ना सम्भव नहीं है। व्यक्ति को आध्यात्मिकता की दिशा में उन्मुख करने के लिये एक संस्कारी समाज एवं राष्ट्र का होना पहली अनिवार्यता है, क्योंकि व्यक्ति को जो कुछ संस्कार मिलते हैं, वे सब समाज से मिलते हैं।

साधक व्यक्ति समाज से पूर्णरूपेण निरपेक्ष नहीं हो सकता है। समाज का सुधार एवं कल्याण व्यक्ति का प्राथमिक कर्तव्य है। आचार्यश्री कहते थे कि जब केवलज्ञान (आध्यात्मिक साधन की पूर्णता) प्राप्त कर लेने के पश्चात् केवली भगवान भी जगत् के कल्याण के लिये उपदेश देते हैं तो साधारण संसारी मनुष्य का संसार में बैठे हुए यह कहना कि 'हमें (समाज या) राष्ट्र से क्या मतलब ?' कितनी भारी कृतघ्नता है। केवल सूत्र-चारित्र धर्म (आत्मिक धर्म) को मानना और राष्ट्र (या समाज) धर्म को न मानना वैसा ही है जैसा मकान की नींव खोदकर या वृक्ष की जड़ काटकर उसके सुरक्षित रहने की आशा करना। सूत्र-चारित्र धर्म मकान या वृक्ष के फल के समान है और राष्ट्र (या समाज) धर्म मकान की नींव या वृक्ष की जड़ के

समान है।" जो लोग ग्राम धर्म, नगर धर्म एवं राष्ट्र धर्म की अवहेलना करते हैं वे आध्यात्मिक साधना के लिये योग्य आधार भूमि ही प्रस्तुत नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्यश्री सामाजिक चेतना को धार्मिकता के परिप्रेक्ष्य में और धर्म को सामाजिकता के परिप्रेक्ष्य में विकसित करना चाहते थे। यही कारण था कि उन्होंने निर्जीव सामाजिक रूढ़ियों एवं परम्पराओं पर चोट की एवं एक स्वस्थ समाज के निर्माण की दिशा में उपासक वर्ग को उद्बोधित किया।

बेमेल विवाह, सामाजिक कार्यों में अपव्यय और प्रदर्शन, पर्दा प्रथा, मृत्युभोज, शोकप्रदर्शन जैसी अनेक सामाजिक कुरीतियों की उन्होंने न केवल खुलकर आलोचना की अपितु उपासकवर्ग को उनमें भागीदार नहीं बनने की प्रतिज्ञाएँ भी दिलवाईं। वे अपने प्रवचनों में अवसर इन समस्याओं को उठाते थे, इनके दुष्परिणामों का मार्मिक चित्रण करते थे और श्रोताओं को इनमें भागीदार नहीं बनने के लिए प्रेरित करते थे। इस प्रकार वे समाज को नयी दिशा देने वाले एवं सामाजिक चेतना के उन्नायक एक युगद्रष्टा और युगस्रष्टा आचार्य थे। आज जैन समाज के रूढ़िग्रस्त मारवाड़ी वर्ग में जो कुछ सामाजिक एवं राष्ट्रीय चैतन्यता हमें परिलक्षित होती है, उसके श्रेय के बहुत कुछ भागीदार आचार्यश्री जवाहरलाल जी म० सा० ही हैं।

राष्ट्रीय चेतना के वाहक :

उन्होंने न केवल सामाजिक चेतना को जागृत किया अपितु राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने वालों में भी वे अग्रणी थे। मुनि-मर्यादा में रहते हुए भी उन्होंने देश के स्वतंत्रता संग्राम में जो योगदान दिया, वह अभूतपूर्व है। आचार्यश्री के प्रवचन जनता में राष्ट्र-चेतना फूंकने वाले होते थे। वे अपने प्रवचनों में गांधीजी के सत्याग्रह का खुल कर समर्थन करते थे। 'स्वदेशी' आंदोलन के वे एक प्रबल समर्थक एवं प्रचारक थे। स्वयं खादी पहनते थे और लोगों को खादी पहिनने की प्रतिज्ञा दिलवाते थे। 'मिल के वस्त्र और जैन धर्म' पर दिये गये उनके प्रवचनों की एक पुस्तक भी स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित हुई थी। 'विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार' उनके प्रवचनों का एक मुख्य विषय होता था। वे कहते थे 'यूरोपियन जाति में अपने राष्ट्र के प्रति कैसी भक्ति है, वे हजारों मील दूर रहकर भी अपने देश की बनी वस्तु खरीदते हैं और भारत के लोग विदेश का बना कपड़ा पहनते हैं, यह भारत को अधिक पतन की ओर ले जाना नहीं तो और क्या है ? उन वस्त्रों को काम

संघ धर्म आदि की उन्होंने जो व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं, वे इस बात का सबल प्रमाण हैं कि आचार्यश्री की दृष्टि समाजसापेक्ष थी। उन्होंने भारतीय समाज और जैन समाज की दुःखती हुई रगों को पहचाना था और उस दिशा में समाज को एक युगबोध दिया था। उनके ही शब्दों में "संसार में बैठे हुए प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह समष्टि (समाज) को अपनी नजर में रखकर उसे हानि पहुंचे ऐसा बुरा काम न करे। जो मनुष्य समष्टि (समाज) को अपनी दृष्टि में रखकर कार्य नहीं करता, वह नीतिज्ञ नहीं कहा जा सकता।"

धर्म की समाज-सापेक्षता :

वे स्पष्ट रूप से यह मानते थे कि वह धर्म जो समष्टि (समाज) के कल्याण की उपेक्षा करके व्यष्टि (व्यक्ति) के कल्याण की बात करता है, एक बिना नींव के भवन की तरह है। उन लोगों की विचार धारा पर, जो कि धर्म को समाज-निरपेक्ष मानते हैं, चोट करते हुए वे कहते थे कि 'कई लोग कहते हैं कि ये (समाज और राष्ट्र की बातें) सांसारिक बातें हैं किन्तु यह नहीं सोचते कि जितनी धर्म की बाते हैं, वे सब संसार के ही विचार से की जाती हैं, जिससे संसार का कल्याण हो उसे ही धर्म की बात और जिससे संसार का पतन हो उसे पाप की बात कहते हैं। समाज और राष्ट्र आध्यात्मिक साधना की आधार भूमि हैं, उनकी अवहेलना करके अध्यात्म की दिशा में आगे बढ़ना सम्भव नहीं है। व्यक्ति को आध्यात्मिकता की दिशा में उन्मुख करने के लिये एक संस्कारी समाज एवं राष्ट्र का होना पहली अनिवार्यता है, क्योंकि व्यक्ति को जो कुछ संस्कार मिलते हैं, वे सब समाज से मिलते हैं।

साधक व्यक्ति समाज से पूर्णरूपेण निरपेक्ष नहीं हो सकता है। समाज का सुधार एवं कल्याण व्यक्ति का प्राथमिक कर्तव्य है। आचार्यश्री कहते थे कि जब केवलज्ञान (आध्यात्मिक साधन की पूर्णता) प्राप्त कर लेने के पश्चात् केवली भगवान भी जगत् के कल्याण के लिये उपदेश देते हैं तो साधारण संसारी मनुष्य का संसार में बैठे हुए यह कहना कि 'हमें (समाज या) राष्ट्र से क्या मतलब ?' कितनी भारी कृतघ्नता है। केवल सूत्र-चारित्र धर्म (आत्मिक धर्म) को मानना और राष्ट्र (या समाज) धर्म को न मानना वैसा ही है जैसा मकान की नींव खोदकर या वृक्ष की जड़ काटकर उसके सुरक्षित रहने की आशा करना। सूत्र-चारित्र धर्म मकान या वृक्ष के फल के समान है और राष्ट्र (या समाज) धर्म मकान की नींव या वृक्ष की जड़ के

समान है।" जो लोग ग्राम धर्म, नगर धर्म एवं राष्ट्र धर्म की अवहेलना करते हैं वे आध्यात्मिक साधना के लिये योग्य आधार भूमि ही प्रस्तुत नही कर पाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्यश्री सामाजिक चेतना को धार्मिकता के परिप्रेक्ष्य में और धर्म को सामाजिकता के परिप्रेक्ष्य में विकसित करना चाहते थे। यही कारण था कि उन्होंने निर्जीव सामाजिक रूढ़ियों एवं परम्पराओं पर चोट की एवं एक स्वस्थ समाज के निर्माण की दिशा में उपासक वर्ग को उद्‌बोधित किया।

बेमेल विवाह, सामाजिक कार्यों में अपव्यय और प्रदर्शन, पर्दा प्रथा, मृत्युभोज, शोकप्रदर्शन जैसी अनेक सामाजिक कुरीतियों की उन्होंने न केवल खुलकर आलोचना की अपितु उपासकवर्ग को उनमें भागीदार नहीं बनने की प्रतिज्ञाएँ भी दिलवाई। वे अपने प्रवचनों में अक्सर इन समस्याओं को उठाते थे, इनके दुष्परिणामों का मार्मिक चित्रण करते थे और श्रोताओं को इनमें भागीदार नहीं बनने के लिए प्रेरित करते थे। इस प्रकार वे समाज को नयी दिशा देने वाले एवं सामाजिक चेतना के उन्नायक एक युगद्रष्टा और युगस्रष्टा आचार्य थे। आज जैन समाज के रूढ़िग्रस्त मारवाड़ी वर्ग में जो कुछ सामाजिक एवं राष्ट्रीय चैतन्यता हमें परिलक्षित होती है, उसके श्रेय के बहुत कुछ भागीदार आचार्यश्री जवाहरलाल जी म० सा० ही हैं।

राष्ट्रीय चेतना के वाहक :

उन्होंने न केवल सामाजिक चेतना को जागृत किया अपितु राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने वालों में भी वे अग्रणी थे। मुनि-मर्यादा में रहते हुए भी उन्होंने देश के स्वतंत्रता संग्राम में जो योगदान दिया, वह अभूतपूर्व है। आचार्यश्री के प्रवचन जनता में राष्ट्र-चेतना फूंकने वाले होते थे। वे अपने प्रवचनों में गांधीजी के सत्याग्रह का खुल कर समर्थन करते थे। 'स्वदेशी' आंदोलन के वे एक प्रबल समर्थक एवं प्रचारक थे। स्वयं खादी पहनते थे और लोगों को खादी पहिनने की प्रतिज्ञा दिलवाते थे। 'मिल के वस्त्र और जैन धर्म' पर दिये गये उनके प्रवचनों की एक पुस्तक भी स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित हुई थी। 'विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार' उनके प्रवचनों का एक मुख्य विषय होता था। वे कहते थे 'यूरोपियन जाति में अपने राष्ट्र के प्रति कैसी भक्ति है, वे हजारों मील दूर रहकर भी अपने देश की बनी वस्तु खरीदते हैं और भारत के लोग विदेश का बना कपड़ा पहनते हैं, यह भारत को अधिक पतन की ओर ले जाना नहीं तो और क्या है ? उन वस्त्रों को काम

संघ धर्म आदि की उन्होंने जो व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं, वे इस बात का सबल प्रमाण हैं कि आचार्यश्री की दृष्टि समाजसापेक्ष थी। उन्होंने भारतीय समाज और जैन समाज की दुःखती हुई रगों को पहचाना था और उस दिशा में समाज को एक युगबोध दिया था। उनके ही शब्दों में "संसार में बैठे हुए प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह समष्टि (समाज) को अपनी नजर में रखकर उसे हानि पहुंचे ऐसा बुरा काम न करे। जो मनुष्य समष्टि (समाज) को अपनी दृष्टि में रखकर कार्य नहीं करता, वह नीतिज्ञ नहीं कहा जा सकता।"

धर्म की समाज–सापेक्षता :

वे स्पष्ट रूप से यह मानते थे कि वह धर्म जो समष्टि (समाज) के कल्याण की उपेक्षा करके व्यष्टि (व्यक्ति) के कल्याण की बात करता है, एक बिना नींव के भवन की तरह है। उन लोगों की विचार धारा पर, जो कि धर्म को समाज–निरपेक्ष मानते हैं, चोट करते हुए वे कहते थे कि 'कई लोग कहते हैं कि ये (समाज और राष्ट्र की बातें) सांसारिक बाते हैं किन्तु यह नहीं सोचते कि जितनी धर्म की बाते हैं, वे सब संसार के ही विचार से की जाती हैं, जिससे संसार का कल्याण हो उसे ही धर्म की बात और जिससे संसार का पतन हो उसे पाप की बात कहते हैं। समाज और राष्ट्र आध्यात्मिक साधना की आधार भूमि हैं, उनकी अवहेलना करके अध्यात्म की दिशा में आगे बढ़ना सम्भव नहीं है। व्यक्ति को आध्यात्मिकता की दिशा में उन्मुख करने के लिये एक संस्कारी समाज एवं राष्ट्र का होना पहली अनिवार्यता है, क्योंकि व्यक्ति को जो कुछ संस्कार मिलते हैं, वे सब समाज से मिलते हैं।

साधक व्यक्ति समाज से पूर्णरूपेण निरपेक्ष नहीं हो सकता है। समाज का सुधार एवं कल्याण व्यक्ति का प्राथमिक कर्तव्य है। आचार्यश्री कहते थे कि जब केवलज्ञान (आध्यात्मिक साधन की पूर्णता) प्राप्त कर लेने के पश्चात् केवली भगवान भी जगत् के कल्याण के लिये उपदेश देते हैं तो साधारण संसारी मनुष्य का संसार में बैठे हुए यह कहना कि 'हमें (समाज या) राष्ट्र से क्या मतलब ?' कितनी भारी कृतघ्नता है। केवल सूत्र–चारित्र धर्म (आत्मिक धर्म) को मानना और राष्ट्र (या समाज) धर्म को न मानना वैसा ही है जैसा मकान की नींव खोदकर या वृक्ष की जड़ काटकर उसके सुरक्षित रहने की आशा करना। सूत्र–चारित्र धर्म मकान या वृक्ष के फल के समान है और राष्ट्र (या समाज) धर्म मकान की नींव या वृक्ष की जड़ के

समान है।" जो लोग ग्राम धर्म, नगर धर्म एवं राष्ट्र धर्म की अवहेलना करते हैं वे आध्यात्मिक साधना के लिये योग्य आधार भूमि ही प्रस्तुत नही कर पाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्यश्री सामाजिक चेतना को धार्मिकता के परिप्रेक्ष्य में और धर्म को सामाजिकता के परिप्रेक्ष्य में विकसित करना चाहते थे। यही कारण था कि उन्होंने निर्जीव सामाजिक रूढ़ियों एवं परम्पराओं पर चोट की एवं एक स्वस्थ समाज के निर्माण की दिशा में उपासक वर्ग को उद्‌बोधित किया।

वेमेल विवाह, सामाजिक कार्यों में अपव्यय और प्रदर्शन, पर्दा प्रथा, मृत्युभोज, शोकप्रदर्शन जैसी अनेक सामाजिक कुरीतियों की उन्होंने न केवल खुलकर आलोचना की अपितु उपासकवर्ग को उनमें भागीदार नहीं बनने की प्रतिज्ञाएँ भी दिलवाईं। वे अपने प्रवचनों में अक्सर इन समस्याओं को उठाते थे, इनके दुष्परिणामों का मार्मिक चित्रण करते थे और श्रोताओं को इनमें भागीदार नहीं बनने के लिए प्रेरित करते थे। इस प्रकार वे समाज को नयी दिशा देने वाले एवं सामाजिक चेतना के उन्नायक एक युगद्रष्टा और युगस्रष्टा आचार्य थे। आज जैन समाज के रूढ़िग्रस्त मारवाड़ी वर्ग में जो कुछ सामाजिक एवं राष्ट्रीय चैतन्यता हमें परिलक्षित होती है, उसके श्रेय के बहुत कुछ भागीदार आचार्यश्री जवाहरलाल जी म० सा० ही हैं।

राष्ट्रीय चेतना के वाहक :

उन्होंने न केवल सामाजिक चेतना को जागृत किया अपितु राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने वालों में भी वे अग्रणी थे। मुनि-मर्यादा में रहते हुए भी उन्होंने देश के स्वतंत्रता संग्राम में जो योगदान दिया, वह अभूतपूर्व है। आचार्यश्री के प्रवचन जनता में राष्ट्र-चेतना फूंकने वाले होते थे। वे अपने प्रवचनों में गांधीजी के सत्याग्रह का खुल कर समर्थन करते थे। 'स्वदेशी' आंदोलन के वे एक प्रवल समर्थक एवं प्रचारक थे। स्वयं खादी पहनते थे और लोगों को खादी पहिनने की प्रतिज्ञा दिलवाते थे। 'मिल के वस्त्र और जैन धर्म' पर दिये गये उनके प्रवचनों की एक पुस्तक भी स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित हुई थी। 'विदेशी वस्तुओं का वहिष्कार' उनके प्रवचनों का एक मुख्य विषय होता था। वे कहते थे 'यूरोपियन जाति में अपने राष्ट्र के प्रति कैसी भक्ति है, वे हजारों मील दूर रहकर भी अपने देश की वनी वस्तु खरीदते हैं और भारत के लोग विदेश का वना कपड़ा पहनते हैं, यह भारत को अधिक पतन की ओर ले जाना नहीं तो और क्या है ? उन वस्त्रों को काम

में लेना क्या धर्मभ्रष्टता नहीं है ? जिस देश के मनुष्य अपने देश और देश की बनी हुई वस्तुओं की कदर नहीं करते, उस देश के मनुष्यों की कदर दूसरे देशों में भी नहीं रहती है ।' वे यह मानते थे 'आज यहां की शिक्षा-प्रणाली ही कुछ ऐसी दूषित है कि भारतीयों में भारतीय-भाव ही नहीं रह जाता है, जो विदेशी देश को अपने पैरों तले दबाये रखना चाहते हैं वे भला उस देश के लोगों को अच्छी शिक्षा क्यों देने लगे ? किन्तु जब शिक्षा में राष्ट्रीय भाव भरे रहते हैं, तभी राष्ट्र का सिर ऊँचा रहता है ।'

वे गरीबों के शोषण के भी विरोधी थे । वे स्पष्ट रूप से कहते थे कि गरीबों की रोजी मारकर धन बढ़ा तो उस धन से क्या लाभ हो सकता है ? यदि कोई मनुष्य हजारों घर के दीपक बुझाकर अपने घर में मशाल जलावे तो यह उचित नहीं । मैं पूछता हूँ कि थली वालों ने जो धन कमाया है, वह क्या भारत का नहीं है ? तो इसका क्या अर्थ हुआ ? यही न कि जो खून सारे शरीर में दौड़ता था वह एकत्रित होकर एक स्थान पर जम गया या एक पैर तो खम्भे के समान मोटा हो गया और दूसरा बेंत की तरह पतला । ···तो क्या यह सुन्दर कहा जा सकता है ? ···लाखों मनुष्यों की आय नष्ट करके केवल अपनी आमदनी बढ़ा लेने को कोई नीतियुक्त कार्य नहीं कह सकता, ···(ऐसा) धन, धन नहीं बल्कि गरीबों का स्वत्व हरण है ।"

धर्म सामाजिक हो, व्यक्ति धार्मिक हो :

संक्षेप में वे एक ऐसे क्रान्तिकारी आचार्य थे, जिन्होंने धर्म का सम्बन्ध उस सबसे जोड़ा था जिसमें हम जीवन जीते हैं । धर्म और व्यावहारिक जीवन की खाई को पाट कर उन्होंने समाज को नई दिशा दी । उनकी दृष्टि में धर्म का सही रंगमंच धर्मस्थान नहीं, अपितु जीवन का कर्मक्षेत्र है । आज उनकी जन्मशती पर केवल उनका नाम स्मरण पर्याप्त नहीं है अपितु धर्म को समाज और जीवन से जोड़कर एक नये समाज और नये मानव की सृष्टि करना है । आज की आवश्यकता है, धर्म सामाजिक हो और व्यक्ति धार्मिक हो ।[1]

१. इस लेख के सभी उद्धरण आचार्यश्री जवाहरलाल जी म० सा० की 'धर्म व्याख्या' नामक पुस्तक से लिये गये हैं ।

आत्मधर्मी आचार्य की राष्ट्रधर्मी भूमिका

● श्री इन्दरराज बैद

मानव जाति को आत्मोद्धार के पथ पर ले चलने वाले संतों की सुदीर्घ परम्परा में कुछ ऐसे महापुरुष भी हुए हैं जिन्होंने आत्मोद्धार के साथ-साथ राष्ट्रोद्धार का पथ भी प्रशस्त किया है और मातृभूमि के प्रति लोगों को उनके कर्त्तव्यों और दायित्वों का भान कराके उन्हें बलिदान की वीर भावना से प्रेरित भी किया है। ऐसे महान् व्यक्तित्व को धारण करने वाले विलक्षण साधु पुरुषों में दो नाम स्वतः ही उभर कर आते हैं और वे हैं स्वामी विवेकानंद और आचार्यश्री जवाहरलाल। सनातन धर्म और श्रमण धर्म के प्रचारक के रूप में तो इन दोनों संत पुरुषों ने अपनी कीर्ति अर्जित की ही, राष्ट्रीयता का भावोद्बोधन करके एक व्यापक राष्ट्रधर्म की आधारशिला भी रखी। सचमुच भारत की धर्मप्राण और राष्ट्रप्रेमी जनता के हृदय में इन दोनों साधु पुरुषों के व्यक्तित्व का तेज सदैव जगमगाता रहेगा।

जीवन : संघर्ष और उत्कर्ष :

आचार्यश्री जवाहरलाल जी का जन्म विक्रम संवत् १९३२ की कार्तिक शुक्ला चतुर्थी को मालव प्रदेश के थांदला नामक हरे-भरे रमणीय क्षेत्र में हुआ था। जन्मस्थली की यह समृद्धि और रमणीयता ही आगे चलकर उनके जीवन की आध्यात्मिक समृद्धि और सात्विक रमणीयता के रूप में प्रकट हुई थी। ओसवाल वंशोत्पन्न कवाड़ गोत्रीय श्री जवाहर की माता का नाम श्री नाथीबाई और पिता का नाम श्री जीवराज था। हैजाग्रस्त होकर मां ने अपने पुत्र का साथ जल्दी ही छोड़ दिया। जवाहर उस समय केवल दो वर्ष के बालक थे। मां का यह विछोह उनके जीवन की अत्यंत करुणापूर्ण दुर्घटना

थी, जिसने जवाहर के मानस का इस सीमा तक मंथन किया कि उसमें आगे चलकर समस्त मातृरूपिणी स्त्री–जाति के प्रति निश्छल भक्ति की लहरें उच्छ–लित होती रहीं। पांच वर्ष की अवस्था तक पहुंचते–पहुंचते उनके पिता भी चल बसे। मातृपितृहीन बालक को उसके मामा श्री मूलचन्द धोका ने आश्रय दिया। फिर अध्ययन का क्रम आरंभ हुआ, व्यापार का सिलसिला भी चला। और फिर तेरह वर्ष की आयु में मामा का भी स्वर्गवास ! अपने आत्मीय जनों की मृत्यु का दौर कुछ इस तरह चला कि जवाहर के मन में जीवन और मृत्यु का रहस्य बिजली की तरह कौंधना शुरु हो गया। जीवन की क्षण–भंगुरता के प्रत्यक्षदर्शी जवाहर के मन में एक शुभ संकल्प ने जन्म लिया और अंततः उन्होंने विक्रम संवत् १९४८ की मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया को १६ वर्ष की अल्प आयु में पूज्य श्री हुक्मीचंद जी महाराज की परम्परा में दीक्षित होकर एक नये तेजस्वी जीवन का शुभारंभ किया। लगभग अट्ठाईस वर्षों के मुनि जीवन के बाद जवाहर आचार्य घोषित किये गये। उसके बाद के दो दशक उनके साधु जीवन की प्रखरता के दशक थे। सन् १९४३ की १० जुलाई को उन्होंने संथारापूर्वक अपनी भौतिक देह त्याग दी। इस प्रकार वे लगभग ५० बरसों तक भारत की अध्यात्मनिष्ठ जनता की चेतना को जगाते रहे।

मातृभूमि–स्तवन :

आचार्य श्री जवाहरलाल जी विरले संत थे, जिन्होंने घर–बार, धन–दौलत, रिश्ते–नाते सब कुछ छोड़कर भी जननी जन्मभूमि की महिमामयी मिट्टी से कभी नाता नहीं तोड़ा। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी, की उदात्त भावना को अपने मन–वचन कर्म के द्वारा चरितार्थ करते हुए उन्होंने कहा—"हम लोगों को जन्म देने वाली, पालपोस कर बड़ा करने वाली माता तो माता है ही, मगर अपने पेट में से पानी निकालकर पिलाने–वाली, अपने उदर में से अन्न निकाल कर देने वाली स्वयं वस्त्रहीन रहकर हमें वस्त्र देने वाली और माता की भी माता अपनी मातृभूमि है।' मातृभूमि की महिमा का गान करते हुए वे अपने शिष्यों को कहा करते थे कि मातृभूमि के प्रति कर्तव्य निर्धारित करना गृहस्थ के लिए ही नहीं, साधु के लिए भी आवश्यक है। मातृभूमि तो गृहस्थों और सन्यासियों दोनों के लिए ही समान रूप से वंदनीय है। उन्होंने उस मान्यता का घोर विरोध किया जो साधुत्व को देश की सीमा से परे खींच ले जाती है। यह कथित उदारता या मानवेतर आदर्श उन्हें कभी स्वीकार्य नहीं हुआ। राष्ट्रभक्ति को दुनियादारी का अंग मानने वालों को

लताड़ते हुए उन्होंने कहा कि ऐसे लोग आत्मधर्म की ओट में राष्ट्र के उपकार से विमुख रहते हैं। राष्ट्रधर्म की उपेक्षा करके राष्ट्र का कोई भी धर्म, चाहे वह आत्मधर्म ही क्यों न हो, अपनी पूर्णता का दावा नहीं कर सकता।

संस्कृति-प्रेम और स्वातंत्र्य-निष्ठा :

भरत की भूमि से उन्हें जितना प्रेम था, उतना ही आदर उनके मन में यहां की संस्कृति के प्रति भी था। वे भारत को विश्व संस्कृति का प्रतिष्ठापक मानने थे, उसे आध्यात्मिक गुरु मानते थे। ऐसे महान् देश की पराधीन जनता में उन्होंने आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दरिद्रता के उभरते हुए लक्षण देखे। उन्होंने देखा कि 'जो भारत अखिल विश्व का गुरु था और सबको सभ्यता सिखाने वाला था, आज वह इतना दीन-हीन हो गया है कि आध्यात्मिक विद्या की पुस्तकें जर्मनी से मंगाता है। युद्ध सामग्री के लिए अमेरिका के प्रति याचक बनता है, नीति-धर्म की पुस्तकों के लिए इंगलैंड के सामने हाथ पसारता है। और तो और सूई जैसी तुच्छ चीज के लिए भी वह विदेशियों का मुंह ताकता है। इसका क्या कारण है ?' उन्होंने यह अनुभव किया कि जब तक परतंत्रता की शृंखलाओं को तोड़ने के लिए देश तैयार नहीं होगा, तब तक उसके जीवन में उभरने वाली हीन ग्रंथियों का निग्रंथन भी संभव नहीं हो पाएगा। अतः अपनी सीमा में अपने समस्त ओज और तेज के साथ उन्होंने अपने अनुयायियों को उनके परावलंबन के लिए धिक्कारा और फटकारा। पारतंत्र्य की कलुषित छाया से मुक्त होने के लिए उन्होंने समाज का आह्वान किया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए उत्सर्ग की आवश्यकता होती है। स्वतंत्रता का पथ फूलों से नहीं, कांटों से आकीर्ण है।' इस प्रकार त्याग, स्वावलंबन, पुरुषार्थ और बलिदान का पाठ पढ़ाकर उन्होंने जन-मानस में स्वातंत्र्य भाव की रमणीय लहर पैदा करदी।

स्वदेशी-प्रचार:

आचार्य जवाहर ने अपने अनुयायियों में राष्ट्रीयता के सभी संघटक तत्त्वों के प्रति निष्ठा का भाव जगाने का अथक प्रयत्न किया। स्वाधीनता आंदोलन के सभी जीवंत प्रतीकों के प्रति लोगों में श्रद्धा का भाव पैदा किया। चर्खे को वे भारतवर्ष का सुदर्शन चक्र मानते थे। उनकी दृष्टि में भारत के दैन्य रूपी दैत्य को ध्वस्त करने का यह अमोघ शस्त्र था। खादी-प्रचार उनके [illegible] जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग ही बन गया।

वस्तुतः स्वदेशी के प्रचार में उनकी भूमिका सदैव स्मरणीय रहेगी।

उन्होंने कहा कि स्वदेशी को अपनाना अपने देश का ही सम्मान करना है, उसका गौरव बढ़ाना है। विदेशी वस्तुओं के मोहांध लोगों को फटकारते हुए उन्होंने कहा कि ऐसा करके वे अपनी भारत जननी का ही अपमान करते हैं। उनके ये उद्गार—'स्वदेश का उद्धार उसी दिन से आरंभ होगा, जिस दिन देशवासी स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार करना सीखेंगे'—वर्तमान संदर्भ में कितने खरे प्रमाणित हो रहे हैं, यह कौन नहीं जानता ? स्वदेशी को तिरस्कृत करके हमने 'तस्करी' को बढ़ावा दिया। आज जब हम तस्करी का उन्मूलन करके स्वदेशी की प्राण-प्रतिष्ठा कर रहे हैं, तब उनकी यह भविष्यवाणी अनायास ही याद हो आती है, जब उन्होंने कहा था—'विदेशी वस्तुओं का विक्रय बंद हो जाय और स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार का प्रचार हो जाय तो राष्ट्र के लाखों-करोड़ों गरीबों को, जिन्हें पहिनने को वस्त्र और खाने को भरपेट अन्न नहीं मिलता, अन्न-वस्त्र मिल सकता है। इस प्रकार स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार से करोड़ों भारतीयों को सुख-शांति पहुँचाई जा सकती है।'

राष्ट्र भाषा का समर्थनः

हिन्दी को उन्होंने भारतीय संस्कृति की आत्मा के रूप में स्वीकार किया। मातृभाषा को उन्होंने अत्यधिक महत्त्व दिया। जिस प्रकार मातृभूमि का उन्होंने स्तवन किया, उसी प्रकार मातृभाषा का माहात्म्य-वर्णन भी किया। उन्होंने यह अनुभव किया कि हिन्दी के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है अंग्रेजी। वे अंग्रेजी शिक्षा को राष्ट्र के लिए घातक मानते थे क्योंकि वे जानते थे कि इससे मानसिक पराधीनता के बीज पड़ेंगे, जो राष्ट्रीयता की समस्त फसल को जहरीली बना डालेंगे। इसी परिप्रेक्ष्य में उन्होंने हिन्दी का समर्थन और अंग्रेजी का विरोध किया। देशी भाषाओं को दासी बनाने वाली, भारतीय संस्कृति को विकृत करने वाली और आर्य संस्कारों को धूमिल करने वाली अंग्रेजी के विरोध की सिंह-गर्जना करते हुए उस साधु पुरुष ने कहा कि ऐसी भाषा से 'मैं अपने विरोध की घोषणा करता हूं और अपने श्रोताओं को विरोधी बनने का परामर्श देता हूं।'

आर्थिक विषमता पर प्रहारः

आचार्य जवाहरलाल जी के राष्ट्रधर्म का एक महत्त्वपूर्ण अंग था, उनका समाज सम्बन्धी दृष्टिकोण, उनका सामाजिक दायित्व निर्वाह। इतिहास में वे क्रांतिकारी समाज-सुधारक के रूप में भी अमर रहेंगे। पुण्यों के बल पर धनी हो जाने की धारणा का उन्होंने समर्थन नहीं किया। समाज की

ग्रार्थिक विषमता उन्हें असह्य थी । देश की स्वतंत्रता के मार्ग में यह वैषम्य और तद्जनित बुराइयां आड़े आती थीं । अतः उन्होंने अपने अनुयायी धनिक वर्ग को न्याय, धर्म और समानता के जीवन में उतारने का उद्बोधन दिया । समाजवादी व्यवस्था के सूत्र बिखेरते हुए उन्होंने कहा कि 'सम्यग् दृष्टि का लक्ष्य यही है कि वह अपनी संपत्ति परोपकार के लिए समझे और आप उससे अलहदा रहता हुआ अपने को ट्रस्टी अनुभव करे ।' यदि समाज अपनी यह ट्रस्टी की भूमिका नहीं निभाता है, तो उसे सचेत करते हुए उन्होंने कहा कि समाज को भविष्य में ऐसी क्रांति का सामना करना पड़ सकता है, जो आर्थिक वैषम्य के दुर्ग की ईंट से ईंट बजाकर रख देगी । क्या आज हम इस चेतावनी को चरीतार्थ होते नहीं देख रहे हैं ? ऐसी कल्पना और घोषणा आचार्य जवाहर जैसे क्रांतदर्शी सात्त्विक महापुरुष ही कर सकते थे ।

नारी–जागरण का स्वर :

नारी–समाज के प्रति जवाहरलाल जी के मन में उदात्त विचार थे । वे नारी को पुरुष का आधा ही नहीं, अधिक महत्त्वपूर्ण अंग मानते थे । नारी जाति के प्रति उनके मन में अपार सादर का भाव था, जो उनके उपदेशों में सदैव मुखरित हुआ करता था । नारी–समाज पर होने वाले अत्याचारों का उन्होंने विरोध किया । पैसों के लालच में पड़कर अपनी फूल सी कोमल कन्याओं को बूढ़ों के हाथ सौंपने वाले क्रूर माता–पिताओं को उन्होंने आड़े हाथों लिया और अनमेल विवाह के कुकर्म को हमेशा के लिए मिटा डालने की उन्हें हितकारी सीख दी । समाज में छोटी अवस्था में होने वाले गठ–बंधनों का भी उन्होंने विरोध किया क्योंकि ऐसे विवाह शक्तिहीनता को जन्म देते थे । उन्होंने समाज के सभी लोगों से यह अपील की कि 'इस घातक प्रथा को त्याग दें । इसका मूलोच्छेदन करके संतान का और संतान के द्वारा समाज एवं राष्ट्र का मंगल–साधन करे ।' उन्होंने विधवाओं पर होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध भी आवाज उठायी । स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए भी उन्होंने समाज का उद्बोधन किया । वे स्त्रियों के लिए उस शिक्षा के पक्षधर थे जो उनमें आत्मविश्वास और आत्म–गौरव जगा सके ।

गोवध और मद्य–पान का विरोध:

गौ को वे राष्ट्रीय निधि मानते थे । गौवध उनकी दृष्टि में भारतीयों के लिए कलंक था । उन्होंने एक मानवतावादी जैन अहिंसक साधु के नाते ही नहीं, एक राष्ट्रहितचिंतक के रूप में भी यह कामना की कि गोधन के

संरक्षक और संवर्धन के साथ ही भारत की समृद्धि भी जुड़ी हुई है। गौ-हत्या की तरह उन्होंने भारतीय जनता में व्याप्त मद्यपान पर भी चिंता व दुःख व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि 'जगत का कोई भी धर्म संप्रदाय या मत, जो किसी ऊंचे उद्देश्य से कायम हुआ है, मदिरापान का विधान या समर्थन नहीं कर सकता।'

श्रद्धास्पद व्यक्तित्व :

आचार्य जवाहरलाल जी विशुद्ध राष्ट्रवादी जैन संत थे, जिन्होंने आत्मधर्म के साथ राष्ट्रधर्म को भी अंगीकार किया था। उन्होंने दोनों को एक–दूसरे का पूरक माना। इतना ही नहीं, राष्ट्रधर्म को वृहत् आत्मधर्म की आधार–भूमि के रूप में स्वीकार किया। वे कहते थे कि जिस प्रकार पात्र के अभाव में घी नहीं टिक सकता, उसी प्रकार राष्ट्रधर्म के विना सूत्र–चारित्र धर्म भी नहीं टिक सकता। वस्तुतः वे ऐसे राष्ट्रनिष्ठ धर्मप्राण संत पुरुष थे जिन्होंने राष्ट्र को जगत का प्रतीक माना और आत्मा के उद्धार के साथ राष्ट्र अर्थात् जगत् के उद्धार का भी पथ प्रशस्त किया। आज के राष्ट्रीय भावोन्माद के विशुद्ध वातावरण में उनके तपस्वी व्यक्तित्व ने जो सौरभ विखेरा है, वह चिरकाल तक इस उद्यान को सुवासित बनाये रखेगा। इसी पवित्र प्रतीति–पूर्ण भावना के साथ लेखनी अपनी श्रद्धा अर्पित करती हुई कृतार्थ हुआ चाहती है।
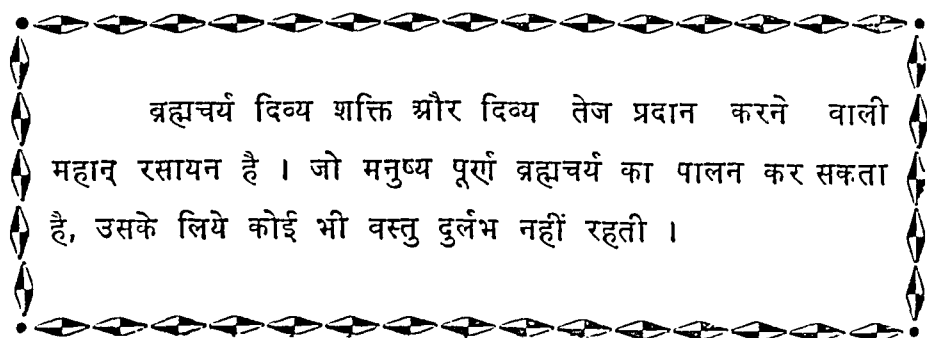
राष्ट्रीय जागृति में आचार्यश्री का योगदान

● श्री रत्नकुमार जैन

श्रीमज्जवाहराचार्य के नाम से जैन समाज अपरिचित नहीं है। यद्यपि वे एक स्था. जैन सम्प्रदाय के आचार्य थे, तब भी उनका समस्त जैन समाज में एक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व था। वे जिस समय कार्यरत थे, उस समय हमारा देश परतंत्र था, अशिक्षा और नाना कुरीतियों का शिकार बना हुआ था। एक तरफ राष्ट्रपिता गांधी जी के नेतृत्व में स्वतन्त्रता का आन्दोलन चल रह था—तो दूसरी तरफ आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. राष्ट्रीय जागृति के लिये धार्मिक क्षेत्र में क्रांतिकारी भूमिका अदा कर रहे थे।

उन्होंने देखा कि भारत के लोगों को आज दोनों समय का खाना भी नसीब नहीं होता है, बेकारी के वजह से वे अपने परिवार का भरण-पोषण भी नहीं कर सकते हैं, तो उन्होंने गांधीजी के खादी आन्दोलन में अपना भी सहयोग चालू किया। उन्होंने स्वयं खादी पहनना आरम्भ किया और लोगों को भी खादी धारण करने का उपदेश दिया। वे अपने सार्वजनिक प्रवचनों में खादी के वस्त्रों का प्रतिपादन इतनी सचोट और मर्मस्पर्शी भाषा में करते थे कि उनसे प्रभावित हजारों लोगों ने चरबी के वस्त्रों का त्याग कर खादी पहनना शुरु कर दिया था। पुरुषों ने ही नहीं, कई महिलाओं ने भी खादी पहिनने का व्रत ग्रहण किया था। उनके कई शिष्य [1] आजीवन खादी के ही वस्त्रों का उपयोग करते रहे। उस समय यह बहुत बड़ी बात थी। एक जैन सन्त होकर, जिसकी कि अपनी मर्यादा है, उसमें रहते हुए राष्ट्रीय प्रश्नों

---

१. पं० सिरेमल जी म. आदि।

पर खुले आम चर्चा करना और लोगों को उन पर चलने का निर्देश देना, सूझ-बूझ और हिम्मत का काम था, जो कि आचार्यश्री ने किया। गांधी जी भी उनके विचारों से बड़े प्रभावित हुए थे। चन्द मिनटों की मुलाकात के दरमियान ही उन्होंने यह कहा था कि देश में दो जवाहर हैं—'एक मेरे पास है और एक जैन समाज के पास है।'

आचार्यश्री सचमुच युगद्रष्टा सन्त महापुरुष थे। उन्होंने सामयिक कुरीतियों जैसे कि बेकारी निवारण, अशिक्षा, नारी दुर्दशा, दहेज और मृत्यु भोज के—विरुद्ध भी अपने स्पष्ट विचार समाज के सामने रखे थे। उन्होंने अपने साधु-सन्तों को पढ़ाने का भी सिलसिला चालू किया था। वे यह भली-भांति समझते थे कि अगर सन्त समाज पढ़ा-लिखा और विद्वान् न होगा तो समाज को उनसे लाभ नहीं मिल सकेगा। आज भी उनके समुदाय में सन्तों के पठन-पाठन का व्यवस्थित क्रम चालू है। पठन-पाठन के साथ २ लेखन प्रवृत्ति में भी सन्तों को आगे आना चाहिये।

स्त्री शिक्षा के लिये भी आचार्यश्री अपने प्रवचनों में बहुत जोर दिया करते थे। इस क्षेत्र में आज जो कुछ भी प्रगति दृष्टिगोचर हो रही है, यह उन्हीं की देन समझनी चाहिये।

भी सप्ताह में एक दिन मौन रखा करते थे । इस तरह यदि हम जीवनचर्या और कार्यकर्ताओं की दृष्टि से देखेंगे तो गांधीजी और स्व० आचार्यश्री के जीवन में काफी समानता दृष्टिगोचर होगी ।

गोपालन और कृषि के बारे में भी लोगों के दिलों में जो भ्रान्त धारणाएं घर कर गई थीं, उनका भी उन्होंने अल्पारंभ और महारंभ को समझाते हुए, निराकरण किया और खेती करने में महारंभ नहीं होता, समझाया। श्रावक का धर्म है कि वह आत्मनिर्भर बने और देश को आत्मनिर्भर बनावे। इस दृष्टि से खेती और गोपालन उसके आवश्यक कर्त्तव्य हो जाते हैं ।

साधु और श्रावक की मर्यादा में बड़ा अन्तर है । साधु अपनी मर्यादा में रहते हुए वाहन से देश-विदेश की यात्रा नहीं कर सकता है । धर्म-प्रचार के नाम पर साधुता में शिथिलाचार का पोषण करना आचार्यश्री को स्वीकार नहीं था। इसलिये उन्होंने साधु और श्रावक के बीच की एक 'वीर संघ योजना' तैयार की थी । समय की अपरिपक्वता से भले ही इस योजना को उस समय सफलता न मिली हो, परन्तु इसमें दो राय नहीं हो सकती है कि यह योजना अगर अमल में आ जाती तो संघ में शिथिलाचार को फैलने का मौका नहीं मिल पाता । आज भी इस पर ठोस विचार करने की आवश्यकता है ।[1]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि स्व० आचार्यश्री का जीवन के हर क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शन और योगदान रहा है । उनका प्रकाशित साहित्य तो आज भी लोगों का प्रेरणास्रोत बना हुआ है । उनकी जन्म-शताब्दी के के अवसर पर समाज उनके उपदेशों का अनुसरण करते हुए प्रगति के पथ पर अग्रसर होता रहे, यही शुभ भावना है ।

१— श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ ने आचार्यश्री के जन्म-शताब्दी वर्ष में इस योजना को मूर्त्त रूप दे दिया है ।

> वैज्ञानिक प्रगति मनुष्य के मस्तिष्क की महिमा को भले ही प्रकट करती हो, पर उससे मनुष्यता जरा भी विकसित नहीं हुई है । जो विज्ञान मनुष्य की मनुष्यता नहीं बढ़ाता, बल्कि उसे घटाता है और पशुता की वृद्धि करता है, वह मानव जाति के लिये हितकर नहीं हो सकता ।

पर खुले आम चर्चा करना और लोगों को उन पर चलने का निर्देश देना, सूझ-बूझ और हिम्मत का काम था, जो कि आचार्यश्री ने किया। गांधी जी भी उनके विचारों से बड़े प्रभावित हुए थे। चन्द मिनटों की मुलाकात के दरमियान ही उन्होंने यह कहा था कि देश में दो जवाहर हैं—'एक मेरे पास है और एक जैन समाज के पास है।'

आचार्यश्री सचमुच युगद्रष्टा सन्त महापुरुष थे। उन्होंने सामयिक कुरीतियों जैसे कि बेकारी निवारण, अशिक्षा, नारी दुर्दशा, दहेज और मृत्यु भोज के—विरुद्ध भी अपने स्पष्ट विचार समाज के सामने रखे थे। उन्होंने अपने साधु-सन्तों को पढ़ाने का भी सिलसिला चालू किया था। वे यह भली-भांति समझते थे कि अगर सन्त समाज पढ़ा-लिखा और विद्वान् न होगा तो समाज को उनसे लाभ नहीं मिल सकेगा। आज भी उनके समुदाय में सन्तों के पठन-पाठन का व्यवस्थित क्रम चालू है। पठन-पाठन के साथ २ लेखन प्रवृत्ति में भी सन्तों को आगे आना चाहिये।

स्त्री शिक्षा के लिये भी आचार्यश्री अपने प्रवचनों में बहुत जोर दिया करते थे। इस क्षेत्र में आज जो कुछ भी प्रगति दृष्टिगोचर हो रही है, यह उन्हीं की देन समझनी चाहिये।

दहेज और मृत्यु-भोज सम्बन्धी बुराइयों के प्रति तो वे आजीवन सजग प्रहरी के रूप में समाज को सावधान करते रहे। उस समय मेवाड़ या मालवा में ऐसा रिवाज था कि किसी भी परिवार में कोई बड़ा मर जाता था तो उसका महीनों तक शोक रखा जाता था और रोना-धोना किया जाता था। आचार्यश्री ने इस कुप्रथा के बारे में लोगों को बहुत समझाया, परिणाम स्वरूप आज कहीं भी एक महीने से अधिक शोक नहीं रखा जाता है। दहेज प्रथा की बीमारी तो आज भी विषम बनती जा रही है। यह एक राष्ट्रीय समस्या बन गई है। इसके उन्मूलन में हमारे सन्त चाहें तो महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। जिस समाज में वे रहते हैं, उस समाज का सही मार्ग-दर्शन करना उनका धर्म है।

आचार्यश्री का जीवन बड़ा आदर्श जीवन था। उनके प्रवचन का भी अपना ढंग था। प्रार्थना में उनका अटूट विश्वास था। गांधीजी भी प्रतिदिन प्रार्थना करते थे। आचार्यश्री भी प्रातः प्रवचन से पूर्व प्रार्थना किया करते थे। जिन्होंने उन्हें देखा है, वे यह जानते हैं कि प्रार्थना में वे कैसे तल्लीन हो जाते थे? सप्ताह में वे एक दिन मौन रखा करते थे। गांधीजी

भी सप्ताह में एक दिन मौन रखा करते थे। इस तरह यदि हम जीवनचर्या और कार्यकर्ताओं की दृष्टि से देखेंगे तो गांधीजी और स्व० आचार्यश्री के जीवन में काफी समानता दृष्टिगोचर होगी।

गोपालन और कृषि के बारे में भी लोगों के दिलों में जो भ्रान्त धारणाएं घर कर गई थीं, उनका भी उन्होंने अल्पारंभ और महारंभ को समझाते हुए, निराकरण किया और खेती करने में महारंभ नहीं होता, समझाया। श्रावक का धर्म है कि वह आत्मनिर्भर बने और देश को आत्मनिर्भर बनावे। इस दृष्टि से खेती और गोपालन उसके आवश्यक कर्त्तव्य हो जाते हैं।

साधु और श्रावक की मर्यादा में बड़ा अन्तर है। साधु अपनी मर्यादा में रहते हुए वाहन से देश-विदेश की यात्रा नहीं कर सकता है। धर्म-प्रचार के नाम पर साधुता में शिथिलाचार का पोषण करना आचार्यश्री को स्वीकार नहीं था। इसलिये उन्होंने साधु और श्रावक के बीच की एक 'वीर संघ योजना' तैयार की थी। समय की अपरिपक्वता से भले ही इस योजना को उस समय सफलता न मिली हो, परन्तु इसमें दो राय नहीं हो सकती है कि यह योजना अगर अमल में आ जाती तो संघ में शिथिलाचार को फैलने का मौका नहीं मिल पाता। आज भी इस पर ठोस विचार करने की आवश्यकता है।[1]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि स्व० आचार्यश्री का जीवन के हर क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शन और योगदान रहा है। उनका प्रकाशित साहित्य तो आज भी लोगों का प्रेरणास्रोत बना हुआ है। उनकी जन्म-शताब्दी के के अवसर पर समाज उनके उपदेशों का अनुसरण करते हुए प्रगति के पथ पर अग्रसर होता रहे, यही शुभ भावना है।

१— श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ ने आचार्यश्री के जन्म-शताब्दी वर्ष में इस योजना को मूर्त्त रूप दे दिया है।

> वैज्ञानिक प्रगति मनुष्य के मस्तिष्क की महिमा को भले ही प्रकट करती हो, पर उससे मनुष्यता जरा भी विकसित नहीं हुई है। जो विज्ञान मनुष्य की मनुष्यता नहीं बढ़ाता, बल्कि उसे घटाता है और पशुता की वृद्धि करता है, वह मानव जाति के लिये हितकर नहीं हो सकता।

सामाजिक जागरण में आचार्यश्री की भूमिका

● श्री महेशचन्द्र जैन

सर्वोदयी दृष्टि :

महा महनीय पूज्य श्री जवाहराचार्य उन महापुरुषों में एक महान् विभूति थे; जिन्होंने अपने जीवन की अमर ज्योति जगा कर जैन संस्कृति के महान् प्रकाश से इस जगतीतल को प्रकाशित किया। आप में विशाल हृदयता, सूक्ष्म निरीक्षणता, दृढ़ निश्चयता और सर्वोदय की भावना मूर्तिमंत थी। जीवन के आन्तरिक रहस्य को खोल कर रखने में वे अद्वितीय थे। यद्यपि वे एक सम्प्रदाय के आचार्य थे तथापि उनका हृदय समुद्र की तरह विशाल और गम्भीर था। उनकी दृष्टि में मानवता सर्वोपरि थी। इसीलिये चाहे ब्राह्मण हो, चाहे क्षत्रिय, चाहे वैश्य हो, चाहे शूद्र सभी की उन्नति के लिये वे प्रयत्न-शील थे, यानि उनमें सर्वोदय की भावना विद्यमान थी।

धर्म सब का : सब धर्म के :

आपका यह दृढ़ विश्वास था कि सांसारिक प्राणी अनेक संघर्षों में अपना जीवन यापन कर रहा है। संघर्ष रत प्राणी धर्म नहीं कर सकता। जो व्यक्ति सांसारिक द्वन्द्वों-संघर्षों पर विजय प्राप्त कर लेता है, वही सच्चा धर्माराधक बन सकता है। धर्म कोई उपाश्रय की चीज नहीं है। जब तक उपाश्रय में रहे, मुंहपत्ती बांध कर जीवों के रक्षक बने रहे। उपाश्रय से छूटते ही दूकान पर आने में या व्यापार-धन्धों में जीवरक्षा का ध्यान नहीं रहता; वहां सभी प्रकार के झूठ, कपट, छल इत्यादि का सहारा लेता है तो फिर वह रक्षक कहां रहा ? अतः आचार्यश्री का यह उपदेश था कि जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति में धर्म का व्यवहार होना आवश्यक है। जीवन के हरेक क्षेत्र में और

हर एक क्षण में ईश्वरीय उपासना यानी धर्म–प्रवृत्ति होना आवश्यक है। जो जीवन–व्यवहार में, व्यापार–धन्धों में धर्म को भूल जाता है, अधर्म का आचरण करता है तो वह वास्तविक आराधक नहीं कहा जा सकता। धर्म किसी जाति विशेष के लिये नहीं है। उसे जो आचरण करेगा वह उसी का उद्धार करेगा चाहे वह किसी भी वर्ण या मत का क्यों न हो? अतः धर्ममय जीवन व्यतीत करना, यह मानव का प्रथम धर्म है।

मानवता के पुजारी :

आप मानवता के पुजारी थे। दया, प्रेम, सहानुभूति, परस्पर सहायता देना, चोरी न करना, अधिक संचय न करना, अपने से किसी को हीन न समझना, दीन, अनाथ व गरीबों की मदद करना, दुखियों को सहायता पहुंचाना, शत्रु की भी आपद्काल में देख कर सेवा करना, मरते हुए जीव को बचाना, आग में जलते हुए का रक्षण करना, पास–पड़ोसियों की वैयावृत्य करना, उनके सुख दुःख में भागीदार बनना, गरीब छात्रों को छात्र–वृत्ति देना इत्यादि, ये सब मानवता के गुण हैं। इन्हीं गुणों से प्रेरित होकर आचार्यश्री करुणार्द्र होकर उपदेश दिया करते थे।

खादी प्रयोग पर बल :

आचार्यश्री की वाणी में युगदर्शन की छाप थी। आप एक महान् समाज–सुधारक थे। आपके हृदय में सामाजिक बुराइयों को देख कर ज्वाला प्रज्वलित हो उठती थी। पर वह ज्वाला बाह्य ज्वाला की तरह समक्ष आने वाले प्रत्येक पदार्थ को भस्मीभूत न करती थी। वह तो एक ऐसी ज्वाला थी जो बुराइयों को भस्म कर देती थी। आपने समाज में फैले हुए अनेक मिथ्या विचारों को नष्ट करने का प्रयत्न किया। फिर भी आप शास्त्रीय मर्यादा से किञ्चित् मात्र भी इधर उधर न हुए। उदाहरण—रेशमी वस्त्रों को पहनना पवित्र समझा जाता था। रेशमी वस्त्र पहन कर मन्दिरों में भी जा सकते थे, चाहे वे धुले हुए न हों। किन्तु आचार्यश्री ने स्पष्ट रूप से इसका खंडन किया और खादी पहनने पर जोर दिया। आचार्यश्री ने बताया कि रेशमी वस्त्र पहनने से असंख्यात कीड़ों का नाश होता है। जो जैन कीड़ों को मारने में पाप समझता है, वह असंख्यात कीड़ों के घात से उत्पन्न वस्त्र को कैसे पहन सकता है? वह अहिंसक कैसे कहा जा सकता है? मिल का वस्त्र भी अहिं-सक उपयोग में नहीं ला सकता क्योंकि उसमें भी पशुओं की चर्बी का उपयोग किया जाता है। हाथ–कते व हाथ–बने वस्त्रों का उपयोग करना

आवश्यक है; इससे अनेक लोगों का गुजारा भी होता है। जिस समाजवाद और अपरिग्रहवाद को हम फैलाना चाहते हैं, उसका भी प्रचार होता है। खादी पहनने से शारीरिक दृष्टि से भी लाभ होता है क्योंकि वह गर्मी में ठंडी और ठंडी ऋतु में गर्म रहती है। उसमें पसीना सुखाने की अपूर्व शक्ति होती है। इस तरह आचार्य श्री ने खादी को अपनाने की बात कही।

नैतिकता का प्रसार:

आचार्य श्री ने गृहस्थ जीवन को अत्यन्त विकृत देखा तो उनकी आत्मा तिलमिला उठी। वे कहा करते थे कि अपने जीवन को नीतिमय बनाना जरूरी है। 'धर्म और धर्मनायक' पुस्तक में दस धर्मों और दस नायकों के कर्त्तव्यों पर ऐसा सुन्दर विवेचन दिया है कि जो देखते ही बनता हैं। अनैतिकता से ग्राम, नगर, राष्ट्र आदि समुन्नत नहीं हो सकते। मानव केवल धन कमाने में लगा है, वह नैतिक या अनैतिक व्यवहार की ओर ध्यान नहीं देता, किन्तु इससे राज्य में कितनी अराजकता फैलती है, कितनी अशान्ति व अव्यवस्था होती है, कहा नहीं जा सकता। अपने सुख के लिए दूसरों के सुख की ओर ध्यान न देना यही तो अनैतिकता है। अतः मानव मात्र का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह शान्ति बनाये रखने के लिए, परस्पर सद्व्यवहार करे। आचार्य श्री अपने उपदेशों में कहा करते थे कि 'तुम जैसा व्यवहार अपने साथ चाहते हो, वैसा ही व्यवहार दूसरों के प्रति करो'।

साधु समाज में ज्ञान का प्रसार :

आचार्य श्री अपना उपदेश केवल वक्तृत्व शक्ति प्रदर्शन के लिए ही नहीं दिया करते थे। उनका हृदय करुणा से आप्लावित था। अवसर आने पर वे सचोट भाषा का भी प्रयोग करते थे। उन्होंने अपने उपदेशों से सामाजिक बुराइयों को दूर कर जीवन को ऊंचा उठाने का प्रयत्न किया। श्रोताओं के जीवन को उन्नत करना उनके जीवन का लक्ष्य था। वे बड़े क्रान्तिकारी विचारों के थे। साधु समाज में संस्कृत भाषा का प्रचार बहुत कम था। प्राकृत का भी उच्च ज्ञान न था और न अन्य भाषाओं का ही उच्च शिक्षण था। यों कहना चाहिये कि साधुओं का जीवन अन्य भाषाओं के ज्ञान से रहित था। स्थानक वासी समाज में पंडितों द्वारा साधु-साध्वियों को शिक्षित करने का कार्य सर्व प्रथम आपने ही चालू किया था। उस समय इसका घोर विरोध हुआ किन्तु आपने इसकी परवाह नहीं की। आपका कहना था कि यदि साधु साध्वी अज्ञानी रहेंगे तो वे स्व समय व पर समय को कैसे समझ सकते हैं?

और जब स्व समय और पर समझ का ज्ञान न होगा तो जिनवाणी पर दृढ़ श्रद्धा कैसे हो सकती है ? अतः सामाजिक विरोध को सहन करके भी आपने साधु-साध्वियों को पंडितों द्वारा पढ़ाने का कार्य आरंभ किया ।

धर्म में विवेक और भावना का महत्त्व :

श्रावक के बारह व्रतों पर प्रकाश डालते हुए आपने अहिंसा का सुन्दर विवेचन किया । साथ ही अल्प पाप और महा पाप की भी व्याख्या की । लोगों में अब तक प्रचलित मान्यता को आपने गलत बताया । आपने स्पष्ट रूप से कहा कि विवेक में धर्म है और अविवेक में पाप । किसी भी कार्य में यदि विवेक नहीं रखा जायगा तो वह महा पापकारी हो जायगा और यदि विवेक रखा जायगा तो वही अल्प पाप वाला हो जायगा । भावना पर ही यह बहुत कुछ आश्रित है । यदि शुभ भावना है तो अल्प पाप वाला होगा और वही दुर्भावना से महा पापवाला हो जाता है ।

इसी प्रकार समाज में फैली हुई बुराइयों को आपने अपने उपदेशों द्वारा दूर करने का सदैव प्रयत्न किया । आपने सिनेमा के सम्बन्ध में निम्न विचार व्यक्त किये हैं—"आजकल के सिनेमा तो नैतिकता से इतने पतित और निर्लज्जतापूर्ण होते सुने जाते हैं कि कोई भला मनुष्य अपने बाल-बच्चों के साथ उन्हें नहीं देख सकता ।' रसना-निग्रह के सम्बन्ध में ये विचार प्रकट किये हैं—ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए, साथ ही स्वास्थ्य रक्षा के लिए जिह्वा पर अंकुश रखने की बहुत आवश्यकता है । जिह्वा पर अंकुश न रखने से अनेक प्रकार की हानियां होती हैं । जो मनुष्य अपनी जीभ पर काबू रखता है, उसे वैद्यों और डक्टरों के द्वार पर भटकने की आवश्यकता नहीं रहती ।'

समाज-सुधार की दिशा :

ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में लोगों की भ्रान्त धारणाओं का वर्णन इस प्रकार किया है:-विषय भोग की कामना का नियन्त्रण नहीं हो सकता, यह कामना अजेय है; इस प्रकार की दुर्भावना पुरुष समाज में पैठ पायी तो भयंकर अनर्थों की परम्परा का सामना करना सहज न होगा । आचार्य श्री का कहना है कि ऐसे लोग काम भोग को क्रीड़ा मात्र समझते हैं । पर किसी व्यक्ति की असमर्थता देख कर यह धारणा नहीं बनानी चाहिये संसार में ऐसे व्यक्तियों का अभाव नहीं है, जो बाल्यावस्था से ही ब्रह्मचर्य का पालन कर जन सेवा का

कार्य कर रहे हैं । भीष्म और नेमिनाथ का पवित्र जीवन, उच्च-आदर्श जिन का मार्ग-दर्शन कर रहा है उन भारतीयों में यह भूत न मालूम कैसे घुस गया है ?' नेपोलियन जब 'असंभव' शब्द को कोश में से बाहर निकालने को कहता है तो फिर तुम भी काम भोग की इच्छा को दमन करने की असंभवता को निकाल कर बाहर करो । आचार्य श्री के हृदय में ब्रह्मचर्य के प्रति कितनी अपूर्व भावना थी !

विधवाओं को सदुपदेश देते हुए आप कहा करते थे कि 'अब परमेश्वर से नाता जोड़ो, धर्म को साथी बनाओ, संयम से जीवन व्यतीत करो । संसार के राग रंगों को और आभूषणों को अपने धर्म पालन में विघ्नकारी समझ कर त्याग करो । इसी में आपकी प्रतिष्ठा है ।

बाल विवाह के सम्बन्ध में आप कहा करते थे कि "छोटी-कच्ची-उम्र में बालक बालिका का विवाह करना अमंगल है । ऐसा विवाह भविष्य में हाहाकार मचाने वाला है, ऐसा विवाह त्राहि त्राहि की आवाज से आकाश को गुंजाने वाला है, ऐसा विवाह देश में दुःख का दावानल दहकाने वाला है। इस प्रकार के विवाह से देश की जीवन-शक्ति का ह्रास हो रहा है ।' 'यह बालक दुनियां के रक्षक बनने वाले हैं, इन पर दाम्पत्य का पहाड़ मत पटको।, बालक निसर्ग का सुन्दरतम उपहार है, इस उपहार को लापरवाही से मत रौंदो ।' इस प्रकार समाज में फैले हुये बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, इत्यादि को अपने उपदेशों द्वारा मिटाने का प्रयत्न किया । हजारों लोगों को मद्य, मांस, बीड़ी, सिगरेट, पर स्त्री-गमन इत्यादि बुराइयों से छुड़ाकर समाज को संस्कारी बनाया । ऐसे महान् समाज-सुधारक आचार्य के चरणों में मैं अपने श्रद्धा के पुष्प अर्पण करता हूँ ।

अगर सच्चे कल्याण की चाहना है तो सब वस्तुओं पर से ममत्व हटालो । 'यह मेरा' इस बुद्धि से ही पाप की उत्पत्ति होती है । 'इदं न मम' अर्थात् यह मेरा नहीं है, ऐसा कहकर अपने सर्वस्व का यज्ञ कर देने से अहंकार का विलय हो जायगा और आत्मा में अपूर्व आभा का उदय होगा ।

आचार्यश्री की देन के विविध आयाम

● श्री हिम्मतसिंह सरुपरया

आचार्यश्री से मेरा सम्पर्क और तत्त्वलाभ :

मुझे आपश्री के सर्व प्रथम वचनामृत सुनने का लाभ संवत् १९७६ में मिला, जब आप युवाचार्य पद पर थे व उदयपुर चातुर्मास के लिये पदार्पण किया। इसके पूर्व मैं शैशवास्था में था। आपके पांडित्यपूर्ण, शास्त्रसम्मत, हृदयस्पर्शी प्रतिभावंत प्रवचन श्रवणकर मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ। भविष्य में भारत की एक अद्वितीय विभूति सिद्ध होने का आभास मिला। संवत् १९७७ में जब मैं अजमेर में पढ़ता था, पूज्यश्री श्रीलाल जी महाराज साहब सहित आपके दर्शनों का ब्यावर में लाभ मिला। संवत् १९७८ में जब आप पूना विराजते थे, मैं भी वहां फरगूशन कालेज में पढ़ता था। तब मेरे पितृव्य भ्राता जवानसिंह जी की दीक्षा आपके द्वारा हुई जिनका दीक्षा नामकरण 'जिनदास' रखा गया। संवत् १९८० में जब मैं बंबई बी. एस-सी. में अध्ययन करता था, आपश्री के दर्शन घाटकोपर में किये। आपश्री ने विज्ञान व आगम के विषयों को तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन की प्रेरणा दी व प्रेमास्पद शब्दों में हृदय के उद्गार व्यक्त किये कि व्यावहारिक ज्ञान उपलब्ध कर सब कोई उदरपूर्ति कर सकते हैं, पर विरले ही ऐसे होते हैं जो शासन की निःस्वार्थ सेवा कर अपने जीवन को सार्थक करें।

संवत् १९८२ में जब मातुर्मास पूर्व शेषेकाल आपश्री का उदयपुर आगमन हुआ, तब तपस्वी श्री उत्तमचंद जी महाराज (जो १२ वर्ष से छाछ के आगार पर तपस्या करते थे) वहां विराजते थे। आपश्री के वचनामृत का पुनः लाभ व तत्त्वचर्चा श्रवण से उद्बोध मिला। तपस्वी जी के साथ आपका प्रेम व सौहार्द अनुकरणीय था। शाकाहारी व आमिष भोजन के विषय में चर्चा सुनी। शाकाहारी गृहस्थ के लिये एकेन्द्रिय जाति वनस्पति का त्याग शक्य नहीं, जीवन की समस्या के लिये उसका आरम्भ-समारम्भ करना पड़ता है जिसके लिये भी मन में पश्चात्ताप रहता है। विरतिमय जीवन की आकांक्षा

करता है– परन्तु एकेन्द्रिय से अनन्त गुणे पुण्य हो तब बेइंद्रिय जाति मिलती है, बेइन्द्रिय से अनन्तगुणे पुण्य से तेइन्द्रिय, उससे अनन्तगुणे पुण्य से चतुरिन्द्रिय, उससे भी अनन्तगुणे पुन्य से पंचेन्द्रिय जाति मिलती है। ऐसी पंचेन्द्रिय जाति का वध करने में क्रूरतम परिणाम होते हैं। उससे जीव मरकर नरक में गमन करता है। मांस भोजन से तामसिक प्रवृत्ति होती है। यह महारंभ है।

एक मुमुक्षु ने यह शंका की कि इन्द्रियातीत विषय स्वर्ग नरक वा लोक के तिर्यंग् भाग में असंख्यात द्वीप समुद्रों का जो स्वरूप शास्त्रों में उपलब्ध होता है, उनकी सत्ता में कैसे विश्वास किया जावे ? आपश्री ने समाधान किया कि उन वीतराग केवलियों ने जो प्रवचन दिये, वे त्यागी, पूर्णज्ञानी महात्मा थे। उन्हें किसी प्रकार का लोभ, लालच नहीं था। उन्हें कोई दूकानदारी नहीं लगनी थी। अपने कैवल्य से जैसा वस्तु का स्वरूप उन्होंने देखा, वैसा प्रतिपादित किया। तदनुसार ही गणधरों ने उनके भावों को शास्त्रनिबद्ध किया। बकरी (अजा) के मुँह में कोला (कुष्मांड फल) न समावे तो उस फल की असत्ता नहीं कह सकते। एक नारंगी के चारों ओर कीड़ी फिर जावे और कहे कि लोक का स्वरूप इतना ही है तो यह पर्याप्त नहीं। छद्मस्थ की दृष्टि सीमित है। कर्मों से आच्छादित है। वह पूर्ण ज्ञान नहीं कर सकता। वही पुरुष उत्कृष्ट साधना कर कैवल्य प्राप्त कर वस्तु के सत्यासत्य का निर्णय कर सकता है।

शेखेकाल अनन्तर करजाली की वाड़ी में बावजी चतुरसिंह जी (महाराणा सा० के काका व योगी– जिन्होंने पातञ्जल योग का सरल हिन्दी में अनुवाद किया, मेवाड़ी गीता आदि कई ग्रन्थ रचे) ने आपश्री के दर्शन किये। हिंदुवा सूर्य महाराणा प्रताप के वंशजों से परिचय कर गूढ़ योग के रहस्यों का उद्घाटन आपश्री ने किया। योगिराज को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। गुलाब बाग में उदयपुर के तत्कालीन महाराज कुमार श्री गोपालसिंह जी ने आपसे भेंट की, तब मैं भी उपस्थित था। छात्रधर्म पर प्रतिबोध दिया। प्रजाहितों की ओर संकेत किया। महाराज कुमार ने कई एक नियम लिये। वे आपश्री के दर्शन कर अति प्रसन्न हुए। बेदला से मेरे विदा लेने पर आपश्री ने मुझे 'सेवा समिति' के अध्यक्ष के नाते जो उद्बोध दिया, आज भी मेरे कर्णों से झंकृत है— "सेवाधर्मोऽतिगहनो योगिनामप्यगम्यः।" सेवक को बिना किसी अहंकार, ममत्व, प्रत्युपकार की वांछा के— समताभाव पूर्वक मानापमान का विचार न कर मानव ही नहीं, प्राणिमात्र की निस्वार्थ भाव से सेवा करना है। इससे उत्कृष्ट रसायन होने पर तीर्थंकर गोत्र बंधता है।

संवत् १९८४ में आपके दर्शन भीनासर में किये । उस समय कई एक अछूतों ने मांस-मदिरा का त्याग किया । व्याख्यान में बिना किसी भेद-भाव के बैठाये गये । कालेज के विद्यार्थियों को 'ब्रह्मचर्य' पर मार्मिक व शास्त्र-सम्मत प्रभावशाली उद्बोध दिया । 'मरणं बिंदुपातेन-जीवनं बिंदुधारणात्' उसी काल में दिन के समय 'सद्धर्म मंडन' के विषय, आपश्री मुनिश्री जिनदास जी को लिखा रहे थे । सं० १९९० में जब आपश्री का उदयपुर चातुर्मास हुआ, मुझे विशेष संपर्क का लाभ मिला । शास्त्राभ्यास में विशेष रुचि बढ़ी । चातुर्मास के अनन्तर आपश्री नाथद्वारा पधारे । वहां वैरागी बंधु श्री डूंगर सिंह जी का दीक्षा महोत्सव मेरे यहां से ही कराया गया । कई एक हरिजनों ने आपका प्रेरणात्मक उपदेश श्रवण कर, मदिरा-मांस का त्याग किया । जैन–अजैन जनता का समूह आपके वचनामृत से लाभान्वित हुआ । योगाभ्यासी सुथारन भूरबाई की आप पर अटूट श्रद्धा जागृत हुई । आपश्री की 'किरणा-वलियों' से वे अत्यन्त प्रभावित हुई । अभी भी वे उनके स्वाध्याय का विषय बन रही हैं । वहीं महामन्त मदनमोहन मालवीय जी के सुपुत्र श्री रमाकान्त मालवीय जो उस वक्त नाथद्वारा ठिकाने के 'कोर्ट आफ वार्ड' के अध्यक्ष थे, आपश्री से भेंट कर लाभाविन्त हुए ।

तदनन्तर चैत्र कृष्णा १० संवत् १९९० में मैंने साधु-सम्मेलन में आपश्री के दर्शन किये । जहां २६ संप्रदाय के २४० साधु महात्मा एकत्रित हुए थे । एक जंगम तीर्थ बन गया था । जब संत-महात्मा कतारबंद दो-दो के साथ 'भमैयो के नोहरे' (सम्मेलन स्थान) से लाखन कोटड़ी (निवास स्थान) की ओर पधारते थे, सबसे आगे पूज्य श्री मन्नालालजी म० साहब को दो संत डोली में उठाकर ले जाते थे। वह दृश्य आज भी मेरे स्मृति पटल पर अंकित है । धन्य है ऐसे महामन्त शासन के सेनानी को ।

स्थानकवासी संप्रदायों में स्वच्छन्दता व भिन्न-भिन्न प्रणालियों—शिथिलताओं को देखकर, सबको एक संगठन-श्रद्धा प्ररूपणा व आचार व्यवस्था में लाने हेतु जो आपश्री ने 'श्री वर्द्धमान संघ योजना' साधु-सम्मेलन के सामने रखी, यद्यपि सदस्यगण उसके लिये तैयार नहीं हुए, परन्तु वह सदा के लिये मार्गदर्शक बन गई । श्री हुक्मीचंद जी म. सा. की सम्प्रदाय में उसको अमली रूप दे दिया गया है । एक ही आचार्य के नेश्राय में दीक्षाशिक्षा, चातुर्मास व समाचारी की व्यवस्था है । अजमेर के साधु-सम्मेलन के नियमानुसार फाल्गुन शुक्ला ३ संवत् १९९० को जावद में मुनिश्री गणेशीलालजी महाराज सा. को युवाचार्य पद से सुशोभित किया । मैं भी उस समय वहां उपस्थित था ।

संवत् १९९१ में जब पूज्यश्री का चातुर्मास कपासन था, मैंने भी दर्शनों का लाभ लिया। आपश्री के हाथ में फिर से फोड़ा हो गया था जिसको 'मित्र' संबोधित कर असह्य वेदना होते हुए भी आपने अनुभव किया कि मेरा मन शरीर से ममत्व त्याग कर, एकान्त आत्मा पर केन्द्रित हो गया। अति आनन्द अनुभव हुआ, यह 'मित्र' का उपकार है। तर्क-वितर्कों से आत्म-स्वरूप का साक्षात् नहीं होता। जिस पोल के ऊपर कमरे में आपश्री विराजमान थे, उसके दो दरवाजे थे। मुझसे पूछा— प्रत्येक देहली के दरवाजे बाहर कितनी लंबाई है, नाप सकते हो ? मैंने कहा, हां नाप सकता हूँ। १०–१५ फीट होगी। पूज्यश्री ने समझाया, इसी तरह मानव का जीवन अल्प है, सीमित है। जो कुछ सुधार, उन्नति, आत्मोत्थान करना हो, कर लो अन्यथा जीवन के परे अनन्त संसार पड़ा है। मुक्ति का स्वरूप तर्क-बुद्धि से परे है 'सव्वे सरा णिय हन्ति, तक्का तत्थ ण विज्जइ।'

संवत् १९९७ में काठियावाड़, गुजरात से लौट कर आपश्री का बगड़ी में चातुर्मास हुआ। चातुर्मास उठने पर मैंने विदाई के वक्त मंगलिक के लिये निवेदन किया तो आपश्री ने विहार करने बाद अवसर देखने को कहा। विहार करने के बाद रास्ते में एक स्थान पर बैठकर उन दिव्यदृष्टि ने जीवन-सुधार की जो प्रेरणाएँ दीं वे आज भी मेरे लिये मार्गदर्शक बन रही हैं। उन्हीं का उपकार है कि मैं अपने जीवन में परिवर्तन ला सका हूँ, उसे मर्यादित व यथास्थिति संयमित कर पाया हूँ। भविष्य में भी यही लक्ष्य रखता हूँ।

अद्‌भुत व्यक्तित्व :

गौरवर्ण–लंबा कद, दोहरा बदन, विशाल ललाट, करुण व वात्सल्य से ओतप्रोत चक्षु, प्रसन्न मुख, प्राणिमात्र के हितैषी। (आपश्री के जन्मलग्न के ग्रह व हस्तरेखाएँ सूचित करती थीं कि ये महापुरुष या तो छत्रपति होंगे या पत्रपति) आप अपूर्व प्रतिभाशाली, अनुपम तेजस्वी, अद्वितीय विचारक, अद्‌भुत विवेचक, असाधारण वाग्मी व शास्त्रनिहित रहस्य के मर्मज्ञ व सूक्ष्म अन्वेषक थे। आपकी आत्मा ने गहन अध्ययन व मनन से आन्तरिक प्रकाश प्राप्त कर लिया था जो उनके रोम २ से प्रस्फुट हो जनसमुदाय के हृदय को आलोकित आंदोलित व विकसित कर देता था।

प्रखर वक्ता :

आपकी भाषण शैली चमत्कृतिपूर्ण थी। जिस किसी विषय को

उठाते–अपने करुण सौहार्द से समन्वित मधुर कंठ से ऐसा चित्रित कर देते थे कि जनता मन्त्रमुग्ध हो विभोर हो जाती। आप प्रार्थना में एकदम ऐसे लीन-तन्मय हो जाते कि पैर के दोनों अंगूठे भी आपके लय में सहयोग देते थे। प्रभु की प्रार्थना में आपकी गहन श्रद्धा भक्ति थी। अधिकतर 'आनन्दघन' चौबीसी की कड़ियों का मधुर कंठ से गायन करते। यह 'चौबीसी' साधारण जन को दुरूह है परन्तु आप उसी पर विवेचन ऐसी सरल भाषा में करते कि अल्पज्ञ भी समझ सकता था। यह आपके गहन अध्ययन, प्रतिभा व शास्त्रों के मर्मज्ञ होने का परिणाम था। १०–१० हजार श्रोताओं के एकत्रित होने पर भी ऐसी शान्ति रहती कि आत्मार्थी पिपासु चातक आपके वचनामृत मेघवर्षा के लिये लालायित रहते। आपके हृदयस्पर्शी उपदेशों से प्रेरणा पाकर श्रोताजन एकदम आपके द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करने को उद्यत होते। कई एक जीवों को अभय दान मिलता। कइयों ने मद्य, मांस, परस्त्री गमन, भांग, गांजा आदि मादक पदार्थों का परित्याग किया, कई जनोपयोगी संस्थाएं व गोरक्षा सदन, गुरुकुल, जैसे कार्य हाथ में लिये गये। राजा-महाराजाओं ने, नेताओं ने, सेठ साहूकारों ने, ऑफिसर कर्मचारियों ने, वकील-वैरिस्टरों ने अपने जीवन को मोड़ दिया, नियमोपनियम ले जीवन सभ्य सुसंस्कृत बनाया। कई एक अगार से अनगार बने, आत्मोद्धार किया। आप प्रार्थना में कभी २ कबीर की निम्नोक्त पदावली मधुर कंठ से दोहराते थे जो अभी भी कानों में स्फुरणा भरती है—

"सुने री मैंने निर्बल के बल राम।
पिछली साख भरूँ संतन की, आडे सुधारे काम।

संस्कृत शिक्षा : वैतनिक पण्डित :

संवत् १९६९ के पूर्व स्थानकवासी सम्प्रदाय में संस्कृत भाषा का पठन-पाठन कम था। व्याकरण-साहित्य का अध्ययन कर विदग्ध बनने की ओर किसी की रुचि नहीं थी। पुराने विचारों के लोग संस्कृत भाषा पढ़ने के विरोध में थे। श्री जवाहरलाल जी महाराज सा० को रूढ़ि के बीच दबा रहना असह्य था यद्यपि संयम की मर्यादाओं को वे कट्टरता से पालन करते थे। मुनिश्री स्थानकवासी सम्प्रदाय में समर्थ विद्वान देखना चाहते थे अन्यथा यह समाज विद्वानों के समक्ष टिक नहीं सकेगा। अतः उन्होंने अपने शिष्यों को संस्कृत पढ़ाने का निश्चय किया, परन्तु मुनिश्री के सामने यह कठिनाई हुई कि स्थानकवासी समाज में तो कोई साधु या श्रावक, शिष्य गणेशीलाल जी व

घासीलाल जी को नियमित रूप से पढ़ाने वाला नहीं है। वेतन देकर पढ़ाने में श्रावक आपत्ति उठाते हैं। अतः वेतन देकर गृहस्थ से पढ़ाना अच्छा है या इन शिष्यों को अनपढ़ रहने देना ? आपश्री ने अपने धर्म की रक्षा के लिये, प्रतिवादियों का मुकाबला करने के लिये संस्कृत भाषा की जानकारी अनिवार्य समझी। श्रावकों के इस प्रश्न पर कि क्या साधु वैतनिक पण्डित से पढ़ सकता है ? आपने अद्भुत युक्ति से समाधान किया 'मरते वक्त पिता ने पुत्र को कहा— मैं तुम्हारे हित के लिये जो कुछ कर सकता था, किया। अब मैं जाते वक्त अन्तिम समय में एक शिक्षा दिये जाता हूं– "तुम किसी से ऋण मत लेना और न भूखे मरना।' पिता के देहान्त के बाद पुत्र आर्थिक संकट में पड़ गया। सम्पत्ति नष्ट हो गई। मरने से बचने को ऋण लेने के सिवाय और चारा नहीं। उसने थोड़ा ऋण लेकर जीवन को मरने से बचाया व ऋण वापिस चुका दिया। इसी तरह क्या आप अपने धर्मगुरुओं को मूर्ख ही बने रखना चाहते हो, क्या धर्म पर मिथ्या आरोपों का निवारण करने हेतु समर्थ नहीं बनाना चाहते हो ? "अनाणी किं काही किवा नाही सेय पावकं" (अज्ञानी भला बुरा, हेय उपादेय को क्या समझ सकेगा)— अध्ययन-अध्यापन सावद्य कार्य नहीं है। मूर्ख रहने की अपेक्षा गृहस्थ से अध्ययन करना कम दोष है। दोष की शुद्धि प्रायश्चित्त द्वारा की जा सकती है। यह है पूज्यश्री की दीर्घदृष्टि व युगप्रवर्तक प्रतिभा, जिसके फलस्वरूप दोनों शिष्यों को पण्डितों द्वारा अध्ययन कराया जाकर पं. गुणे शास्त्री पी-एच. डी. व म. म. अभ्यंकर शास्त्री से परीक्षा लिवाई गई तो दोनों व्याकरण में ८२ प्रतिशत से व साहित्य में ६७ प्रतिशत से उत्तीर्ण हुए। उन्हीं युगद्रष्टा की सूझ के बाद आज इनकी संप्रदाय में १०० से अधिक साधु-साध्वी विद्वानों के पास उच्च अध्ययन कर रहे हैं व प्रति वर्ष परीक्षा दे रहे हैं। ये प्रभु के शासन के भावी दीपस्तंभ बनेंगे व जनता को सत्य मार्ग पर लगावेंगे।

चर्बी के वस्त्र का त्याग व खादी धारण :

संवत् १९६७ की बात है जब आपश्री भीनासर विराजते थे। यह ज्ञात होने पर कि मिल के वस्त्रों को चमकीला व मुलामय करने हेतु इन पर चर्बी लगाई जाती है— जिसके पीछे घोर हिंसा होती है तो आपश्री ने मिल के वस्त्रों को सर्वथा त्याग दिया और आजन्म उसका पालन किया व साधुओं को भी खद्दर उपयोग में लाने का उपदेश देकर उन पर जिम्मेदारी डाली कि यदि अहिंसा को तुमने समझा है, अगर महावीर स्वामी को समझ पाये हो

तो चर्बी के वस्त्रों का सर्वथा त्याग करना चाहिये क्योंकि इसके पीछे पशुओं का कत्ल होता है, महारंभ होता है। खादी से जीवन में सादगी व धर्म की आराधना होती है। आपश्री ने गृहस्थों को भी यही उपदेश दिया। वस्त्रों की आवश्यकता पूर्ति हेतु महात्मा गांधी ने जो चर्खा चलाने का व खादी धारण का आग्रह किया, इससे धर्म की रक्षा, अहिंसा का पालन, गरीबों को रोजी मिलती है, देश की सम्पत्ति विदेश में जाने से रुकती है, जो सम्पत्ति वहां सिवाय शोषण, विषय वासना के सेवन जैसे महारंभ को उत्तेजन करने के अलावा कोई फल नहीं देती। साधुवर्ग व कई गृहस्थ आज भी आपसे प्रेरणा पाकर खादी धारण कर रहे हैं। कई विधवा बहिनों ने आजन्म खादी अंगीकार की है।

गोरक्षा व गोपालन :

संवत् १६८० में जब घाटकोपर का होली चातुर्मास व्यतीत कर पूज्यश्री बंबई नगरवासियों के अनुरोध पर बंबई जाने के लिये दादर पहुंचे तो रास्ते में मांस से भरे हुए टोपले ले जाते पुरुषों को देखा व पूछने पर ज्ञात हुआ कि बांदरा व कुटले के कसाईखाने में जो पशु मारे जाते हैं, उनका मांस बेचने को ये टोकरे वाले जाते हैं। उस समय में प्रति वर्ष १४०००० गायें भैंसे कटती थीं दूध के व्यापारी घांसी लोग जब तक गाय भैंस पर्याप्त दूध देती हैं, रखते हैं। ४–५ सेर दूध ही दें तो ये कसाई को बेच देते हैं। इनको पालना दुर्भर पड़ता है। यह सुनकर पूज्यश्री का हृदय द्रवित हो गया। पूज्यश्री ने बंबई की ओर पापमय गढ़ में पैर रखना पसंद नहीं किया। पुनः घाटकोपर लौट गये व जनता को बेचारे मूक पशुओं की रक्षा के लिये दया पर प्रभावशाली व्याख्यान दिये। गोपालन के लिये शास्त्र की मर्यादानुसार सुन्दर विवेचन किया। प्राचीन श्रावक ४००००–६०००० गायें रखते थे। देश समृद्ध था। खेती पुष्कल होती थी। श्रीकृष्ण दरिद्र नहीं थे, परन्तु गोरक्षा हेतु ही उन्हें चराने ले जाते। गोरक्षा पर ही देश की समृद्धि निर्भर है। गोपालन में अधिक हानि नहीं होती। जितना खर्चा उतना दूध। गर्भवती होने के बाद भी संतति वर्धन–बैलों से खेती में वृद्धि। गोबर पवित्र है। उससे खाद बनता है, घर की सफाई–छाणे आदि होते हैं। गोमूत्र कस्तूरी बराबर माना गया है। गाय का दूध अमृत तुल्य है। जिस माता ने पाला-पोसा उसी का बलिदान कृतघ्नता है, महाहिंसा, महारंभ का पाप है। इसकी रक्षा व अन्य प्राणियों की रक्षा करना धर्म है। आर्य कहलाने वाले ही गोहत्या में सहायक बनें, उसकी चर्बी लगे वस्त्र पहनें, मांस खाने वालों की वृद्धि होती रहे, फिर गोभक्त कहलाना कहां तक संगत है? गुरु-

देव के मार्मिक हृदयविदारक विवेचन से श्रोतागण के हृदय पसीजे, लाखों का चन्दा हुआ और जीवदया संस्था की स्थापना हुई। सहस्रों पशुओं को अभय-दान मिला। दूध की डेयरी खुली।

खेती :

स्थानकवासी सम्प्रदाय में कुछ ऐसी मान्यता हो गई थी कि खेती करना पाप है। पूज्यश्री ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि खेती करना पाप था तो भगवान् का मूर्धन्य श्रावक आनंद ५०० हलों की खेती क्यों करता ? संसार की कोई क्रिया ऐसी नहीं जो एकान्त पाप व एकान्त पुण्य हो। पाप का अल्प-बहुत्व देखना चाहिये। मान लो किसी पुरुष ने खेती नहीं की, अनाज पैदा नहीं किया तो जनता या तो भूखी मरेगी या मांसाहारी होगी। जैनों को तो हिंसा-अहिंसा का विवेक रखना चाहिये। बिना विवेक के खेती करने वालों से, जो जैन विवेक से खेती करता है वह ठीक है। पूज्यश्री के इस विवेक–दर्शन के विवेचन से प्राचीन भ्रमणा दूर हो गई।

अस्पृश्यता :

अछूतोद्धार पूज्यश्री का प्रिय विषय रहा है। आपके उद्‌गार हैं— "धर्म का तकाजा है मानवमात्र को भाई समझा जाय। प्रत्येक बन्धु मनुष्य का सहायक है। चमार आपके लिये जूती बनाता है— मेहतर आपकी गंदगी उठा, नाली आदि साफ कर आपके स्वास्थ्य की रक्षा करता है, बीमारियों से बचाता है। क्या इन महती सेवाओं के पुरस्कार में उनको नीच कहना, अस्पृश्य कहना कृतघ्नता नहीं है ? याद रखो ये नीच कहलाने वाले लोग समाज के प्यारे लाल हैं। इनको धिक्कारो मत, इनका अपमान मत करो, इनके साथ स्नेहपूर्ण बराबरी का व्यवहार कर इनके सुख सुविधा–खान पान, रोग निवारण, शिक्षा प्रदान, स्वास्थ्य-सुधार में सहायता कर इनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करो। शूद्र आपके समाज की नींव हैं। महल का आधार नींव है जिसकी अस्थिरता से महल धराशायी हो जायेगा। इन शूद्रों को अस्थिर कर दिया तो तुम्हारे समाज की नींव हिल उठेगी। तुम्हारी संस्कृति धूल में मिल जायेगी। अंत्यजों के प्रति दुर्व्यवहार कर आप धर्म का उल्लंघन करते हैं, मनुष्यता का अपमान करते हैं, देश व जाति को दुर्बल करते हैं; अपनी शक्ति को क्षीण कर अपनी ही आत्मा का पतन करते हैं।

इस प्रकार के प्रवचन आधुनिक साहित्य की शोभा हैं, धर्मशास्त्र

का मक्खन हैं । हरिकेशी, मेतारज भी चाण्डाल थे । परन्तु अपनी उत्कृष्ट साधना कर आज हमारे लिये पूजनीय हो गये हैं, उच्चगति को प्राप्त हुए हैं । आपके उपदेशों से जनता की दृष्टि पलटी । उनसे भाईचारा, स्नेह बढ़ा व देश की प्रगति में आपके विचार बड़े सहायक हुए ।

स्वतन्त्रता :

संवत् १९८८ में दिल्ली का चातुर्मास उठने के बाद पूज्यश्री जब जमुना पार वहां के सज्जनों की प्रार्थना पर पधार रहे थे– उन दिनों में राष्ट्रीय आंदोलन जोरों से चल रहा था । प्रायः सभी नेता लोग कारागृह में ठूंस दिये गये थे । उस समय पूज्यश्री के व्याख्यान धार्मिकता से संगत किन्तु राष्ट्रीयता के रंग से ओतप्रोत थे । परस्पर भेदभाव मिट जाने से, सभी प्रकार के श्रोता-गण व्याख्यान सुनने आते । शुद्ध खद्दर के वस्त्र, राष्ट्रीयता से सनी हुई वाणी अपार जनता के हृदय को प्रभावित कर देती थी । धर्माचार्य के रूप में यह नया राष्ट्रीय नेता सरकार की आंखों में खटकने लगा । सी. आई. डी गुप्तचर पूज्यश्री के पीछे २ फिरने लगे । श्रावकों ने पूज्यश्री की गिरफ्तारी होने की आशंका से पूज्यश्री को निवेदन किया—"आप अपने व्याख्यानों को धर्म तक ही सीमित रखें— राष्ट्रीय वातों से सरकार को सन्देह हो रहा है, ऐसा न हो आप गिरफ्तार किये जायें व सारी समाज को नीचा देखना पड़े ।"

पूज्यश्री ने उत्तर दिया— मैं अपने कर्तव्य को भलीभांति समझता हूं । मुझे अपने उत्तरदायित्व का भान है । मैं जानता हूं धर्म क्या है । अधर्म मार्ग पर नहीं जा सकता परन्तु परतन्त्रता पाप है । परतन्त्र व्यक्ति ठीक तरह से धर्म की आराधना नहीं कर सकता । मैं व्याख्यान में प्रत्येक बात सोच समझकर मर्यादा में रहकर ही कहता हूं । फिर भी राजसत्ता गिरफ्तार करे तो भय नहीं । उपसर्ग परीषह सहना हमारा कर्तव्य है । यदि कर्तव्य पालन करते जैन समाज का आचार्य गिरफ्तार हो जाता है तो अपमान की बात नहीं । अत्याचारियों का अत्याचार सर्वोन्मुख प्रकट हो जायेगा । यह हैं एक 'धर्म केशरी' के निर्भयतापूर्वक हृदयोद्धार, स्वतन्त्रता की वेदी पर धर्म रक्षा हेतु अपने सर्वस्व को बलिदान कर देने की तत्परता । ऐसे ही महापुरुषों ने भारत का गौरव सदा सदा के लिये अक्षुण्ण रखा । राजनैतिक क्षेत्र में पं० जवाहरलाल नेहरू व धार्मिक क्षेत्र में जवाहराचार्य को जन्म देकर यह भारत माता विश्व की जननी बन गई ।

थली प्रान्त में प्रतिबोध :

बालोतरा, जेतारण व भीनासर आदि क्षेत्रों में पूज्यश्री से भाइयों ने

सम्पर्क साधा, तब दया दान विनय के प्रति उसमें अन्धश्रद्धा देखकर भावरोग से पीड़ित इन भाइयों पर करुणा आई । इन मान्यताओं को सुधारने हेतु आपश्री ने १९८४ के मार्गशीर्ष में जनकल्याण हेतु थली प्रांत की ओर विहार किया। क्षेत्रीय वेदना व मानवीय उपसर्ग कष्टों की परवाह न कर आप वहां पधारे और उन भाइयों को व आम जनता को प्रतिबोध दिया ।

अल्पारंभ-महारंभ :

प्राचीन लोगों में ऐसी धारणा बैठ गई थी कि दूसरे से काम कराने की अपेक्षा अपना काम अपने आप करने में अधिक पाप है । प्रत्यक्ष की अल्प के सामने अप्रत्यक्ष की बड़ी से बड़ी हिंसा को नगण्य समझते थे । पूज्यश्री ने इस विषय में गहन चिन्तन व शास्त्र-रहस्य को समझ उद्‌बोधन दिया कि शास्त्र, नीति व व्यवहार में सभी में विवेक व यतना को महत्व दिया गया है । विना विवेक धर्म कैसे टिक सकता है ? सुबुद्धि प्रधान ने विवेक से गंदा पानी भी शुद्ध कर राजा को प्रतिबोध देकर धर्मनिष्ठ बना दिया । स्वयं यतना से रोटी बनाने की अपेक्षा हलवाई से पुड़िया खरीद कर खाने में अधिक पाप है। चर्खा कातने की अपेक्षा चर्बी के वस्त्र पहिनने में अधिक पाप है । अल्पारंभ-महारंभ का प्रश्न उन्हीं के लिये है जो सम्यक् दृष्टि हैं । मिथ्या–दृष्टि के लिये यह प्रश्न नहीं उठता । वह तो विवेक यतना के अभाव से महारंभी है । सम्यक् दृष्टि के लिये जहां विवेक है, यतना है, अल्प पाप है । विवेक के अभाव में चाहे कार्य छोटा भी हो महा पाप है । चेटक, उदायन-भरत चक्रवर्ती विवेक के कारण राज्य पालन करते हुए अल्पारंभी हैं । तंदुल मच्छ अविवेक से शक्ति न होते हुए भी महारंभी नरकगामी हुआ । घृत का व्यापारी पशुओं के अधिक मरने पर भाव बढ़ना चाहता है तो महारंभी है । चर्म बेचने वाला–पशु कम मरे तो भाव बढ़ेगा ऐसाचाहता है तो अल्पारम्भी है । जल्लाद अपनी ड्यूटी समझ पश्चात्तापपूर्वक अपराधी को फांसी पर चढ़ाता है तो अल्पारंभी है । दर्शक लोग फांसी पर चढ़ाने का अनुमोदन करते हैं तो महारंभी हैं ।

समाज-सुधार :

पूज्यश्री ने मृत्युभोज, वाल विवाह, वृद्धविवाह, कन्याविक्रय, दहेज प्रथा के विरोध में सचोट प्रहार किये । इन वृथा कुरीतियों से समाज रसातल पहुँच रही है। शादी पर नृत्य आदि आडम्बरों में वृथा धन खर्च न किया जाकर शुभ प्रवृत्तियों में धन का उपयोग करने की प्रेरणाएँ दीं, फलस्वरूप कितने ही जनहितैषी कार्य प्रारम्भ हुए— जीवरक्षा संस्था–गुरुकुल–जनहितैषी संस्था–

चिकित्सालयादि । विधवाओं के आदर सम्मान हेतु प्रतिबोध दिया— "आपके घर में विधवा बहिनें शील-देवियां हैं । इनका आदर करो— पूज्य मानो— इनको खोटे दुखदायी शब्द न कहो— ये शील देवियां पवित्र हैं, पावन हैं— मंगलमय हैं । इनके शकुन मंगलमय हैं । याद रखो यदि समय पर न चेते, विधवाओं की मानरक्षा न की, इनका निरन्तर अपमान करते रहे— इन्हें ठुकराते रहे तो शीघ्र ही अधर्म फूट पड़ेगा । आपका आदर्श धूल में मिल जायेगा । आपको संसार के सामने नतमस्तक होना पड़ेगा । आपने ब्याजखोरी, कालाबजारी का घोर विरोध किया ।

ब्रह्मचारी वर्ग :

पूज्यश्री ने अपने उर्वर मस्तिष्क से जिनशासन की सेवा व सिद्धांतों के प्रचार-प्रसार हेतु एक ब्रह्मचारी-वर्ग की योजना सुझाई जो साधु व गृहस्थ के बीच का ब्रह्मचारी वर्ग हो, जो गृहस्थ कार्यों से निवृत्ति पा देश-विदेश में जैन धर्म का प्रचार-प्रसार कर सके । यह साधु वर्ग का काम नहीं । वे अपने व्रत व मर्यादा अक्षुण्ण रीति से पाल सकें, यह आवश्यक है । उन्हें इस काम में न डाला जावे । यद्यपि पूज्यश्री की यह योजना उस वक्त कार्यरूप में न परिणत हो पाई परन्तु आचार्यश्री की जन्म शताब्दी पर कार्तिक शुक्ला ४ दिनांक ७-११-७५ को देशनोक में इस योजना ने मूर्त स्वरूप ले लिया । कई सदस्यों ने अपने नाम लिखा 'वीर संघ' को चालू करा दिया है ।

राजा महाराजा व राष्ट्र-नेताओं से भेंट :

संवत् १९७१ में जलगांव के चातुर्मास में सेनापति बापट जो बेरीस्टर व आई. सी. एस ओफिसर थे, नौकरी छोड़ देशभक्त हो गये । सादगी व ईमानदारी का जीवन यापन करते थे । आपश्री के उपदेश सुन परम श्रद्धालु बने । संवत् १९७२ में अहमदनगर में आपश्री का व्याख्यान प्रोफेसर राममूर्ति ने सुन सूर्य के सामने अपने को जुगनू स्वीकार निरामिष भोजन व ब्रह्मचर्य पालन से ऐसा शक्तिशाली बन सकना बताया । इसी वर्ष अहमदनगर में लोकमान्य तिलक ने आपश्री से भेंट की । 'गीता रहस्य' में जो 'जैनधर्म केवल निवृत्तिमार्गी साधु के लिये लिखा' गृहस्थ मोक्ष नहीं पा सकता लिखा इस पर पूज्यश्री ने समाधान दिया– जैन धर्म वेष पर महत्त्व नहीं देता । गृहस्थ अनासक्ति व इन्द्रियजय से मुक्त हो सकते हैं 'गृहस्थ लिंग सिद्धा' आदि प्रकाश डाल 'तिलक' जी को समाधान दिया । उन्होंने धारणा पलटी व भविष्य में शुद्धि करने का आश्वासन दिया । संवत् १९७८ में रतलाम नरेश पूज्यश्री के व्याख्यान में आये । खादी के विषय में जो आप की घृणात्मक धारणा थी,

पूज्यश्री का उपदेश सुन दूर हो गई । संवत् १९८४ में बीकानेर में चातुर्मास में वहां के दीवान सर मन्नुभाई मेहता ने भेंट की । राउंड टेबुल कानफरेंस में भारत के प्रतिनिधि की हैसियत में जाने पर आपको न्याय व सत्य का पक्ष ले निडर होने के लिये प्रतिबोध दिया । वहीं चातुर्मास उठने पर पं० मदनमोहन मालवीय जी ने भेंट कर प्रसन्नता व्यक्त की । दिनांक २६-१०-३६ (संवत् १९९३) को राजकोट में महात्मा गांधी आपके दर्शन करने आए और कहा, अहमदाबाद था तब से ही आपके दर्शन का इच्छुक हूँ । यहां आकर बिना मिले कैसे जा सकता हूँ ? लोग मुझे घेर लेते हैं । मेरी इच्छा आपके उपदेश में आने की थी । पूज्यश्री ने दीवाल घड़ी के सामने संकेत कर कहा—मशीनरी चलाने वाले तो आप ही हैं । जनता आपके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलेगी । दि. १३-१०-३६ को सरदार पटेल ने आपश्री के दर्शन किये । गांधी सप्ताह चल रहा था । पूज्यश्री ने कहा— गांधीजी द्वारा प्रदर्शित उपाय, खादी को अपना कर देश को समृद्ध बनाने के उपाय में सहयोग देना सच्ची सेवा है । पटेलजी ने हर्ष प्रकट कर जनता को पूज्यश्री के उपदेशों को कृत्य में लाने का अनुरोध किया । दिनांक ५-१-३८ को मोरवी नरेश आपश्री की सुखसाता पूछने आये । ३-४ बार राजकुमार सहित व्याख्यान में पधारे । दि. २६-३-३८ (१९९५) को मोरवी में चातुर्मास की विनती हेतु अहमदाबाद, मोरवी नरेश पधारे । चातुर्मास मोरवी होने पर दर्शनार्थियों के आवास यान आदि की सब व्यवस्था राज्य की ओर से की गई । सर प्राणजीवन सी. रामआ भाई ने निःस्वार्थ भावना से जामनगर में पूज्यश्री के पैर की सूर्यचिकित्सा आदि की ।

साहित्य-सेवा :

पूज्यश्री ने उत्कृष्ट साहित्य सेवा की है—जो 'जवाहर किरणावलियों में संगृहीत है । श्रावक के १२ व्रतों को जिस सुन्दर व अद्यतन शैली में वर्णन किया है, उसने जैन आचार प्रणाली के महत्त्व को बढ़ा दिया है । अहिंसा व सत्य आदि का वर्णन प्रत्येक भावुक को गद्‌गद् कर देता है । 'धर्म व्याख्या' में आपने अति कुशलता दिखाई है । 'स्थानांग' सूत्र के आधार पर आपने जो ग्रामधर्म, नगरधर्म, देश व राष्ट्रधर्म पर अनुपम व्याख्या की है, भावी जनता को सदा मार्गदर्शन करती रहेगी । भूत व वर्तमान का मेल बैठाने में आप सिद्ध-हस्त थे । सती चंदनबाला, हरिश्चन्द्र तारा का रोमांचकारी चित्र सा देख अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है । साहित्य आरंभ कर जब तक पूरा नहीं पढलें— मन को सन्तोष नहीं होगा । राजकोट व्याख्यान संग्रह—जामनगर व्याख्यान

संग्रह, प्रशंसनीय हैं। श्री सूयगडांगसूत्र सटीक आपके अगाध शास्त्राध्ययन व प्रतिभा बुद्धि का सूचक है। भगवतीसूत्र पर कुछ अंश प्रकाशित हुए हैं। पाण्डित्यपूर्ण शास्त्र का निचोड़ है। 'भ्रमविध्वंसन' ग्रन्थ में प्रतिपादित जैनधर्म के अहिंसा-दया दान आदि सिद्धान्तों व मान्यताओं के खंडन रूप आपने 'सद्धर्म मंडन' नामक ग्रन्थ प्रगाढ़ विद्वत्ता, सूत्र प्रमाण सहित सयुक्तिक रचा। यह कृति भक्तजनों के लिये अमर रहेगी। ऐसी ही 'अनुकम्पा विचार' की पुस्तक आपश्री की अद्भुत अनुपम सेवा की स्मृति संजोए रखेगी।

मूल्यांकन :

पूज्यश्री जवाहराचार्य जी की कथनी व करनी एक थी। आध्यात्मिक, सामाजिक, नैतिक व व्यावहारिक उन्नति के लिये आपने प्रबोध व विशिष्ट दृष्टि प्रदान कर युगद्रष्टा–युगस्रष्टा–युगप्रवर्तक का कार्य किया। मानव समाज सदा के लिये उसका ऋणी रहेगा। आप धीर, वीर, प्रभावक तथा जैन संस्कृति के सतत पहरेदार हैं। आपकी व्याख्यान शैली व व्यवहार आदर्श स्वरूप का रहा है। आपके प्रवचन क्रान्तिकारी एवं सुधारना के विचार को लिये रहे हैं। आपके गुणों को लेखनीवद्ध करना मेरे जैसे अल्पज्ञ के लिये सागर में से रत्न निकालने जैसा असंभव है तथापि भक्तिवश श्रद्धा से नतमस्तक हो यह यत्किञ्चित् स्मरण–पुष्पों की श्रद्धांजलि सविनय अर्पित है।

दुःखों का रोना मत रोओ। हाय दुःख, हाय दुःख मत चिल्लाओ। संसार में अगर दुःख हैं तो उन पर विजय प्राप्त करने की क्षमता भी तुम्हारे भीतर मौजूद है। रोना तो स्वयं ही एक प्रकार का दुःख है। दुःख की सहायता से ही क्या दुःखों को जीतना चाहते हो ?

भारतीय संस्कृति के सजग प्रहरी

● श्री मिट्ठालाल मुरड़िया

राष्ट्रव्यापी स्वातन्त्र्य आन्दोलन :

देश में आजादी की लड़ाई–लड़ी जा रही थी । स्वदेश–प्रेम का वातावरण बन रहा था । प्रेम, एकता और मैत्री की लहर फैल रही थी, मातृ-भूमि की रक्षा के लिए हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, जैन और ईसाई तिरंगें झण्डे के नीचे एकत्र होकर एक स्वर से बोल रहे थे—

इन्कलाब : जिन्दा बाद ।
भारत माता की : जय हो ।
महात्मा गांधी की : जय हो ।

इन्कलाब–जिन्दाबाद के नारों से नभ गूंज रहा था । सभी के तन में देशप्रेम और देशभक्ति का जोश बढ़ रहा था, भुजाएं फड़क रही थीं, आत-तायियों को खदेड़ने के लिए सर्वत्र एक ललकार थी । सभी मन और दिल से एक होकर विचार गोष्ठियां चलाते और बार–बार मंत्रणा के लिए बापू के पास जाते । आजादी के केन्द्रबिन्दु बापू ही थे । चन्द्रशेखर आजाद और भगतसिंह आजादी के मैदान में आ चुके थे ।

राष्ट्रव्यापी भावनाएं :

सरदार पटेल, राजेन्द्र बाबू, मौलाना आजाद, शरत्चन्द्र बोस, पुरुषो-त्तमदास टंडन, शंकरराव देव, सरोजनी नायडू, जयप्रकाश बाबू और पं. जवाहर लाल नेहरू अंग्रेज सरकार की ज्यादती का घोर विरोध कर स्वतन्त्रता की मांग कर रहे थे । देशव्यापी आन्दोलन छिड़ा हुआ था । हम मरेंगे मिटेंगे, किन्तु आजादी लेकर रहेंगे । वर्धा साबरमती आश्रम में बैठा एक बूढ़ा मार्गदर्शन दे रहा था ।

इधर मैथिलीशरण गुप्त की "भारत–भारती" प्रकाशित हो चुकी थी ।

उधर बालकृष्ण शर्मा नवीन "कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये, और माखनलाल चतुर्वेदी कारागृह में बैठे हुए कोयल से वार्तालाप कर रहे थे। इस देशव्यापी आन्दोलन और व्यापक धूम से अंग्रेज सरकार घबड़ा गई। एक ओर सड़कों पर देशप्रेमियों की टोलियां निकलतीं और दूसरी ओर गिरफ्तारी के लिए गोरी पलटनें हथकड़ियां लेकर पीछा करतीं।

अंग्रेज सरकार की ज्यादती के खिलाफ और स्वदेश प्रेम के लिए ये देश के दीवाने अपने मूल्यवान विदेशी वस्त्रों की होली जला रहे थे। उनकी आंखों में उस समय वस्तु का मूल्य न था, देशप्रेम का मूल्य सर्वाधिक था। भारत माता के लिए जीना और मरना ही उनका मन्त्र बन गया था।

आचार्यश्री के क्रान्तिकारी विचार :

ऐसे समय में आचार्यश्री जवाहरलाल जी म. ने देशप्रेम, देशभक्ति और स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने का आह्वान किया। राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत उनकी वाणी सर्वत्र गूंजती हुई जन-जीवन को जगा रही थी। अपने शिष्यों सहित गांव-गांव, नगर-नगर घूम कर आचार्यश्री ने लोक-जीवन को आन्दोलित किया और क्रान्तिकारी विचार दिये। जन समुदाय की विचार शक्ति को व्यापक बनाया। फलस्वरूप देश में चेतना की नूतन लहर दौड़ पड़ी।

आचार्यश्री ने लोगों को संकल्प दिलाया कि हम देशप्रेम के लिए त्याग करेंगे, खादी पहिनेंगे, अपने दोष त्यागेंगे, एकता बढ़ावेंगे, प्रेम और भ्रातृत्व का प्रचार करेंगे, जीवन में सत्य और अहिंसा का उपयोग करेंगे, प्रलोभनों में नहीं फंसेंगे, न्याय और नीतिमय व्यवहार करेंगे, जीवन में विवेक, शान्ति और संतोष को महत्त्व देकर देश के लिए सब कुछ करेंगे। अपना कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व निभावेंगे। तन, मन और धन से जनता की भलाई करेंगे।

आचार्यश्री की क्रान्तिकारी वाणी का जबरदस्त असर पड़ा। रूढ़ियां लड़खड़ाने लगीं, आडम्बर दो टूक हुए, परंपराएं टूटने लगीं, चली आ रही मिथ्या धारणाएं मिटने लगीं, प्रदर्शन खत्म हुए और अंधश्रद्धा समाप्त हुई। समाज में भारी परिवर्तन हुआ। देशप्रेम जागा, सद्भावनाएं बढ़ीं।

आचार्यश्री ने सामान्य जन-जीवन में आशा की ज्योति जलाई, जनता को जन्तर-मंतर से, जादू-टोना से, भैरू भवानी के चक्कर से हटाया। दोषों से मुक्ति दिलाकर साहस भरा।

जबरदस्त आचार्य :

आचार्यश्री ने अपने व्यापक ध्येय को लेकर सन्तों को ललकार कर

कहा कि श्रमण–रागद्वेष, लोभ, मोह संयोग–वियोग सुख–दुख और जय–पराजय से परे होते हैं। जो निर्ग्रन्थ मानव–जीवन के कल्याण का उपदेश न देकर जनता को गुमराह कर गलत मार्गदर्शन देते हैं, वाणी की चालाकी से, शब्दों के चमत्कारों से और नाना प्रपंच रचकर छलमय मंत्रणा करते हैं, वे सच्चे निर्ग्रन्थ कैसे हो सकते हैं ? जिनका मन और दिल पवित्र है और जो ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य के बल से काम–क्रोध, लोभ–मोह की सभी गाठें तोड़ देते हैं—वे ही सच्चे निर्ग्रन्थ हैं। आचार्यश्री इसी श्रेणी के श्रमणाचार्य थे।

थली प्रान्त के लोकजीवन में आचार्यश्री ने शान्ति और विवेक के साथ क्रान्ति का शंख फूंका और प्रेम का बिगुल बजाया। एक ओर आचार्यश्री देशप्रेम के भाव भरे व्याख्यान देते, दूसरी ओर तप–त्याग की बात कहते, एक ओर ज्ञानध्यान का प्रचार करते, दूसरी ओर भैरूं भवानी से मुक्ति दिलाते, एक ओर देशोद्धार की वार्ता चलाते और दूसरी ओर खादी का महत्त्व समझाते। एक श्रमणाचार्य व्रत और नियमों की मर्यादा में रहकर, देश के लिए, धर्म के लिए जितना कर सकता है, उन्होंने किया।

आचार्यश्री आत्मज्ञानी थे, प्रबुद्ध विचारक थे, क्रान्तिकारी संत थे, गहरे तत्त्वज्ञ और जीवनदर्शी थे, सन्त–समुदाय और लोक जीवन के दिव्य प्रकाश थे, देश के उज्ज्वल नक्षत्र थे, चिन्तन, मनन, त्याग, अनुभव और साधना के विराट व्यक्तित्व थे। उनकी वार्ता में राष्ट्रीयता, विचारों में क्रान्ति, पहनावे में खादी, व्यवहार में सौहार्द्र और व्याख्यानों में भारतीय–संस्कृति की झलक थी।

भारतीय संस्कृति में दो धाराएं बह रही थीं। एक धारा का प्रहरी सभी संस्कृतियों का घोल बना रहा था और दूसरी धारा का प्रतिष्ठापक मिली हुई सभ्यताओं, संस्कृतियों, धर्म व्यवस्थाओं, दर्शन दृष्टियों और नैतिक विचारों को व्यापक रूप दे रहा था।

दोनों धाराओं के दोनों प्रवाही अपने अपने पथ पर बढ़े जा रहे थे। दोनों का पथ पृथक् था। पर दोनों का उद्देश्य एक। अनेकत्व में समत्व। दोनों का मार्ग महान् संकटों से घिरा था, भयंकर विपत्तियों से पूर्ण था।

एक यूरोपीय कला, साहित्य, धर्म और दर्शन का अध्येता था और दूसरा भारतीय वाङ्मय और धर्म–दर्शनों का पारंगत मर्मज्ञ था। एक नेता था, दूसरा महर्षि था। दोनों ही प्रतापी और स्वनामधन्य थे। एक पं. जवाहरलाल नेहरू और दूसरे श्रीमद् जवाहराचार्य, दोनों ही सत्य प्रेम एकता शान्ति अहिंसा के लिए आये और दोनों ही जीवन में सर्वांगीण सफलता प्राप्त कर देश के कण–कण में समा गये।

एक देश के लिए दौड़-धूप करता, कभी सरदार पटेल से वार्तालाप, कभी बापू से मंत्रणा, कभी मौलाना आजाद से परामर्श । दूसरा लोक जीवन को जगाने के लिए पर्वतों, वन के समतल मैदानों और उबड़-खाबड़ भू-खण्डों को पैदल पार करता हुआ, नवकार मंत्र और मांगलिक सुनाता हुआ जीने की कला सिखाता ।

दोनों को कोई कामना, कोई स्वार्थ न था । दोनों को किसी धन की, मान की, पद की और प्रतिष्ठा की इच्छा न थी । दोनों का कार्य ही उनकी ख्याति का मेरुदण्ड था । दोनों घुमक्कड़, फक्कड़ और मस्त जीव थे ।

एक बाहरी साधनों से देश को आजाद कराना चाहता था और दूसरा ज्ञान, ध्यान, त्याग, तप और वैराग्यपूर्ण भाव तरंगों से आजादी का वायुमण्डल बना रहा था । एक टकटकी लगा कर देख रहा था और दूसरा आंखे बन्द कर लोकजीवन के हृदय में बैठकर उसके मर्म का पता पा रहा था । अपनी मौन साधना से भावात्मक एकता, देश प्रेम और विचारों के व्यापक मंगल भाव भर रहा था । अप्रत्यक्ष रूप से आजादी की भूमिका बना रहा था ।

तपःपूत महर्षि :

एक का सम्पूर्ण कार्य साधनों पर निर्भर था, दूसरे का कार्य भाव-तरंगों पर अवलम्बित था । अपनी साधना द्वारा इस तपःपूत महर्षि ने प्रच्छन्न रूप से देश के लिए जो कार्य किया है, इतिहास उसे कभी नहीं भूल सकता ।

इस तरह आचार्यश्री ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य का प्रकाश फैला रहे थे । इनके व्यापक और विशाल साहित्य से पूरी एक आलमारी भरी जा सकती है । 'जवाहर किरणावलियां' जैन धर्म, कथा साहित्य और अमूल्य विचार-कणों का महासागर है ।

दृश्य को देखकर द्रष्टा को भूल जाना बड़ी भारी भूल है । क्या आप बतलाएंगे कि आपकी उंगली की हीरे की अंगूठी अधिक मूल्यवान है या आप ?

पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.

आचार्यश्री के नारी सम्बन्धी विचार

● डॉ० शान्ता भानावत

नारी का माहात्म्य :

पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. राष्ट्र की दिव्य विभूति थे । अपने धर्म के प्रति उनके मन में जितनी श्रद्धा थी राष्ट्र के प्रति भी उतनी ही थी । वे सदैव राष्ट्रीय चारित्र उत्थान में बाधक तत्वों को उखाड़ फेंकने की प्रेरणा लोगों को देते रहते थे । पूज्यश्री ने अनुभव किया कि समाज में नारी की स्थिति बड़ी शोचनीय है । वह अशिक्षित है, फलस्वरूप अनेक कुरीतियों की शिकार है। इस कारण वह पुरुषवर्ग द्वारा पददलित समझी जाती है । " ढोर गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी ", पैर की जूती, " जा तन की झाई पड़ै अंधा होत भुजंग " कह कर कवियों ने नारी के प्रति जो हीन भावना व्यक्त की, आचार्यश्री उसे सहन नहीं कर सके। नारी–समाज के उत्थान हेतु उन्होंने बहुत बड़ी क्रांति की । उन्होंने पुरुषवर्ग से स्पष्ट कहा कि जब तक तुम नारी को अपने समान नहीं समझोगे, कभी उन्नति नहीं कर पाओगे । नारी माहात्म्य को प्रकट करने वाले उनके शब्दों को देखिये—स्त्रियां जगत् जननी हैं। इन्हीं की कूख से महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण आदि उत्पन्न हुए हैं। पुरुष समाज पर नारी का बड़ा भारी उपकार है । उस उपकार को भूल जाना, उनके प्रति अत्याचार करने में लज्जित न होना घोर कृतघ्नता है । स्त्री पुरुष का आधा अंग है । क्या यह संभव है कि किसी का आधा अंग वलिष्ठ और आधा अंग निर्बल हो ? जिसका आधा अंग निर्बल होगा, उसका पूरा अंग निर्बल होगा । अगर पहले महिला–समूह की स्थिति सुधारने का प्रयत्न नहीं किया तो आप पुरुष समाज की उन्नति के लिये कितने ही प्रयत्न करें, असफल रहेंगे ।

नारी–शिक्षा की आवश्यकता :

वर्तमान में अशिक्षा के कारण ही नारी पर्दा प्रथा, बालविवाह, अनमेल

विवाह, दहेज-प्रथा जैसी कुरीतियों की शिकार बनी हुई हैं । स्त्री जाति को इन कुरीतियों और हीन भावनाओं से मुक्त कराने के लिये आचार्यश्री ने स्त्री-शिक्षा को भी उतना ही आवश्यक माना जितना पुरुष शिक्षा को । बहुत से लोग स्त्री-शिक्षा का विरोध करते हैं और कहते हैं कि स्त्रियों को पढ़ा-लिखा कर क्या करना, उनसे नौकरी थोड़े ही करवानी है ? ऐसे स्त्री-शिक्षा विरोधी लोगों से आचार्यश्री ने स्पष्ट कहा—कन्या-शिक्षा का विरोध करने वाले उसके सबसे बड़े शत्रु हैं । समाज रूपी वृक्ष को जीवित और सदैव हरा-भरा बनाये रखने के लिये बालिकाओं की शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है ।

गृह-कार्य : सर्वोत्तम व्यायाम :

आचार्यश्री ने बालिकाओं के पुस्तकीय ज्ञान के अतिरिक्त उनकी शारीरिक स्वस्थता के ज्ञान की ओर भी उनका ध्यान आकर्षित किया । उनका कथन था कि निर्बल और सदैव बीमार रहने वाली महिलाएं हाथ से काम नहीं करती । पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से वे गृहकार्य में लज्जा का अनुभव करती हैं । आचार्यश्री ने ऐसी नारियों को उद्बोधन देते हुए कहा कि— भारतीय महिलाएं विदेशी महिलाओं का अंधानुकरण नहीं करें । वहां नारियों के लिये व्यायाम, खेल-कूद आदि की सुव्यवस्था है । पर भारत में ऐसी व्यवस्था नहीं है । इसलिये भारतीय नारी के लिये सर्वोत्तम उपयुक्त व्यायाम गृहकार्य है । चक्की चलाना अच्छा व्यायाम है । इससे छाती, हृदय आदि मजबूत होते हैं । उनका कहना था कि जिस देश की स्त्रियां कमजोर व निर्बल होंगी, उनसे गुणवान और शक्तिमान संतान की आशा कैसे रखी जा सकती है ?

नारी बोझ नहीं, शक्ति बनें :

स्त्री-शिक्षा का जब हम समर्थन करते हैं तो हमारे मन और मस्तिष्क में एक प्रश्न उठता है—नारी-शिक्षा कैसी हो ? क्या वे भी पुरुषों की भांति ही पढ़-लिख कर अपना कार्यक्षेत्र घर से बाहर बनायें ? आचार्यश्री का कहना था—शिक्षा का अर्थ यह नहीं कि आप अपनी बहू-बेटियों को यूरोपियन लेडी बनायें और न यही अर्थ है कि उन्हें घूंघट में लपेटे रखें । मैं स्त्रियों की ऐसी शिक्षा का समर्थन करता हूं जैसी सीता, द्रौपदी, ब्राह्मी सुन्दरी को मिली थी, जिसकी बदौलत वे प्रातःस्मरणीया बन गईं । नारियों को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिये जिसके कारण उन्हें अपने कर्त्तव्य का, अपने उत्तरदायित्व का, अपनी शक्ति और महत्ता का बोध हो सके जिसमें वह अबला न रहे—प्रबला बने । पुरुष पर बोझ न रहें, शक्ति बनें । वे कलहकारिणी न रहें, कल्याणी बनें ।

आचार्यश्री वैसे प्राकृतिक दृष्टि से तो नारी का कार्यक्षेत्र घर मानते थे पर उनकी यह भी मान्यता थी कि नारी में भी पुरुष की भांति आवश्यकता पड़ने पर जीविकोपार्जन करने की क्षमता होनी चाहिये क्योंकि आजीविका की सबसे बड़ी समस्या उन्हें सदैव दुःखी बनाये रखती है। उन्होंने नारी को पुरुषों से कभी हीन नहीं माना। वे कहा करते थे—वीरता में स्त्रियां पुरुषों से कम नहीं हैं। यद्यपि वे स्वभावतः कोमल होती हैं पर समय पड़ने पर वे मृत्यु के समान भयंकर हो सकती हैं। त्याग और बलिदान की भावना उनमें पुरुषों से अधिक ही होती है।

आधुनिक शिक्षा–पद्धति से नारी का मानसिक विकास तो हुआ है, आज शिक्षिता स्त्रियां घर से बाहर नौकरी करना तो चाहती हैं पर आदर्श गृहिणी और सफल माता बनना नहीं चाहती। उनका कहना था कि केवल पुस्तकीय शिक्षा भारतीय नारी के लिये पूर्ण नहीं है। भारत की उन्नति केवल चारित्र बल से ही सम्भव है। चारित्रिक निष्ठा से ही नारी अपनी संतान को गुणवान, धर्मवान और चारित्रवान बना सकेगी।

बालविवाह : सब रोगों की जड़ :

जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक संस्कार होते हैं। उनमें विवाह–संस्कार का अपना एक विशेष महत्त्व है, क्योंकि इसके बाद जीवन में एक नया परिवर्तन आ जाता है। इसमें पति–पत्नी मिल कर एक नवीन मार्ग की ओर अग्रसर होते हैं। इस अवस्था में उनके ऊपर अनेक उत्तरदायित्व आते हैं। इन उत्तरदायित्वों की अनुभूति बड़ी उम्र में ही होती है। हमारे समाज में बाल–विवाह सी जो परम्परा चल पड़ी थी, उसका आचार्यश्री ने डट कर विरोध किया। वे कहा करते थे - बाल–विवाह का सभी धर्म–ग्रंथों में निषेध किया गया है।

हमारे भारत में गर्भावस्था में ही बालक–बालिका के सगाई–संबन्ध तय हो जाने और एक वर्ष से कम उम्र के बालक–बालिका के विवाह हुए सुने जाते हैं। जो माता–पिता अपने बालक–बालिका का बाल–विवाह करते थे उनसे आचार्यश्री स्पष्ट कहते थे—कि तुम अपना कर्त्तव्य भुला कर अपने बच्चों के प्रति अन्याय कर रहे हो। अपने क्षणिक सुख के लिये अबोध बालक–बालिकाओं को भोग की धधकती ज्वाला में भस्म होने को छोड़ रहे हो। बाल–विवाह का दुष्परिणाम बताते हुए उन्होंने कहा— बाल–विवाह और समय से पूर्व दाम्पत्य सहवास से शारीरिक विकास रुक जाता है। आयुर्बल भी कम हो जाता है। सदैव उन्हें रोग–शोक घेरे रहते हैं। असमय में ही दांत गिर

जाते हैं, वाल पकने लगते हैं, नेत्र ज्योति क्षीण हो जाती है। थोड़े ही समय में पुरुष नपुंसक और स्त्री-स्त्रीत्व से रहित हो जाती है। इस प्रकार पति-पत्नी का जीवन दुःखमय हो जाता है।

आचार्यश्री ने समाज में बढ़ती हुई विधवाओं की संख्या का कारण भी वाल-विवाह ही माना है। उन्होंने कहा-समाज में चार-चार छह-छह और आठ-आठ वर्ष की विधवाएं दिखाई देना वाल-विवाह का ही कटु फल है। जिस पति से अवोध वालिका ने कोई सुख नही पाया है, हृदय में जिसकी स्मृति ही नहीं है, उस पति के नाम पर एक वालिका से वैधव्य पालन कराने का कारण वाल-विवाह ही है। उन्होंने स्पष्ट कहा— छोटे-छोटे बच्चों को गृहस्थ रूपी गाड़ी में जोत कर उन पर संसार का वोझ लादने वालों को हम निर्दय ही कहेंगे।

वृद्ध-विवाह और दहेजप्रथा, समाज के लिए कलंक :

वाल-विवाह की भांति वृद्ध-विवाह और दहेजप्रथा भी समाज पर कलंक हैं। आचार्यश्री ने अपने व्याख्यानों में इन कुप्रथाओं का घोर विरोध किया। वे कहा करते थे—वाल-विवाह, अनमेल-विवाह और विवाह की खर्चीली पद्धति समाज में अशांति उत्पन्न करती है, लोगों को दुराचार की ओर प्रवृत्त करती है। आचार्यश्री समाजहित पर अपना चिन्तन देते तो लोग उनका विरोध करते और कहते साधुओं को सांसारिक वातों से क्या मतलव ? वे यही उत्तर देते कि यद्यपि इन सांसारिक वातों से साधु लोग परे हैं लेकिन साधुओं का धार्मिक-जीवन नीतिपूर्ण संसार पर ही अवलंवित है।

आदर्श दाम्पत्य जीवन :

आदर्श दाम्पत्य जीवन हिन्दू समाज में सदैव अनुकरणीय रहा है। जिनके दाम्पत्य सम्बन्ध पवित्र होते है वे ही सच्चे—पति-पत्नी हैं। आचार्यश्री ने दोनों की पवित्रता को समान महत्त्व देते हुए कहा है—जो पुरुष परधन और परस्त्री से सदैव बचता है उसका कोई कुछ नहीं विगाड़ सकता। स्त्रियों के लिये पतिव्रत धर्म है तो पुरुषों के लिये पत्नीव्रत धर्म।

आचार्यश्री ने नारी की फैशनपरस्ती, हाथ से काम न करने तथा मनोरंजन के नाम पर अश्लील उपन्यास और चित्रपट देखने की प्रवृत्ति की कटु आलोचना की और जगह-जगह चेतावनी दी कि नारी इन दुष्प्रवृत्तियों से वचे।

एक माता सौ शिक्षकों के वरावर :

माता के रूप में नारी सदैव वंदनीया और पूजनीया रही है। महावीर,

गांधी, वाशिंगटन आदि महापुरुषों ने मातृत्व शक्ति को बड़ा महत्त्व दिया है। माता ही अपने बच्चों को आचरणनिष्ठ और चारित्रवान बना सकती है। एक माता सौ शिक्षकों का काम देती है। इसलिये आचार्यश्री ने माता की शिक्षा और सुसंस्कारों पर बल देते हुए कहा—संतान में सुसंस्कारों के सिंचन के लिये माता को अपना जीवन संस्कारमय अवश्य बनाना चाहिये। प्रत्येक मां को यह न भूल जाना चाहिये कि उसका पुत्र भविष्य का भाग्यविधाता है। मातृ-प्रेम संसार की सर्वोत्तम विभूति है, संसार का अमृत है। जो लोग पत्नी के वशीभूत हो माता के प्रति दुर्व्यवहार करते हैं, वे निम्न दर्जे की कृतघ्नता सूचित करते हैं।

परिवार-नियोजन की समस्या आज भारत की राष्ट्रीय समस्या है। देश में बढ़ती हुई जन-संख्या को रोकने के लिये अनेक उपाय किये जा रहे हैं। आचार्यश्री ने इस समस्या के समाधान के लिये कहा—सन्तति-नियमन के लिये ब्रह्मचर्य अमोघ उपाय है।

पर्दा : नारी के लिए अभिशाप :

पर्दा नारी जीवन के लिये अभिशाप है। अवगुण्ठनवती नारियां आवरण में रह कर अपना स्वास्थ्य तो चौपट कर ही देती हैं साथ ही हीन भावनाओं की शिकार भी हो जाती हैं। जिस समाज की नारी पर्दे में रहेगी वह समाज कभी उन्नति नहीं कर सकता। इसलिये आचार्यश्री ने कहा—पर्दे का हटना केवल अकेली स्त्रियों की गुलामी दूर करने के लिये ही आवश्यक नहीं, वरन् समाज और राष्ट्र की उन्नति के लिये भी अत्यन्त आवश्यक है।

शुद्ध सादगीमय जीवन :

आचार्यश्री जवाहरलाल जी म. सा. नारी के शुद्ध सादगीमय जीवन के समर्थक थे। वे कहते थे— त्याग, संयम और सादगी में जो सुन्दरता है, पवित्रता है, सात्विकता है वह भोगों में कहां ? वे अपने प्रवचनों में प्रायः कहा करते थे—बहिनें गहनों का मोह त्याग दें और सादगी के साथ रहें। असली सौन्दर्य आत्मा की वस्तु है। आत्मिक सौन्दर्य की सुनहरी किरणें जो बाहर प्रस्फुटित होती हैं, उन्हीं से शरीर की सुन्दरता बढ़ती है।

नारी का शृंगार :

नारी को कैसा शृंगार करना चाहिये ? इस ओर लक्ष्य करके आचार्यश्री ने कहा— बहिनो, धैर्य रूपी महावर लगाओ और लगाओ ललाट पर यश का तिलक। परोपकार की मिस्सी लगाओ, ज्ञान-रूपी सुगन्धित द्रव्य

का प्रयोग करो, शुभ विचारों की फूलमाला धारण करो । इस प्रकार का सिंगार करके सम, दम, संतोष के आभूषण को धारण करो । इसी प्रकार उन्होंने कहा—मुख में पान-वीड़ा दबा लेने से स्त्री की प्रतिष्ठा नहीं वढ़ती । प्रतिष्ठा वढ़ाने के लिये स्त्री को विनय सीखना चाहिये ।

आचार्यश्री ने नारी को उसके कर्त्तव्याकर्त्तव्य की स्मृति भी दिलाई है । पानी छान कर पीना चाहिये, आटा हाथ से पीसा हुआ काम में लेना चाहिये, क्योंकि जो आटा मशीनों से पीसा जाता है, वह सत्त्व रहित हो जाता है। विना छना पानी स्त्रियों को काम में नहीं लेना चाहिये। इससे जीव हिंसा तो होती ही है, साथ ही अनेक प्रकार के रोग भी फैलते हैं । आचार्यश्री ने रात्रि-भोजन त्याग और मादक पदार्थों के सेवन से दूर रहने की भी प्रेरणा दी ।

आजकल स्त्रियों में वारीक वस्त्र पहनने की एक होड़ सी चल पड़ी है— नायलोन, चिनौन, शिफोन, जारजट आदि की वारीक साड़ियां पहनने में नारी अपना गौरव समझने लगी है । आचार्यश्री ने ऐसी नारियों को स्पष्ट कहा—वारीक कपडे निर्लज्जता का साक्षात प्रदर्शन है । कुलीन स्त्रियों को यह शोभा नहीं देता । इसलिये प्रत्येक स्त्री-पुरुष को मोटे कपड़े (खादी) पहनने चाहिये । मोटे-कपड़े मजदूरी करना सिखाते हैं और महीन वस्त्र मजदूरी करने से मना करते हैं । महीन वस्त्र पहनने वाली वहिन अपना वच्चा गोद में लेने में भी संकोच करती है, इस डर से कि कहीं धूल न लग जाये । इस प्रकार वारीक वस्त्र संतान-प्रेम भी छुड़ा देता है ।

दृष्टि की उज्ज्वलता :

आज के युग में परदोपदर्शन की प्रवृत्ति अधिक वढ़ गई है । आज नारियों में गृह-कलह, मानसिक तनाव, ईर्ष्या, द्वेप आदि कलुपित भावनाएं घर कर रही हैं। उसका कारण दूसरों के दोपों को देखना ही है । पारिवारिक जीवन को सुन्दर, सुखद वनाने के लिये आचार्यश्री सदैव फरमाया करते थे— आप अपनी दृष्टि ऐसी उज्ज्वल वनाइये कि आपको दूसरों के गुण दिखाई दें । अवगुणों की तरफ दृष्टि मत जाने दीजिये । हां ! अवगुण देखने हैं तो आप अपने ही देखो । अपने अवगुण देखने से उन्हें त्यागने की इच्छा होगी और आप सद्गुणी वन सकेंगे ।

नैतिक शिक्षा के अभाव में आज की नारी दिग्भ्रमित है, किंकर्त्तव्यविमूढ़ है । वह पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध से चूंधिया कर वहां के सांस्कृतिक

मूल्यों को ग्रहण कर रही है और भारत के उपयोगी परम्परागत आदर्शों को विस्मृत करती जा रही है। परिणाम यह हो रहा है कि घर का खान-पान विकृत हो रहा है। घर में बूढ़े माता-पिता की उपेक्षा हो रही है, बच्चों को सही मार्गदर्शन नहीं मिल रहा है। आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. के हृदय में महिला-समाज में सुधार और जागृति लाने की एक तड़फ थी। उन्होंने अपने व्याख्यानों में नारी-शिक्षा, विवाह और उसका आदर्श, दाम्पत्य, मातृत्व, ब्रह्मचर्य, पर्दा, आभूषण-प्रियता, नारी-जीवन के उच्च आदर्श जैसी बातों पर सुन्दर, सरस, रोचक और प्रवाहमयी भाषा में प्रकाश डाला। बीच-बीच में सती-साध्वी नारियों के जीवन के आदर्शों की विवेचना करने से आचार्यश्री की प्रेरणाएं और भी रोचक और प्रभावशाली बन गई हैं। आचार्यश्री ने सती राजमती, सती मदनरेखा, रुक्मिणी-विवाह, हरिश्चन्द्र-तारा, अंजना, चंदनबाला जैसे स्वतंत्र आख्यानों को लेकर भी नारियों को उनके कर्त्तव्य और आदर्शों की स्मृति दिलाई है। आचार्यश्री के इन ग्रन्थों के स्वाध्याय से महिला-समाज को आज भी नया दिशा-बोध प्राप्त होता है।

❀ ❀ ❀

बहिनो! शील का आभूषण तुम्हारी शोभा बढ़ाने के लिए काफी है। तुम्हें और आभूषणों का लालच नहीं होना चाहिए। आत्मा की आभा बढ़ाओ। मन को उज्ज्वल करो। हृदय को पवित्र भावनाओं से अलंकृत करो। इस मांसपिंड (शरीर) की सजावट में क्या पड़ा है? शरीर का सिंगार आत्मा को कलंकित करता है। तुम्हारी सच्ची महत्ता और पूजा शील से होगी।

(आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.)

बहुआयामी व्यक्तित्व

● श्री प्रतापचन्द जैन

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. के दर्शनों का सौभाग्य तो मुझे कभी मिला नहीं परन्तु उनके विषय में पढ़ा अवश्य है । 'समणसुत्त' की गाथा ३३७ के अनुसार साधु वह है जो सिंह के समान निर्भीक गर्जना करे, वृषभ के समान भद्र भी हो । हाथी के समान स्वाभिमानी होते हुए मृग के समान सरल भी हो। सागर के समान गम्भीरता हो तो चन्द्रमा के समान शीतलता भी हो। श्री जवाहरलाल जी महाराज ऐसे ही साधु थे। थे तो वे स्थानकवासी आचार्य श्री हुकमीचन्दजी महाराज की परम्परा के, परन्तु थे बड़े ही उदार–मना और ब्राड माइण्डेड । उनका प्रचार क्षेत्र स्थानकवासी धर्म की सीमा में ही बन्धा न रह कर, व्यापक था। यहां तक कि राष्ट्रीयता से भी ओत-प्रोत थे।

राष्ट्रीयता तक कार्य क्षेत्र होने के कारण वे लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, विनोवा भावे, सरदार पटेल और जमनालाल जी बजाज सरीखे अनेक चोटी के राष्ट्रीय नेताओं के निकट सम्पर्क में आये। वे साधु की मर्यादाओं का पालन करते हुए निर्भीकतापूर्वक अस्पृश्यता निवारण, ग्रामोद्योग, स्वदेशी और खादी तथा मद्यनिषेध का कार्य करते रहे । कहते हैं कि उनकी इन गतिविधियों के कारण सरकारी गुप्तचर उनके पीछे लगे रहते थे और उनकी गिरफ्तारी की शंका बनी रहती थी, परन्तु उन्होंने कभी भय नहीं माना । परतन्त्रता उनकी दृष्टि में पाप और गुलामी स्वतन्त्र–धर्म साधना में बाधक । ऐसे निर्भीक और कर्मनिष्ठ थे वे ।

आपका कथन था कि जैन साधु की चर्या आसान नहीं हैं बड़ी कठिन है । उन्हें अपरिग्रही रह कर बहुत सी मर्यादाओं का पालन करना पड़ता है । समिति और गुप्तियों को पालना पड़ता है । वे पंच महाव्रतों के धारी होते हैं । लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी ने भी संयम, तप और त्याग

की दृष्टि से जैन साधुओं को भारतीय समाज में सर्वश्रेष्ठ माना है।

आचार्यश्री जी साधु-संख्या की बहुलता विपुलता को महत्त्व नहीं देते थे। उनके लिये तो साधु के त्याग और उसके चारित्र की उच्चता का ही महत्त्व था क्योंकि ऐसे साधु ही पद की गरिमा को, उसकी श्रेष्ठता को बनाये रखने में सक्षम हो सकते हैं। बहुसंख्यक होते हुए भी यदि वे शिथिलाचारी हो जायेंगे तो उससे पद का गौरव घटेगा, प्रतिष्ठा गिरेगी।

जैन धर्म को पालने वाले दो वर्ग हैं—एक श्रावक और दूसरा श्रमण (साधु)। उन्होंने अनुभव किया कि समाज सुधार के कार्य का गुरुतर भार साधु समाज को ही उठाना पड़ता है जो उचित नहीं, क्योंकि ऐसा करने से जिस संसार को वे छोड़ते हैं, उसी की ओर पुनः झुकाव होने लग सकता है। फलस्वरूप चारित्र पालन के प्रति उनमें शिथिलता आ जाने का खतरा है। वे चाहते थे कि श्रावकों को भी यह भार उठाना चाहिये; सारा भार साधुओं पर नहीं छोड़ना चाहिए। परन्तु दुनियादारी के कामों में बुरी तरह फंसे रहने के कारण वे इस कार्य को निष्पक्ष रह कर नहीं कर सकते। तब इस दृष्टि से कि समाज सुधार का काम भी चलता रहे और श्रमणों पर अधिक भार न पड़े, उन्होंने सोचा कि श्रमणों और श्रावकों के बीच अपरिग्रहियों और ब्रह्मचारियों के एक तीसरे वर्ग की स्थापना से यह जरूरी काम हो सकता है। यह वर्ग सामाजिक, शिक्षा प्रचार और साहित्य प्रकाशन के साथ साथ धर्म के काम भी कर सकेगा। ऐसा त्याग और सेवाभावी वर्ग न तो साधु की कठोर मर्यादाओं चर्याओं से बन्धा रहेगा और न वह घर गृहस्थी के झंझटों में ही फंसा रहेगा। जहां साधु नहीं पहुंच पाता, वहां वह आसानी से पहुंच भी सकेगा। विदेशों में पहुंच कर जैन धर्म के प्रचार व प्रसार द्वारा धर्म की प्रभावना भी कर सकेगा। भले ही इस वर्ग की स्थापना से साधुओं की संख्या में कुछ कमी आ जाय।

उन्होंने ज्ञान को सर्वाधिक महत्त्व दिया, चाहे वह कहां से भी प्राप्त हो। जब वे महाराष्ट्र में थे तब उन्होंने अपने कई शिष्यों को अजैन विद्वानों से संस्कृत का ज्ञान कराया था। उनका कहना था कि धर्म का ज्ञान धर्म से ही जाना जा सकता है बगैर सही ज्ञान के सही चारित्र भी सम्भव नहीं। उनका कहना था कि पूर्वजों से हमने जो कुछ सीखा है उसका लाभ हम वर्तमान के सन्दर्भ में लें। उसे समयानुकूल गति प्रदान करें। तभी हम समाज, देश और मानव का हित कर सकेंगे।

वे कहते थे कि जैनधर्म केवल निवृत्तिमार्गी नहीं है, वह तो प्रवृत्तिमार्गी भी है। वह अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति का उपदेश देता है। विषयों में प्रवृत्ति न हो, इसी पर उसने बल दिया है। वे कहते थे कि जैनधर्म में मुक्तिमार्ग के पथिक के लिये किसी खास वेश की अनिवार्यता, आवश्यकता नहीं है। भावों की शुद्धि और स्व पर का भेद विज्ञान ही सब कुछ है। यह वेश तो एक बाहरी मार्का मात्र है जो एक धोखा भी हो सकता है, अन्तरंग का वास्तविक द्योतक नहीं। अनासक्तिमुक्त गृहस्थ आसक्तियुक्त साधु से महान होता है। कहा भी है कि :—

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोही जैन मोहवान् ।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ।।

पुराणों में कथा आती है कि आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के सुपुत्र सम्राट भरत चक्रवर्ती को दीक्षा के लिये वस्त्र और आभूषण उतारते उतारते ही केवल ज्ञान प्राप्त हो गया था। एक और कथानक आता है कि एक मेंढ़क भग. महावीर की वन्दना के लिये जाते हुए राजा श्रेणिक के हाथी के पैर से कुचला जाकर स्वर्ग को गया। आचार्य अमितगति तो यहां तक कह गये है कि :—

शीलवन्तो गताः स्वर्गे नीच जाति भवाब् अपि ।
कुलीनाः नरकं प्राप्ता शील–संयम–नाशिनः ।।

समाज में चली आ रही कई गलत हानिकारक मान्यताओं को उन्होंने निर्भीकता और दृढ़ता के साथ ललकारा और समाज को सही दिशा दिखाई। खेती के उपकारी काम में जैनियों को हिंसा दिखाई देने लगी तो उन्होंने उनसे कहा कि 'यह कार्य तो संसार के प्राणियों को मांसाहार से बचाकर उनकी भूख को शान्त करने वाला है। खेती और गोपालन में महा हिंसा का दोष नहीं लगता। इसे विवेक के साथ करो, परोपकार की भावना से।'' यदि खेती के काम में महा हिंसा होती तो चतुर्थ काल के प्रारम्भ में भगवान ऋषभ मानव को कल्पतरुओं के ह्रास पर इसकी शिक्षा ही क्यों देते?

महाराष्ट्र में आचार्यश्री जी ने लोगों को बाल–वृद्ध विवाह, मृत्यु भोज और कन्या विक्रय जैसी कई रूढ़ प्रथाओं के विरुद्ध जोरदार आन्दोलन चलाने की प्रेरणा दी थी। उन्हें मिल के और रेशमी कपड़े न पहन कर खादी पहनने के लिये भी प्रेरित किया था। हजारों पर उनका प्रभाव पड़ा।

श्रावकों को वे बराबर उचित महत्व देते रहे। श्रावक को उनकी दृष्टि में साधु परम्परा का रक्षक और उस कठिन मार्ग पर चलते रहने में उनका सहायक मानते थे। अतः वे श्रावकों को सही मार्ग पर चलते रहने के लिए सन्मार्ग भी बताते रहते थे।

पूज्यश्री श्रीलाल जी महाराज ने आपको युवाचार्य बनाने की घोषणा तो तभी करदी थी जब कि वे महाराष्ट्र में विराजमान थे, परन्तु उन्हें इस पद पर प्रतिष्ठित करने का समारोह रतलाम में सन् १६१६ में हुआ था।

राष्ट्र हित, समाज सुधार, शिक्षा और साहित्य प्रकाशन का जो भी काम किया पूरी तरह अनासक्त रह कर किया। प्रतिष्ठा का मोह उन्हें कभी हुआ ही नहीं। ऐसे ज्ञानी साधु जगत् के दुःख-समूह को हरते हैं। उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि।

दान देकर ढिंढोरा पीटना उचित नहीं है। जो लोग अपने दान का ढिंढोरा पीटते हैं, वे दान के असली फल से वंचित हो जाते हैं। अतएव न तो दान की प्रसिद्धि चाहो और न दान देकर अभिमान करो।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज)

आचार्यश्री के शिक्षा संबंधी विचार

● श्री उदय नागौरी

विचारों के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण क्रान्ति का शंखनाद कर जैनाचार्य श्रीमद् जवाहरलाल जी म. सा. ने हमें नया दिशाबोध दिया। वैचारिक मंथन कर आपने सांप्रदायिक परिवेश से हट कर सार्वभौमिक सत्य एवं तथ्य प्रकट किए। पर्दा प्रथा, शिक्षा, राष्ट्रीयता एवं खादी विषयक आपके विचार अपने जमाने से भी आगे थे।

अक्षरज्ञान के साथ कर्तव्यज्ञान :

शिक्षा मानव को प्रकाश देती है और उसके मानसिक एवं शारीरिक तन्तुओं को विकसित करती है। जीवन-प्रांगण में वैविध्यपूर्ण समस्याओं का समाधान शिक्षा ही प्रस्तुत करती है। मानव शिक्षित होकर स्वयं का तो भला करता ही है परन्तु साथ ही समाज एवं राष्ट्र के लिए भी उपयोगी सिद्ध होता है। अतः कोरे किताबी ज्ञान पर कटाक्ष करते हुए श्री जवाहराचार्य ने बताया कि अक्षर ज्ञान के साथ कर्तव्यज्ञान की शिक्षा दी जाय, तभी शिक्षा का वास्तविक प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा।[1]

सुखी एवं सफल जीवन की कुंजी शिक्षा है। प्रत्येक बालक अपने साथ कुछ जन्मजात प्रतिभा एवं शक्ति लिए हुए जन्म लेता है। सच्ची शिक्षा वही है जो सुप्त शक्तियों का विकास कर उसे चरित्र-गठन एवं लोक-मंगल की भावना की ओर अभिमुख करे।

श्री जवाहराचार्य ने भी उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य केंद्रित शिक्षा पर जोर देते हुए बताया कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे हमें अपने कर्तव्य का, अपने उत्तरदायित्व का, अपनी शक्ति का एवं अपने स्वरूप का ज्ञान हो सके।[2]

---

१ जवाहर विचार सार, पृ. १६३,

२ जवाहर विचार सार, पृ १६४

श्रावकों को वे बराबर उचित महत्त्व देते रहे । श्रावक को उनकी दृष्टि में साधु परम्परा का रक्षक और उस कठिन मार्ग पर चलते रहने में उनका सहायक मानते थे । अतः वे श्रावकों को सही मार्ग पर चलते रहने के लिए सन्मार्ग भी बताते रहते थे ।

पूज्यश्री श्रीलाल जी महाराज ने आपको युवाचार्य बनाने की घोषणा तो तभी करदी थी जब कि वे महाराष्ट्र में विराजमान थे, परन्तु उन्हें इस पद पर प्रतिष्ठित करने का समारोह रतलाम में सन् १६१६ में हुआ था ।

राष्ट्र हित, समाज सुधार, शिक्षा और साहित्य प्रकाशन का जो भी काम किया पूरी तरह अनासक्त रह कर किया । प्रतिष्ठा का मोह उन्हें कभी हुआ ही नहीं। ऐसे ज्ञानी साधु जगत् के दुःख–समूह को हरते हैं । उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि ।

दान देकर ढिंढोरा पीटना उचित नहीं है । जो लोग अपने दान का ढिंढोरा पीटते हैं, वे दान के असली फल से वंचित हो जाते हैं । अतएव न तो दान की प्रसिद्धि चाहो और न दान देकर अभिमान करो ।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज)

आचार्यश्री के शिक्षा संबंधी विचार

● श्री उदय नागौरी

विचारों के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण क्रान्ति का शंखनाद कर जैनाचार्य श्रीमद् जवाहरलाल जी म. सा. ने हमें नया दिशाबोध दिया। वैचारिक मंथन कर आपने सांप्रदायिक परिवेश से हट कर सार्वभौमिक सत्य एवं तथ्य प्रकट किए। पर्दा प्रथा, शिक्षा, राष्ट्रीयता एवं खादी विषयक आपके विचार अपने जमाने से भी आगे थे।

अक्षरज्ञान के साथ कर्तव्यज्ञान :

शिक्षा मानव को प्रकाश देती है और उसके मानसिक एवं शारीरिक तन्तुओं को विकसित करती है। जीवन-प्रांगण में वैविध्यपूर्ण समस्याओं का समाधान शिक्षा ही प्रस्तुत करती है। मानव शिक्षित होकर स्वयं का तो भला करता ही है परन्तु साथ ही समाज एवं राष्ट्र के लिए भी उपयोगी सिद्ध होता है। अतः कोरे किताबी ज्ञान पर कटाक्ष करते हुए श्री जवाहराचार्य ने बताया कि अक्षर ज्ञान के साथ कर्तव्यज्ञान की शिक्षा दी जाय, तभी शिक्षा का वास्तविक प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा।[१]

सुखी एवं सफल जीवन की कुंजी शिक्षा है। प्रत्येक बालक अपने साथ कुछ जन्मजात प्रतिभा एवं शक्ति लिए हुए जन्म लेता है। सच्ची शिक्षा वही है जो सुप्त शक्तियों का विकास कर उसे चरित्र-गठन एवं लोक-मंगल की भावना की ओर अभिमुख करे।

श्री जवाहराचार्य ने भी उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य केंद्रित शिक्षा पर जोर देते हुए बताया कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे हमें अपने कर्तव्य का, अपने उत्तरदायित्व का, अपनी शक्ति का एवं अपने स्वरूप का ज्ञान हो सके।[२]

१–जवाहर विचार सार, पृ. १९३,

२—जवाहर विचार सार, पृ. १९४

शिक्षा एवं शिल्पकला

विद्या का सच्चा रूप है, प्रकाश की वह आभा, जो हमारे मानस के अज्ञानान्धकार को मिटाये एवं ज्ञान की ज्योति जगाए। सच्ची शिक्षा वही है जो हमें मन और इन्द्रियों पर संयम सिखाए, निर्मलता एवं स्वावलंबन की ओर प्रेरित करे तथा जीवननिर्वाह का सम्यक् साधन बताए।

आज हमें जो शिक्षा प्रदान की जा रही है, उसमें यही कमी है कि पढ़लिख कर भी व्यक्ति नौकरी की चाह में भटक रहा है। मुख्य कारण यह है कि बालक को रुच्यानुसार कला, वाणिज्य आदि की शिक्षा नहीं दी जाती। शिक्षा से हृदय एवं मस्तिष्क प्रकाशमान होने चाहिए पर इसके विपरीत वे दंभपूर्ण बनते जा रहे हैं। "सा विद्या या विमुक्तये" के आधार पर हमारे युगाचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के विचार देखिए—

"जीवन की परतंत्रता का प्रधान कारण
शिल्पकला की शिक्षा का अभाव है।" [3]

स्त्री शिक्षा :

स्त्री-शिक्षा के बारे में भी श्री जवाहराचार्य के विचार अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। आपने बताया कि जीवन के अर्द्धांग को अपूर्ण या अविकसित क्यों रखा जा रहा है ? ब्राह्मी एवं सुन्दरी ने तो हमें लिपि एवं गणित का ज्ञान कराया है, उनकी प्रतिनिधि महिलाओं को शिक्षा से वंचित रखना न्यायपूर्ण नहीं है। आपके मतानुसार स्त्री-शिक्षा का यह अर्थ नहीं कि हम अपनी बहू-बेटियों को यूरोपियन लेडी बनावें और नहीं उन्हें घूंघट में लपेटे रहें।

शिक्षा और विश्वबन्धुत्व :

निस्सन्देह शिक्षा हमें सीमित दायरे से ऊपर उठने की प्रेरणा देती है। हम अपने सम्पर्क में आने वाले हर व्यक्ति के प्रति स्नेह एवं भ्रातृत्व की भावना रख सकें, तभी हमारी शिक्षा सार्थक होगी। श्री जवाहराचार्य के विचार इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य हैं—

शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को समझे, उसे विकसित करे और धीरे-धीरे उसका दायरा विशाल से विशालतर होता चला जाय। [4] उन्होंने शिक्षा का व्यापक महत्त्व बताते हुए कहा, "जिस शिक्षा

३—जवाहर विचार सार, पृ. १५६
४—जवाहर विचार सार, पृ. १५४

की बदौलत गरीबों के प्रति स्नेह, सहानुभूति और करुणा का भाव जागृत होता है, जिससे देश का कल्याण होता है और विश्वबन्धुत्व की ज्योति जन-जन में जाग उठे, वही सच्ची शिक्षा है।" [५]

शिक्षक :

शिक्षक समाज का निर्माता होता है। यदि वह बालक के मानसिक, बौद्धिक, शारीरिक एवं सांस्कृतिक विकास के लिए प्रयत्नशील रहे तो शिक्षक समाज और राष्ट्र का स्वरूप ही परिवर्तित कर सकता है। शिक्षक की महत्ता पर जोर देते हुए पूज्य श्री जवाहराचार्य ने बताया—शरीर में मस्तिष्क का जो स्थान है, वही स्थान समाज में शिक्षक का है। शिक्षक विधाता है, निर्माता है। [६]

संक्षेप में कह सकते हैं कि क्रान्तद्रष्टा श्री जवाहराचार्य के विचार शिक्षा के बारे में अत्यन्त व्यावहारिक एवं अनुकरणीय थे। हमें उनका जीवन में प्रयोग करना चाहिए।

५–वही, पृ. १५४

६–जवाहर विचार सार, पृ. १५६

❀❀

श्रीमद् जवाहराचार्य का समाज–क्रान्ति दर्शन

● **श्री ओंकार पारीक**

महापुरुष समाज के पथ–प्रदर्शक होते हैं। जब–जब समाज में अनाचार व्याप्त होता है, लोक–संघ विघटनावस्था को प्राप्त होकर स्वैराचारी रूप धारण कर लेता है, लोग संकुचित–सम्प्रदायवाद के घेरे में, धर्म की सात्विक भावना का अपहरण करने से नहीं चूकते, समाज में कुरीतियां, अमानुषिक परिग्रही वृत्ति का बोल–बाला हो जाता है, तब–तब इस रत्नगर्भा धरा पर मानव–समाज को उद्‌बोधन देने, उसमें संचेतना करने तथा समग्र राष्ट्रीयता, मानव–एकता और सर्वधर्म समभाव का शंखनाद करने के लिए— श्रीमद् जवाहराचार्य जैसे क्रांतिचेता, युग–पंडित अवतरित होते हैं।

भारतीय समाज जैनधर्म का चिरऋणि रहेगा कि इसके साधक मुनियों, तपस्वियों एवं आचार्यों ने इस राष्ट्र की जनता को, अपनी संवर–निर्जरा साधना के बल पर न केवल जाग्रत, उद्‌बोधित और सचेत ही किया वल्कि इनके शुद्धतम जीवनाचारों और व्यवहारों से, पराधीन और स्वाधीन भारत का समाज युगान्तरकारी परिवर्तनों के प्रवल झंझावातों को अडिग रह कर सह सका है।

युग पर युग बीते, भारतीय समाज के समक्ष जैनधर्म की लोक पीठ से एक विराट व्यक्तित्व, जीवन की समस्त साधुता का प्रतीक बन— श्रीमद् जवाहराचार्य के रूप में प्रगटित हुआ। सोए हुए समाज को जगाने के लिए जो हजारों–हजार कोस गांव–गांव घूमा। कदाचार में लीन लोगों को, निस्पृह-भाव से, उस महासंत ने समाज का सात्विक सत्य और धर्म का सात्विक तत्त्व समझाया कि पूरे युग में हलचल मच गई। पराधीन था भारत तब। पल्लवग्राही पंडित नहीं समाज की लोक महिमा से मंडित उस महान् आत्मा ने जो धर्मोपदेश

दिए, जो ज्ञानधारा प्रवाहित की, उसने लाखों लोगों के जीवन बदल डाले। राजतंत्रों की काया का कल्प करने वाला, व्यसनग्रस्त लोगों को सदाचारी बनाने वाला, हिंसक कसाइयों की आत्मा को झकझोर देने वाला युगधर्म-प्रतिभा और पांडित्य के पौरुष धनी से जिस जमाने में लोकमान्य तिलक सरीखे महान् स्वातंत्र्य सेनानी और सरस्वती-पुत्र-पत्रकार प्रभावित हुए, उस दिव्यात्मा का समाज क्रांति दर्शन आज के महान् समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, सार्वभौम लोकतांत्रिक भारत गणराज की जनता का जीवन सम्बल सिद्ध होकर रहेगा।

● समाज-क्रांति दर्शन की वीस-सूत्री योजना :

युग प्रतिभाओं की दूरदर्शिता भी कमाल की है। आचार्य-प्रवर श्रीमद् जवाहराचार्य के समाज दर्शन पर, इन दिनों ग्रंथ प्रणयन हेतु जब से मैं स्वाध्याय सम्भूत होकर आचार्यश्री के व्याख्यान साहित्य का आलोड़न कर रहा हूं, मेरे सम्मुख "जीवन-धर्म" शीर्षक एक ग्रन्थ खुला पड़ा है। धर्म धुरी-समाज सत्योन्वेषक पंडित—प्रवीण आचार्य प्रवर के जोधपुर व्याख्यानों के एक अध्याय पर मेरी आंखें चकित-चकित हुई टिकी हैं। अध्याय का शीर्षक है—"परमात्म प्राप्ति के सरल साधन"। इस अध्याय को मैं भारतीय समाज का स्वाध्याय कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। कारण इसमें आचार्यश्री ने जिन वीस-सूत्रों का प्रणयन किया है उनको परिदृश्य में रख कर सुविज्ञ पाठक बहुमान्य-प्रचारित "वीस-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम" का परिप्रेक्ष्य जरा ध्यानपूर्वक चिन्तन क्षेत्र में ग्रहण करें तो एक गजब का साम्य, एक अभूतपूर्व युगानुधारणा का प्रतिविम्ब पाठक के मानस पर पड़ेगा।

आखिर आज हम जिस "वीस-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम" को राष्ट्रीय जीवनधारा का पुण्यमय योग मान रहे हैं, उसका दूरगामी लक्ष्य तो समाज-क्रान्ति और सांस्कृतिक संक्रांति की पृष्ठभूमि ही तो तैयार करना है।

श्रीमद् जवाहराचार्य "परमात्म प्राप्ति के सरल साधन" रूप सर्व जनहिताय जो युगान्तरकारी वीस-सूत्र प्रतिबोधित कर गए हैं, वे हैं—

(१) जुआ न खेलना।
(२) मांसाहार न करना।
(३) शराब न पीना।
(४) वैश्या गमन नहीं करना।
(५) परस्त्री-गमन नहीं करना।
(६) शिकार न खेलना।

(७) चोरी न करना ।
(८) वैवाहिक अवसरों पर अश्लील गाने न गाना ।
(९) मृत्यु पर दिखावटी रोना-धोना न मचाना ।
(१०) बालकों में डर न विठाना ।
(११) मृत्यु-भोज नहीं करना ।
(१२) अन्न की बर्बादी नहीं करना ।
(१३) दहेज नहीं लेना-देना । ठहराव नहीं करना ।
(१४) निर्धारित उम्र में ही विवाह करना ।
(१५) विवाह में नर्तकियां नहीं नचाना ।
(१६) अष्टमी व चतुर्दशी के क्रम से प्रतिमाह चार उपवास रखना ।
(१७) अस्पृश्यता त्यागना ।
(१८) आलसी न बनना ।
(१९) संयमित जीवन जीना ।
(२०) चर्बी वाले कपड़े न पहनना ।

समाज का तलपट—

हस्तामलकवत्— सुस्पष्ट ये बीस-सूत्र भारतीय-समाज के समक्ष आज भी चुनौती के रूप में प्रस्तुत हैं । क्या समाज इस सूत्र-पथ पर चल रहा है ? क्या हम अपने पूज्य गुरुदेव के प्रति सत्यतः निष्ठाधान हैं— उनके उपदेशों के पावन परिप्रेक्ष्य में ? वहुत दुःख का विषय है कि जनता में मांसाहार एवं मद्यपान की प्रवृत्ति वढ़ रही है । प्रत्यक्षतः या परोक्षतः सामाजिक विषय-लोलुपता दिनोंदिन वढ़ ही रही है । हां, सरकार की सजगता से वन्य जीवों व अन्य प्राणियों की शिकार-हिंसा पर जरूर अंकुश लगा है, पर गौ-जीव हत्याघर देश भर में लाइसेंस सुदा खुले ही हुए हैं । चोरी तो कला वन गई है । वैवाहिक अवसरों पर अश्लीलता का नग्न-प्रदर्शन, लोक-सांस्कृतिक परम्पराओं का गला घोंटता जा रहा है । सिनेमा, क्लव केवरे, रंगीन-रातों के जलसों से महानगरों का सात्विक जीवन भंग हो गया है । बच्चों को 'हाऊ' का भय आज भी जताया जाता है । मृत्यु-भोज भी चोरी-छिपे जारी हैं । अन्न की वर्बादी का यह हाल है कि यदि हम भारतीय इसे रोकें तो देश अन्न के मामले में पूर्णतया स्वावलम्वी हो जाय । दहेज-निषेध का नारा अभी जोरों पर है पर इस समाजासुर का आतंक दवा नहीं है । वाल-विवाह, वृद्ध-विवाह वहुविवाह अभी भी जारी हैं । विवाहों में अनाप-शनाप खर्च होता ही है । अन्न-ऊर्जा और पेयजल के विश्वव्यापी संकट की किसी को परवाह नहीं है । उपवास

एवं अन्य तपस्याओं का क्रम जैन घरानों में निःसन्देह विद्यमान है पर नई पीढ़ी.........। अस्पृश्यता गांवों-नगरों में छद्मतः अभी भी है। आलसीपन से छुटकारा पाने में हम लगे हैं। जीवन में असंयम का बोलबाला है। अर्धनग्न वस्त्र घर-घर में सुशोभित हैं।

क्षमा सहित निवेदन है कि श्रीमद् जवाहराचार्य प्रणीत उक्त बीस-सूत्री समाज-सुधार योजना सूत्रों का जो तलपट ऊपर प्रस्तुत किया गया है—उस कटु सत्य को हमें स्वीकारते हुए क्या यह विचार नहीं करना चाहिए कि हम फिर किस मुंह से अपने महापुरुषों की दुहाई देते हैं! केवल जैन-समाज को नहीं, पूरे भारतीय समाज को अब गहरे आत्मालोचन की युगीन आवश्यकता है।

समाज-सुधार की अवधारणा :

दान और समाज-क्रांति घर से शुरू होती है। स्वतंत्र भारत भाषण-शूरों से अब थर्रा उठा है, घबरा उठा है। अब तो हमें अपने पुण्यश्लोक महात्माओं, महामनाओं एवं वीतराग-तपस्वियों, संतों, साधकों एवं आचार्यों के उपदेशों, संदेशों, व्याख्यानों तथा उनकी व्याख्याओं को आज के सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक धार्मिक परिप्रेक्ष्य में अंगीकार करना चाहिए। लकीर के फकीर हम नहीं बने। मार्क्स और एंजील के पीछे अन्धविश्वासी हम क्यों बनें? हम अपने आचार्यों द्वारा घोषित, आर्षग्रन्थों में उल्लिखित और लोकानुलोक प्रचलित साम्यवाद पर गर्व क्यों न करें। समाज-सुधार की रट लगाने वालों की अच्छी खासी खबर लेते हुए युग-प्रवर्तक श्रीमद् जवाहराचार्य ने कहा है—

"लोग अपनी-अपनी जातियों में सुधार के लिए कानून बनाते हैं। जातीय सभाओं में प्रस्ताव पास करते हैं। लेकिन जब तक हृदय में हराम आराम से बैठा है तब तक तुम से क्या होना-जाना है? समाज सुधारक वर्षों से समाज-सुधार हेतु चिल्लाते हैं, मगर सुधार कहीं नजर नहीं आता, इसका कारण यही है कि लोगों के दिलों से हराम नहीं गया है। उसके निकले बिना व्यक्तियों का सुधार नहीं हो सकता और व्यक्तियों के सुधार के अभाव में समाज-सुधार का अर्थ ही क्या है?"

[देखिए : ग्रन्थ-'जीवनधर्म', अध्याय 'कहां से कहां', पृ० २८९]

श्रीमद् जवाहराचार्य ने आज से युगों पूर्व समाज में नारी के सम्मान-जनक स्थान के महत्त्व, बच्चों की सांस्कारिक शिक्षा, गृहस्थ धर्म पालन, सदाचार-

युक्त संयमी जीवन, साधु-सेवा, दीनहीनों के परित्राण, अस्पृश्यता त्याग, खादी धारण, व्याज, जुआ, शराव तथा फैशन त्याग के विविध समाज-सुधार विषयक प्रसंगों पर वहुत निर्भीकता से समाज के सत्य को उद्घाटित किया है तथा धन के पीछे दीवाने तथाकथित धर्माडम्बरियों की साहसपूर्वक लोक-भर्त्सना की है ।

एकता की आवाज अमर है :

युग-प्रधान श्री जवाहराचार्य की यह स्पष्ट मान्यता रही है कि समाज-सुधार के दायरे में साधु-साध्वियां सीधा हस्तक्षेप न करें । इस प्रकार के हस्तक्षेप से साधु-समाज के निरंकुश होने और साधुता के नियमों में शैथिल्य आ जाने का युगाभास उन्हें जब हुआ तब उन्होंने संघ-समाज एकता की दृढ़ता हेतु "वीर-संघ" की परिकल्पना प्रस्तुत की । उसे हम इस जैनाचार्य के जीवन की महान् समाज-क्रांति की आधारशिला कह सकते हैं ।

ठीक और ठोस बुनियाद की बात :

आचार्यश्री जैन एकता के प्रवल समर्थक थे । उनका मन्तव्य था—"आप किसी भी फिरके के हों, लेकिन हैं तो जैन ही । आप सब जैन हैं, इसलिए भाई-भाई हैं और आपका निकट का सम्बन्ध है, फिर भी आप लड़ रहे हैं । भाई-भाई का दल बना कर लड़ना क्या उचित है ? क्या आपको मालूम नहीं कि आपके ऐसे कामों से धर्म की निन्दा होती है, धर्म-प्रभावना के कार्य में रुकावट आती है" ? — "जीवनधर्म"-पृष्ठ २९ ।

एक भयंकर आंधी उठ रही है ।

युगप्रबोधक श्रीमद् जवाहराचार्य के निम्न समाजान्दोलन और क्रान्ति-चेता कथन को पाठक युग-चेतावनी के मर्म के साथ ग्रहण करें—

"मैं किसी पर सख्ती नही करता । मेरा कर्त्तव्य आपके कल्याण की बात वता देना है । आपको जिसमें सुख लगे वही कर सकते हो पर मैं आपको यह चेतावनी देना चाहता हूं कि अव पहले जैसा जमाना नहीं रहा । एक भयंकर आंधी उठ रही है । यह आंधी उठ कर सभी ढोंगों को अपने साथ उड़ा ले जायगी ।"

समय उपस्थित है । आंधी उठ चुकी है । युगप्रवर्तक आचार्यश्री का सत्य, समाज-क्रांति का नित्य-दर्शन है ।

★

आचार्यश्री के धर्म सम्बन्धी विचार

● श्री कन्हैयालाल लोढ़ा

श्रीमज्जैनाचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. युगप्रधान महापुरुष तो थे ही साथ ही, युग-प्रवर्तक आचार्य भी थे। आप महात्मा गांधी के समकालीन थे तथा धर्म के लौकिक रूप के विषय में आप में और गांधी जी के विचारों में काफी समानता थी। जिस प्रकार महात्मा गांधी ने अहिंसा-सत्य के सिद्धांत को व्यक्तिगत साधना के क्षेत्र से आगे बढ़ा कर पारिवारिक, सामाजिक व राष्ट्रीय आदि क्षेत्रों की समस्याओं के समाधान के रूप में प्रस्तुत किया, उसी प्रकार आचार्य श्री ने समूचे धर्म को व्यक्तिगत साधना के क्षेत्र से आगे वढ़ा कर ग्राम, नगर, राष्ट्र, संघ आदि समष्टि क्षेत्रों की समस्याओं के समाधान के रूप में प्रस्तुत किया। जिस प्रकार गांधी जी का प्रयास राजनीतिक क्षेत्र के इतिहास में अनूठी देन है इसी प्रकार आचार्य श्री का प्रयास धार्मिक क्षेत्र के इतिहास में अनूठी देन है।

पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. प्रखर-प्रवचनकार, महान् क्रांतिकारी युगपुरुष एवं वहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। आप सच्चे अर्थों में धर्माचार्य थे। धर्म ही आपका जीवन था। आपने अपनी अनुभूति के वल पर संसार के समस्त दुःखों, विपत्तियों, कठिनाइयों व समस्याओं को दूर करने का उपाय 'धर्म' के रूप में प्रस्तुत किया। आपने धर्म के संकीर्ण व संप्रदाय-परक अर्थ के स्थान पर धर्म का सार्वदेशिक, सार्वकालिक, सार्वजनीन एवं कल्याणकारी रूप निरूपित किया।

धर्म का स्वरूप निरूपण करते हुए आचार्य श्री फरमाते हैं—

'धर्म भी प्राकृतिक है। वस्तु का स्वभाव है। पयइ सहावो धम्मो' अर्थात् प्रकृति का स्वभाव धर्म है। ऐसी स्थिति में धर्म में भेदभाव को गुंजाइश कहां है ?'

"धर्म में किसी भी प्रकार के पक्षपात को, जातिगत भेद-भाव को,

ऊंच–नीच की कल्पना को, राजा-रंक अथवा गरीब–अमीर की भावना को तनिक भी स्थान नहीं है । धर्म की दृष्टि में सब समान हैं ।"

"जो धर्म मानव के प्रति तिरस्कार उत्पन्न करता है, मनुष्य को मनुष्य से जुदा करना सिखलाता है, वह धर्म नहीं है ।"

'धर्म सत्य है और सत्य सर्वत्र एक है, तो धर्म अनेक कैसे हो सकते हैं ? अतः धर्म एक है अनेक नहीं ।'

'जहां धर्म के नाम पर खून–खराबी हो, वहां यही समझना चाहिए कि धर्म के नाम पर ढोंग प्रचलित है ।'

"मानव जीवन यदि मकान के समान है तो धर्म उसकी नींव है।"

"धर्माचरण का फल आत्म-शुद्धि है । उसे भूल कर जो धन–धान्य आदि भोगोपभोग की सामग्री की प्राप्ति में धर्म की सफलता मानता है, वह मूढ़ है ।"

"धर्म परलोक में ही सुख देने वाला नहीं, इस लोक में भी कल्याणकारी है ।"

"धर्म मंगलकारक ही नहीं, साक्षात् मंगल है ।"

"धर्म के नाम पर किये जाने वाले भूतकालीन और वर्तमान कालीन अत्याचार और जुल्म धर्म-भ्रम या धर्मांधता के कारण ही हुए हैं और हो रहे हैं । धर्म तो सदा सर्वदा सर्वतोभद्र ही है । जहां धर्म है, वहां अन्याय, अत्याचार पास ही नहीं फटक सकते ।"

"पाप से पाप का मुकाबला करने पर पापों की परंपरा अक्षय हो जायेगी । पाप का क्षय धर्म से ही हो सकता है । धर्म से ही पाप का प्रतिकार करना हितप्रद है ।"

"लौकिक धर्म से शरीर की और विचार की शुद्धि होती है और लोकोत्तर धर्म से अन्तःकरण एवं आत्मा की ।"

"सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को ग्रहण न किया जाय तो भगवान् के साक्षात् मिल जाने पर भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता ।"

"निठल्लापन धर्म नहीं हो सकता । धर्म विवेक–पूर्वक कर्तव्य–पालन में है ।"

"अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म सदा मंगलमय है—कल्याणकारी है।',

आचार्य श्री ने तत्कालीन द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को दृष्टिगत कर स्थानांग सूत्र में आए दस धर्मों के आधार पर युगधर्म का प्रतिपादन किया। वे दस धर्म निम्नलिखित हैं—

(१) ग्राम धर्म (२) नगर धर्म (३) राष्ट्रधर्म (४) व्रत-धर्म (५) कुल धर्म (६) गण धर्म (७) संघ धर्म (८) सूत्र धर्म (९) चारित्र धर्म (१०) अस्तिकाय धर्म।

ग्रामधर्म की महत्ता दिखाते हुए आचार्यश्री फरमाते हैं—

"जहां ग्राम-धर्म जागृत होता है, वहां जीवन-धर्म की भूमिका तैयार होती है। बीज बोने से पहले खेत जोतना जैसे आवश्यक होता है, उसी प्रकार धर्म-बीज बोने के लिए मनुष्य को ग्रामधर्म की भूमिका तैयार करनी चाहिए क्योंकि ग्रामधर्म की भूमिका में से सभ्यता, नागरिकता और राष्ट्रीयता आदि धर्म के अंकुर फूटते हैं।"

नगर धर्म की महत्ता बतलाते हुए आचार्यश्री फरमाते हैं—

"शरीर और मस्तिष्क में जितना घना सम्बन्ध है, उतना ही संबन्ध ग्राम-धर्म और नगर-धर्म में आपस मे है। ग्राम्य जन अगर शरीर के स्थान पर हैं तो नागरिक जन मस्तिष्क की जगह हैं। जब शरीर स्वस्थ होता है, तभी मस्तिष्क स्वस्थ रह सकता है, यह बात कौन नहीं जानता?"

राष्ट्र-धर्म का वर्णन करते हुए आचार्यश्री फरमाते हैं—

"जैसे शरीर का प्रत्येक अंग दूसरे अंग का पोषक है, उसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्र विश्व-शरीर का पोषक होना चाहिए।"

"जहां विश्व-कल्याण के दृष्टिकोण से राष्ट्रीय नीति का निर्धारण होता है, वहीं शुद्ध राष्ट्रीयता है।"

"राष्ट्र की रक्षा में हमारी रक्षा है और राष्ट्र के विनाश में हमारा विनाश है।"

व्रत-धर्म का निरूपण करते हुए आचार्यश्री फरमाते हैं—

"सच्चा व्रतधारी, सधर्मी पुरुष प्राणों का नाश होने पर भी धर्म का नाश नहीं होने देता।"

"न्यायवृत्ति रखना और प्रामाणिक रहना, यह सुव्रतियों का मुद्रा-लेख है।"

कुल धर्म का वर्णन करते हुए आचार्यश्री फरमाते हैं—

"कुलीनता धर्म-साधन का एक अंग है। जब तक मनुष्य अपने कुल-धर्म का भली-भांति पालन न करे, तब तक वह श्रुत-चारित्र धर्म और आत्मिक धर्म का आचरण करने में समर्थ नहीं हो सकता।"

इसी प्रकार आचार्य प्रवर ने गण-धर्म, संघ-धर्म, सूत्र-धर्म, चारित्र-धर्म, अस्तिकाय-धर्म, समाज-धर्म, नारी-धर्म, जीवन-धर्म, मानव-धर्म और धर्म-नायकों पर बड़ा ही प्रेरणादायक, रोचक व युक्तियुक्त प्रकाश डाला है। परन्तु आपने युग-धर्म से कितने ही गुना अधिक महत्त्व शाश्वत-धर्म को दिया है। आप श्रीमुख से फरमाते हैं—

"युग धर्म ही सब कुछ नहीं है, वरन् शाश्वत धर्म भी है जो जीवन को भूत और भविष्य के साथ संकलित करता है। युग धर्म का महत्त्व काल की मर्यादा में बंधा है पर शाश्वत धर्म सभी प्रकार की सामयिक सीमाओं से मुक्त है।"

शाश्वत धर्म के रूप में आचार्यश्री ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, दान, शील, तप, भाव, संवर, संयम, इन्द्रिय विजय, समभाव, सम्यक्त्व, विरति, अप्रमाद, विषय-कषाय-विजय, क्षमा, विनय, सरलता, ऋजुता, अनासक्ति, उदारता, बंधुता आदि के रूप में पर्याप्त प्रकाश डाला है और वही आपके वाङ्मय का मुख्य अंग है। इस प्रकार आचार्यश्री ने धर्म के किसी भी अंग को अछूता नहीं छोड़ा है। आपने धर्म का सर्वांगीण निरूपण कर विश्व की महान् सेवा की है।

—●—

संसार में एक अवस्था के बाद दूसरी अवस्था होती ही रहती है। अगर उसमें राग–द्वेष का सम्मिश्रण हो गया तो वह सुख–दुख देने वाला होगा। अगर राग–द्वेष का सम्मिश्रण न होने दिया और प्रत्येक अवस्था में समभाव रखा गया तो कोई भी अवस्था दुःख नहीं पहुँचा सकती। दुःख से बचने का यही एक मात्र उपाय है।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.)

विशेष लेख :

कृषिकर्म और जैनधर्म

● पं. शोभाचन्द्र भारिल्ल, न्यायतीर्थ

[आचार्यश्री जवाहरलाल जी म. सा. राष्ट्रीय चारित्र और स्वदेशी भावना के प्रबल समर्थक थे। अल्पारंभ-महारंभ की तात्त्विक एवं समाज शास्त्रीय गूढ़ विवेचना करते हुए उन्होंने जीवन-निर्वाह के लिए कृपिकर्म को गृहस्थ के लिए नैतिक कर्तव्य और विधेय कर्म के रूप में प्रतिपादित किया था। 'जवाहर किरणावलियों' के सम्पादक प्रसिद्ध जैन विद्वान् पं. भारिल्ल जी ने हमारे विशेप आग्रह पर सम्बद्ध विपय पर महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं।

—सम्पादक]

जीवन और धर्म :

कृषिकर्म, जैनधर्म से विरुद्ध है या अविरुद्ध, इस बात का विचार करने से पूर्व यह देखना उचित होगा कि धर्म क्या है और जीवन में धर्म का स्थान क्या है ? क्या धर्म कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के लिए है या सर्व साधारण के हित के लिए ? इन प्रश्नों पर सरसरी निगाह डालने से कृषिकर्म का जैन धर्म के साथ जो संबंध है, उसे समझना सरल हो जायगा।

धर्म जीवन का अमृत है- जीवन का संस्कार है, अतएव वह जीव-मात्र के हित के लिए है। धर्म का प्रांगण इतना विशाल है कि उसमें किसी भी प्राणी के लिए स्थान की कमी नहीं है। यह बात दूसरी है कि कोई धर्म की छत्रछाया में न जावे और उससे अलग ही रहने में अपनी भलाई समझे, मगर धर्म किसी को अपनी शीतल छाया में आने से नहीं रोकता। धर्म की अमृतमयी गोद में बैठकर शांतिलाभ करने का अधिकार सब को समान है, चाहे कोई किसी भी जाति का, वर्ग का और वर्ण का हो और किसी भी प्रकार

जीवन निर्वाह करता हो । इतना ही नहीं, धर्म-साधना का जितना अधिकार मनुष्य को है, उतना ही तिर्यच को भी है । अलबत्ता धर्म साधना की मात्रा प्रत्येक प्राणी की अपनी-अपनी योग्यता पर निर्भर है ।

मध्यकाल में धर्म के संबंध में जो विविध भ्रांतियां उत्पन्न हो गई हैं, उन भ्रांतियों के कारण अनेकानेक रूढ़ियां जन्मी हैं। ऐसी रूढ़ियां अब तक हमारे यहां प्रचुर परिमाण में विद्यमान हैं। इन रूढ़ियों और भ्रमणाओं के काले बादलों में सूर्य की भांति चमकता हुआ धर्म का असली स्वरूप छिप गया है। आज समाज का अधिकांश भाग धर्म की वास्तविकता से अनभिज्ञ है ।

धर्म संबंधी भ्रांतियों में एक बहुत बड़ी भ्रांति यह भी है कि धर्म व्यतिगत उत्कर्ष का साधक है और सामाजिक व्यवस्थाओं के साथ उसका कोई लेन देन नहीं है । निस्सन्देह यह धारणा भ्रमपूर्ण ही है, क्योंकि व्यक्ति समाज से सर्वथा निरपेक्ष रहकर जीवित नहीं रह सकता । प्रत्येक व्यक्ति के जीवन पर सामाजिक स्थिति का गहरा प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। इसके अतिरिक्त अगर धर्म का संबंध सिर्फ व्यक्तिगत जीवन के साथ ही होता तो धर्मप्रवर्तक श्री महावीर स्वामी स्वयं ही संघ की स्थापना क्यों करते ? सचाई यह है कि संघ या समाज के बिना वैयक्तिक जीवन निभ नहीं सकता । अतएव धर्मशास्त्र में जहां आत्मधर्म (व्यक्तिगत धर्म) का निरूपण किया गया है, वहीं राष्ट्रधर्म, संघधर्म आदि की भी प्ररूपणा की गई है । आशय यह है कि धर्म का संबंध व्यक्ति और समाज दोनों के साथ है। अतएव किसी धार्मिक आचार का विचार करते समय हमें समाज तत्त्व को भूलना नहीं चाहिए ।

आत्मा अमूर्त्तिक है, अतीन्द्रिय है, यह सब सही है, लेकिन इससे भी अधिक प्रत्यक्ष सत्य यह है कि हमें आत्मा की उपलब्धि शरीर के साथ ही होती है । हम शरीर के बिना जीवित नहीं रह सकते । जो अशरीर हैं उन्हें धर्म की आवश्यकता नहीं है । जिनके लिए धर्म है वे सब सशरीर हैं । और शरीर ऐसी चीज नहीं है, जिसका स्वेच्छापूर्वक चाहे जब त्याग कर दिया जाय । शरीर धर्म साधना का भी प्रधान अंग है । शरीर का निर्वाह करना हमारे जीवन की एक ऐसी मूलभूत आवश्यकता है, जिसकी उपेक्षा कोई महान् से महान् आत्मनिष्ठ मुनि भी नहीं कर सकता ।

चाहे कोई कितना ही संयमशील क्यों न हो, शरीर-निर्वाह के लिए अन्न-वस्त्र की आवश्यकता उसे भी रहती है । वस्त्रों के अभाव में भी कदाचित् जीवित रहा जा सकता है, किन्तु अन्न के बिना नहीं । 'अन्नं वै प्राणाः' यह एक ठोस सत्य है । ऐसी स्थिति में अन्न उपार्जन करने के लिए किया

जाने वाला कर्म—कृषिकर्म क्या अधर्म है ? जिसके बिना प्राणों की स्थिति नहीं रह सकती, जिसके अभाव में जीवन निर्वाह असंभव है, जिस पर मनुष्य समाज का अस्तित्व अवलंबित है, उस कार्य को एकान्त अधर्म कहना कहां तक उचित है ? जो लोग संतोष के साथ अन्नोपार्जन करके जगत् की रक्षा कर रहे हैं, उन्हें अधार्मिक या पापी कहना क्या अति साहस और विचारहीनता का द्योतक नहीं है ?

पहले कहा जा चुका है कि धर्म जीवन का अमृत है, किन्तु जो धर्म जीवन का विरोधी है, जीवन का विष है, जीवन निर्वाह का निषेध करता है, वह वास्तविक धर्म नहीं हो सकता। मगर धर्म वास्तव में इतना अनुदार नहीं है। कृषि जैसे उपयोगी कार्य करने वालों को वह अपनी छत्रछाया से वंचित नहीं करता। ऐसा करने वाला धर्म स्वयं खतरे में पड़ जायगा। अन्न के अभाव में धर्म का आचरण करने वाले धर्मात्मा जीवित नहीं रह सकते और धर्मात्माओं के अभाव में धर्म टिक नहीं सकता। आचार्य समन्तभद्र ने यथार्थ ही कहा है—'न धर्मो धार्मिकैर्विना।'

एक ओर हम जैन धर्म की विशालता, व्यापकता और उदारता की प्रशंसा करते-करते नहीं थकते और यह दावा करते हैं कि वह प्राणीमात्र का त्राण करने वाला और इसीलिए विश्वधर्म बनने के योग्य है। दूसरी ओर उसे इतने संकीर्ण रूप में चित्रित करते हैं कि विश्व को जीवन देने वाले कार्य करने वालों को भी धर्म की परछाई से अलग कर देना चाहते हैं। हमारे ये परस्पर विरोधी दावे चल नहीं सकते। जिनेन्द्र भगवान् ने प्राणी मात्र के लिए धर्म का उपदेश दिया है। अतएव जिन कार्यों से दूसरों का अनिष्ट नहीं होता वरन रक्षा होती है, ऐसे उपयोगी कार्य करने वाले धर्म-बाह्य नहीं कहला सकते, जबकि वे धर्म का आराधन करने के इच्छुक हों।

खेती और हिंसा :

बहुत से लोगों की यह धारणा है कि खेती का काम हिंसाजनक होने के कारण त्याज्य है। खेती में असंख्य त्रस जीवों का और थावर जीवों का घात होता है। अतएव त्रस जीवों की हिंसा का त्यागी श्रावक खेती नहीं कर सकता। श्रावक को अपने जीवन निर्वाह के लिए अल्प-आरंभ वाली आजीविका करनी चाहिए, जिससे धर्म की साधना भी हो और जीवन-निर्वाह भी हो। ऐसी विचारधारा से प्रेरित होकर लोगों का ध्यान प्रायः सट्टे की ओर जाता है। सट्टे में न आरंभ है, न हिंसा है। न कुछ करना पड़ता है, न धरना पड़ता है। न लेन, न देन, फिर भी लाखों का लेन देन हो जाता

है। लोग सोचते हैं—कहां तो असीम हिंसा का कारण महारंभमय खेती और कहां निरारंभ सट्टा।

इस विचारधारा के कारण ही शायद बहुत से जैन गृहस्थ कृषिकार्य से विमुख होकर सट्टा करते हैं और उसी में संतोष मानते हैं।

इसमें तो संदेह ही नहीं कि कृषि करने में त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा होती है और अगर जैन धर्म सिर्फ साधुओं का ही धर्म होता तो यह भी निस्संकोच कहा जा सकता था कि कृषिकर्म, जैन धर्म से असंगत है। मगर ऐसी बात नहीं है। जैन धर्म जैसे साधुओं के लिए है वैसे ही श्रावकों–गृहस्थों के लिए भी है। धर्म की उपयोगिता नीचे स्तर (Standard) के जीवों को ऊंचे स्तर पर ले जाने में है। जो धर्म गृहस्थों के भी काम न आ सके वह धर्म ही कैसा? अविरत सम्यग् दृष्टि जो जैनाचार का तनिक भी पालन नहीं करता, सिर्फ जैन धर्म पर श्रद्धाभाव ही रखता है, वह भी जैन धर्मी ही कहलाता है। इस प्रकार जब गृहस्थ भी जैन धर्म का अनुयायी है तो प्रश्न उपस्थित होता है कि उसकी अहिंसा की मर्यादा क्या है? कृषिकर्म उस मर्यादा में है या उससे बाहर है?

शास्त्रों में हिंसा के मुख्य दो भेद बतलाए गए हैं—(१) संकल्पजा हिसा और (२) आरंभजा हिंसा। मारने की भावना से जानबूझ कर जो हिंसा की जाती है वह संकल्पजा हिंसा कहलाती है, जैसे शिकारी की हिंसा। जीवन निर्वाह, भवन निर्माण, पशुपालन आदि कार्यों में जो हिंसा होती है, जिसमें प्राणियों को मारने का संकल्प नहीं होता, वह आरंभजा हिंसा कहलाती है। आरंभजा हिंसा भी दो प्रकार की है—निरर्थक और सार्थक। जो हिंसा विना किसी प्रयोजन–व्यर्थ की जाती है वह निरर्थक आरंम्भजा हिंसा है और जो प्रयोजन विशेष से की जाती है, वह सार्थक आरंभजा हिंसा है। साधारण श्रावक सिर्फ संकल्पजा हिंसा और निरर्थक आरंभजा हिंसा का त्यागी होता है। वह सार्थक आरंभजा हिंसा का त्यागी नहीं होता। अगर वह इस हिंसा का भी त्याग कर बैठे तो फिर वह गृहस्थी का कोई भी काम नहीं कर सकता। इस स्थिति में साधु और श्रावक के अहिंसा व्रत में कोई अन्तर नहीं रह जायगा।

गृहस्थ धर्म का प्रतिपादन करने वाले उपासक दशांग सूत्र में आनन्द श्रावक के व्रतग्रहण में यह पाठ आया है—'थूलग पाणाइवायं पच्चक्खाइ–जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा।' अर्थात् दो करण और तीन योग से आनन्द स्थूल हिंसा का त्याग करता है।

स्थूल हिंसा किसे समझना चाहिए ? इस प्रश्न का स्पष्टीकरण हेमचन्द्राचार्य ने अपने योगशास्त्र में इस प्रकार किया है—

'स्थूल–मिथ्यादृष्टीनामपि हिंसात्वेन प्रसिद्धा या हिंसा या स्थूलहिंसा । स्थूलानां वा त्रसानां जीवानां हिंसा स्थूलहिंसा । स्थूलग्रहणमुपलक्षणं, तेन निरपराधसङ्कल्पपूर्वकहिंसानामपि ग्रहणम् ।'

—योगशास्त्र, द्वि. प्र. श्लोक ६८ (टीका)

अर्थात् जिस हिंसा को मिथ्यादृष्टि भी हिंसा समझते हैं वह स्थूल–हिंसा कहलाती है । अथवा स्थूल जीवों की अर्थात् त्रसजीवों की हिंसा स्थूल–हिंसा कहलाती है । यहां स्थूल का ग्रहण उपलक्षणमात्र है, अतएव निरपराध जीव की संकल्प–पूर्वक की जाने वाली हिंसा भी समझ लेनी चाहिए । इससे आगे आचार्य ने और भी स्पष्ट किया है—

पङ्गुकुष्ठिकुणित्वादि, दृष्ट्वा हिंसाफलं सुधीः ।
निरागस्त्रसजन्तूनां हिंसां सङ्कल्पतस्त्यजेत् ।।

अर्थात् हिंसा करने वाले अगले जन्म में लंगड़े कोढ़ी और कुबड़े आदि होते हैं, हिंसा का यह अनिष्ट फल देखकर बुद्धिमान् श्रावक को निरपराध त्रसजीवों की संकल्पी हिंसा का त्याग करना चाहिए ।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रावक के द्वारा होने वाली निम्नलिखित हिंसा से उसका अहिंसाणुव्रत खंडित नहीं होता—

(क) अपराधी त्रस जीवों की संकल्पी हिंसा से ।
(ख) निरपराध त्रस जीवों की आरंभजा हिंसा से ।
(ग) स्थावर जीवों की हिंसा से ।

अब हमें यह देखना है कि खेती करने से जो हिंसा होती है, वह उक्त तीन तरह की हिंसा के अन्तर्गत है या नहीं ? खेती में होने वाली हिंसा उक्त 'ख' और 'ग' विभाग के अन्तर्गत है । खेती करने वाले का उद्देश्य हिंसा करना नहीं, वरन खेती करना होता है । इसका प्रमाण यह है कि खेती करने वाले श्रावक को अगर एक हजार रुपये का प्रलोभन देकर कहा जाय कि–हजार रुपये ले लो और इस मकोड़े को मार डालो, तो वह ऐसा करने को तैयार न होगा । जो किसान श्रावक खेती करने में अनगिनती जीवों की हिंसा करके सौ–दो सौ रुपयों का धान्य पाता है, वह हजार रुपये लेकर भी एक मकोड़े को मारने के लिए तैयार नहीं होता । इसका कारण यह है कि मकोड़े को मारना संकल्पी हिंसा है और खेती की हिंसा आरंभी हिंसा है । असंख्य जीवों

की आरंभी हिंसा होने पर भी श्रावक का अहिंसाव्रत भंग नहीं होता, जबकि एक मकोड़े की संकल्पी हिंसा से भी व्रत का भंग हो जाता है। आरंभी हिंसा और संकल्पी हिंसा की तुलना करते हुए श्री आशाधर जी 'सागार धर्मामृत' नामक श्रावकाचार में कहते हैं –

आरम्भेऽपि सदा हिंसा सुधीः साङ्कल्पिकीं त्यजेत् ।
घ्नतोऽपि कर्षकादुच्चैः पापोऽघ्नन्नपि धीवरः ॥

—सागर० द्वि. अ.

अर्थात्–समझदार श्रावक आरंभ करने में भी संकल्पी हिंसा का त्याग करे, क्योंकि संकल्पी हिंसा अतिशय पापमय है। खेती करने के भाव से पृथ्वीकाय आदि की हिंसा करने वाले किसान की अपेक्षा, मछली आदि न मारने वाला किन्तु मारने का संकल्प करने वाला मच्छीमार अधिक पापी है।

वास्तव में संकल्पी हिंसा में परिणाम अत्यन्त उग्र और दुष्ट होता है, आरंभी हिंसा में नहीं होता। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि खेती करने से श्रावक का अहिंसाणुव्रत खंडित नहीं होता।

खेती और महारंभ :

दूसरा प्रश्न अल्पारंभ–महारंभ का है। कुछ लोगों की साधारण धारणा है कि खेती महारंभ का कार्य है, अतएव वह श्रावक के लिए हेय है। किन्तु हमें यह देखना है कि क्या खेती सचमुच महारंभ का कार्य है ?

आजकल जनता में अल्पारंभ–महारंभ के संबंध में अनेक भ्रम फैले हुए हैं। जैन धर्म के उद्भट विद्वान् स्वर्गीय आचार्यश्री जवाहरलाल जी महाराज ने इस विषय में बहुत विस्तृत और विचारपूर्ण व्याख्यान किया है। हम पाठकों से उनके इस संबंध के व्याख्यान पढ़ जाने का आग्रह करते है। उन्होंने सन् १९२७ में कहा था—

'मित्रो ! एक प्रश्न मैं तुम्हारे सामने रखता हूं। बताओ, खेती करने में ज्यादा पाप है या जुआ खेलने में ? ऊपर की दृष्टि से जुआ (सट्टा) अल्प पाप गिना जाता है। इसमें किसी की हिंसा नहीं होती। केवल इधर की थैली उधर उठाकर रखनी पड़ती है। पर खेती में ? एक हल चलाने में न जाने कितने जीवों की हिंसा होती है ? यह कहना भी अत्युक्ति न होगी कि खेती में छहों कायों की हिंसा होती है।

'मित्रो ! उथले विचार से ऐसा मालूम होता है सही पर अगर गहराई में जाकर विचार करेंगे तो आपको कुछ और ही प्रतीत होगा। आप इस

वात पर ध्यान दीजिए कि जगत् का कल्याण किसमें है ? पाप का मूल क्या है ? क्या संदेह करने की वात है कि खेती के विना जगत् सुखी नहीं रह सकता ? खेती से प्राणियों की रक्षा होती है । थोड़ी देर के लिए कल्पना कीजिए कि संसार के सव किसान कृषिकार्य छोड़कर जुआरी वन जाएं तो कैसी वीते ?

जिस कार्य से जगत् के प्राणियों की रक्षा होती है, पालन होता है, वह कार्य शुभ है या पाप का ? वह कार्य एकांत पाप का नहीं हो सकता ।'

अव आप जुए की तरफ देखिए । जुआ जगत् कल्याण में तनिक भी सहायक नहीं है । वल्कि जुआ खेलने वालों में झूठ, कपट, छलछिद्र, तृष्णा, आदि अनेक दुर्गुण पैदा हो जाते हैं । अधिक क्या कहें, संसार में जितने भी दुर्गुण हैं, वे सव जुए में विद्यमान हैं ।

जुआ और खेती के पाप की तुलना करते समय आप यह न भूल जाइये कि शास्त्रों में जुए को सात कुव्यसनों में गिना गया है, पर खेती करना कुव्यसनों के अन्तर्गत नहीं है । श्रावक को सात कुव्यसनों का त्याग करना आवश्यक है । अगर जुए की अपेक्षा खेती में अविक पाप होता तो कुव्यसनों की अपेक्षा खेती का पहले त्याग करना आवश्यक होता । परन्तु शास्त्र कहते हैं–आनन्द जैसे धुरंधर श्रावक ने श्रावक धर्म धारण करने के पश्चात् भी खेती करने का त्याग नहीं किया था ।'

जो लोग यह समझते है कि हमें विना विशेप आरंभ किये वाजार से ही धान्य मिल सकता है तो धान्योपार्जन करने के लिए आरंभ–समारंभ क्यों किया जाय ? भले ही खेती में महारंभ न हो, किन्तु जिस आरंभ से वचना संभव है उससे क्यों न वचना चाहिए ?

इस प्रश्न का समाधान करने के लिए आचार्य सोमदेव सूरि की यह सूक्ति ध्यान देने योग्य है —

क्रीतेष्वाहारेष्विव पण्यस्त्रीपु क आस्वादः ?

— नीतिवाक्यामृत, वार्त्तासमुद्देश ।

आचार्य ने यहां खरीदे हुए आहार और वेश्या की तुलना की है । यह तुलना वड़ी वोधप्रद है और वार्मिक भी है। विवाह करने में अनेक आरंभ समारंभ करने पड़ते हैं, सैकड़ों तरह के झंझटों में पड़ना पड़ता है, वाल वच्चों की परंपरा चलती है और उस परंपरा से पाप की परंपरा वढ़ती चलती है । स्त्री और वाल वच्चों के भरण–पोषण के लिए न जाने कितना आरंभ करना

पड़ता है। इस महारंभ से वचने के लिए वेश्यागमन करके ही काम वासना तृप्त क्यों न करली जाय ? थोड़े से पैसे खर्च किए और अनेकानेक पापों से वचे। कहां तो पापों की परम्परा और कहां वेश्या का अल्प पाप !

इस प्रकार ऊपरी दृष्टि से वेश्यागमन में अल्प पाप और विवाह करने में महापाप भले ही प्रतीत होता हो, लेकिन कोई भी विवेकशील पुरुष इस व्यवस्था का समर्थन नहीं कर सकता। धर्म शास्त्रों से तो इसका समर्थन हो ही नहीं सकता। तात्पर्य यह है कि अल्पारंभ और महारंभ की मीमांसा वाह्य दृष्टि से और तात्कालिक कार्य से नहीं की जानी चाहिए। संसार की व्यवस्था और समाज कल्याण की दृष्टि भी इसमें गर्भित है।

इसके अतिरिक्त थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय कि बाजार से धान्य लाकर खाना ही धर्मसंगत है और धान्य उपार्जन करना अधर्म है, तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि बाजार में धान्य आएगा कहां से ? अगर सभी मनुष्य इस धर्म को अंगीकार करलें और खेती करना छोड़ दें तो जगत् की क्या स्थिति होगी ? क्या धर्म के प्रचार का फल प्रलय होना चाहिए ? जिस धर्म को अंगीकार करने से जगत् में हाय–हाय मच जाय, मनुष्य भूखे तड़प–तड़प कर प्राण दे दें, वह धर्म क्या विश्वधर्म बनने के योग्य है ? अथवा वे लोग जो अपने धर्म का पालन करने के लिए दूसरों को बलात् अधर्म में प्रवृत्त करेंगे, क्या धर्मात्मा कहे जा सकेंगे ?

धर्म का उद्देश्य पारलौकिक शांति–सुख ही नहीं है बल्कि इहलौकिक शांति, सुख और सुव्यवस्था भी धर्म का लक्ष्य है। परलोक इस लोक पर अवलंबित है और इस लोक की सुख–शांति कृषिकर्म पर बहुत कुछ अवलंबित है। आचार्य सोमदेव सूरि कहते हैं—

'तस्य खलु संसारसुखं यस्य कृषिधेनवः शाकवाटः सद्मन्युदपानं च।
टीका-तस्य गृहस्थस्य खलु निश्चयेन सुखं भवति यस्य कि ? यस्य गृहे सदैव कृषिकर्म क्रियते तथा धेनवो महिष्यो भवन्ति। —नीतिवाक्यामृत, पृ० ९३।

अर्थात् उस गृहस्थ को निश्चय ही सुख की प्राप्ति होती है, जिसके घर में सदैव खेती की जाती है तथा गायें और भैंसे होती हैं।

आचार्य सोमदेव जी यद्यपि स्पष्ट रूप से खेती और पशुपालन करने का विधान नहीं करते, ऐसा करना साधु के आचार के विरुद्ध है, तथापि उनका आशय स्पष्ट है। वे परोक्षरूप से कृषि और पशुपालन का गृहस्थ के लिए समर्थन करते हैं। ऐसी दशा में यह कैसे कहा जा सकता है कि खेती करना श्रावक धर्म के विरुद्ध है ? अतएव आरंभ–समारंभ की दृष्टि से कृषि का श्रावक के लिए निषेध करना उचित नहीं है।

कृषि कार्य में आरंभ नहीं है, यह कहना यहां अभीष्ट नहीं है। कृषि में ही क्यों, आरंभ तो छोटे से छोटे कार्य में भी होता है। यहां तक कि घर आये हुए को आसन देने में भी आरंभ होता ही है कहने का आशय यह है कि कृषि का आरंभ त्यागना श्रावक धर्म की मर्यादा में नहीं है। श्रावक की योग्यतानुसार उसके आचार की अनेक कोटियां हैं। उसका आचार अनेक प्रकार का होता है। कोई श्रावक साधारण त्यागी होता है, कोई प्रतिमाधारी होता है। जैन शास्त्रों में बतलाया गया है कि प्रत्येक प्रतिमाधारी श्रावक भी कृषि के आरंभ का त्यागी नहीं होता। प्रतिमाओं का सेवन क्रमपूर्वक ही होता है और आरंभ त्याग प्रतिमा (पडिमा) में श्रावक खेती का त्याग करता है। दिगम्बर सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध आचार्य श्री समन्तभद्र कहते हैं—

सेवाकृपिवाणिज्यप्रमुखादारम्भतो व्युपरमंति।
प्राणातिपातहेतोर्योऽसावारम्मविनिवृत्तः ॥

—रत्नकरण्डक श्रावकाचार, अ. ३।

अर्थात्—सेवा, कृपि और व्यापार आदि आरंभ से जो हिंसा के हेतु हैं, जो श्रावक निवृत्त होता है वह आरंभ त्याग प्रतिमा का पालक कहलाता है।

श्वेताम्बर समुदाय के आचार्य श्री सिद्धसेन ने भी प्रवचन सारोद्धार की टीका में लिखा है—

एषा पुनर्नवमी–प्रेष्यारम्भवर्जन प्रतिमा भवति, यस्यां नवमासान् यावत् पुत्र–भ्रातृप्रभृतिपु न्यस्तसमस्तकुटुम्बादिकार्यभारतया वनधान्यादिपरिग्रहेष्वल्पाभिष्व-ङ्गतया च कर्मकरादिभिरपि आस्तां स्वयं, आरम्भान् सपापव्यापारान् महतः कृप्या-दीनिति भावः।

—प्रवचन सारोद्धार।

आशय यह है कि प्रतिमाधारी श्रावक आरंभ त्याग नामक आठवीं प्रतिमा में स्वयं आरंभ करने का त्याग कर देता है। तत्पश्चात् प्रेष्यारंभ त्याग नामक नौवीं प्रतिमा धारण करता है। इस प्रतिमा में वह नौकर–चाकरों से भी खेती का काम नहीं कराता, क्योंकि वह अपने भाई या पुत्र आदि पर कुटु-म्ब का भार छोड़ देता है और परिग्रह में उसकी आसक्ति कम होती है। यह प्रतिमा नौ मास की होती है।

आरंभ के अनेक काम हैं, फिर भी यह बात ध्यान देने योग्य है कि स्वामी समन्तभद्र और श्री सिद्धसेन सूरि दोनों ने ही, बल्कि सागार धर्मामृत आदि अन्य ग्रन्थों के कर्त्ताओं ने भी आरंभ त्याग प्रतिमा का स्वरूप बतलाते हुए कृपि का उल्लेख किया है। समन्त भद्राचार्य सेवा और वाणिज्य के साथ

कृषि का उल्लेख करते हैं और सिद्धसेन सूरि सिर्फ कृषि का उल्लेख करके उसमें 'आदि' पद जोड़ देते हैं। आशाधर जी भी कृषि का उल्लेख अवश्य करते हैं और उसमें 'आदि' पद सिद्धसेन जी की भांति ही लगा देते हैं। आचार्य ने अपने-अपने समय में आरंभ त्याग प्रतिमा का स्वरूप बतलाते समय कृषि का खास तौर से उल्लेख किया होगा, यह बतलाने के लिए कि कृषि का त्याग आठवीं प्रतिमा में होता है। कुछ भी हो, यह स्पष्ट है कि इस विषय में दिगम्बर-श्वेताम्बर संप्रदायों के आचार्य एकमत हैं कि कृषि का त्याग साधारण श्रावक के लिए जरूरी नहीं है। दिगम्बर सम्प्रदाय के आठवें प्रतिमाधारी श्रावक प्रायः गृहवास का त्याग कर देते हैं और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुसार आजकल प्रतिमाओं का धारण दुःशक्य माना जा सकता है। इससे यह स्पष्ट है कि गृहस्थ श्रावकों से खेती का त्याग करने के लिए कहना और खेती करने से श्रावक धर्म की मर्यादा का भंग मानना भ्रमपूर्ण है।

यह अत्यन्त खेद की बात है कि कतिपय धर्मगुरु भी प्रायः इस भ्रम में पड़े हुए हैं। इसका परिणाम यह होता है कि गृहस्थों को गृहस्थ धर्म की बातें नहीं बतलाई जाती और साधुधर्म का आचार उन पर लादा जाता है। गृहस्थ, श्रावक के कर्त्तव्यों का भली भांति पालन नहीं करते और साधुधर्म का का पालन तो कर ही कैसे सकते हैं? इस प्रकार वे न इधर के रहते हैं, न उधर के। वे केवल अनेक अवांछनीय प्रवृत्तियों में पड़ जाते हैं, इसका एक प्रधान कारण यही आचार विभ्रम है।

कृषि कर्मादान नहीं है :

खेती के सम्बन्ध में एक बात और विचारणीय है। वह यह है कि क्या खेती करना पन्द्रह कर्मादानों में से फोडीकम्मे (स्फोटि कर्म) के अन्तर्गत है? कुछ लोगों की धारणा है कि हल के द्वारा जमीन को फोड़ना 'फोडीकम्मे' नामक कर्मादान है। कर्मादान भोगोपभोग परिमाण व्रत के अतिचार हैं अतः व्रतधारी श्रावक अगर निरतिचार व्रतों का पालन करना चाहे, तो उसे कृषि-कर्म नहीं करना चाहिए।

वास्तव में यह विचार भी अभ्रान्त नहीं है। अगर खेती करना कर्मादान में सम्मिलित होता तो भगवान् महावीर स्वामी के समक्ष बारह व्रत ग्रहण करने वाला आनन्द श्रावक पांच सौ हलों से जोती जा सकने योग्य खेती की मर्यादा कैसे कर सकता था? क्या भगवान् उसे यह न समझाते कि व्रती श्रावक खेती नहीं कर सकता। मगर आनन्द बारह व्रत ग्रहण करता है, फिर भी पांच सौ हलों से जुतने योग्य खेती करने की छूट रखता है। इस बात का

उपासक दशांग सूत्र में स्पष्ट उल्लेख है। मूल पाठ यह है—

तयाणंतरं च णं खेत्तवत्थुविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ पंचहिं हलसएहिं नियत्तणसइएणं हलेणं अवसेसं खेत्तवत्थुविहिं पच्चक्खामि।

—उपासकदशांग प्रथम अध्ययन

अर्थात्—तत्पश्चात् आनन्द श्रावक क्षेत्र वस्तुविधि का परिमाण करता है—सौ निवर्त्तन (एक तरह का जमीन का नाप) वाले प्रत्येक एक हल के हिसाब से पांच सौ हलों द्वारा जुतने योग्य भूमि के अतिरिक्त बाकी भूमि का प्रत्याख्यान करता हूं।

इस प्रकार अन्यान्य व्रतों को ग्रहण करने के पश्चात् ही आनन्द प्रतिज्ञा करता है—

'समणोवासएणं पण्णरसकम्मादाणाइं जाणियव्वाइं न समायरियव्वाइं, तं जहा–इंगालकम्मे, वणकम्मे, भाडिकम्मे, फोडिकम्मे..........।

अर्थात्—श्रावक को पन्द्रह कर्मादान जानने योग्य हैं, पर आचरण करने योग्य नहीं हैं। वे इस प्रकार हैं—अंगारकर्म, वनकर्म, शकटकर्म, भाटककर्म, स्फोटिकर्म आदि।

उपासक दशांग सूत्र के ये दोनों उल्लेख साफ बतलाते हैं कि खेती करना स्फोटिकर्म कर्मादान नहीं है, क्योंकि आनन्द श्रावक कर्मादान का त्याग करता हुआ भी खेती का त्याग नहीं करता। खेती करना अगर कर्मादान में गिना जाय तो ये प्रतिज्ञाएं परस्पर विरोधी हो जाती हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि व्रत ग्रहण कराने वाले स्वयं भगवान् हैं और ग्रहण करने वाला आदर्श श्रावक आनन्द है।

शास्त्र में आनन्द श्रावक का चरित मनोरंजन के लिए नानी की कहानी की तरह नहीं लिखा गया। यह एक आदर्श चरित है, जो इस भावना से लिखा गया है कि आगे के श्रावक उसे अपना पथ प्रदर्शक समझें और उसका अनुकरण करें। लेकिन हम लोगों के बारह व्रतों की बात ही दूर, मूल गुणों तक का ठिकाना नहीं है और चले हैं हम आनन्द से भी आगे बढ़ने! आनन्द पांच सौ हल चलाने की छूट रखता है और हम एक हल चलाने में ही महा पाप मानकर उसका त्याग करने की धृष्टता करते हैं। आचार का यह व्यति क्रम, विकास का नहीं, अधःपतन का ही कारण हो सकता है।

पन्द्रह कर्मादानों में एक साडीकम्मे अर्थात् शकटकर्म भी है। शक कर्म का अर्थ है–गाड़ी बनाने बेचने और चलाने की आजीविका करना। अग

इस कर्मादान का फोडीकम्मे की भांति सामान्य अर्थ लिया जाय तो श्रावक बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी, तांगा, मोटर आदि कोई गाड़ी भी नहीं रख सकेगा, क्योंकि शकट चलाना कर्मादान है और व्रती श्रावक को कर्मादान का त्याग करना ही चाहिए।

औरों की बात जाने दीजिए और सिर्फ कर्मादान 'अंगारकर्म' को ही लीजिए। श्रावक अपने उदरनिर्वाह के लिए अग्नि जलाता है, कोयले जलाता है तो क्या उसे कर्मादान का महापाप लगता है ? अगर भोजन बनाने के लिए अंगार जलाने से ही कर्मादान का महापातक लग जाता है और श्रावक का व्रत दूषित हो जाता है तो फिर कर्मादानों का त्याग करने के लिए आजीवन संथारा लेने के सिवाय और क्या चारा है ? इस प्रकार श्रावक के व्रत ग्रहण करना अर्थात् शीघ्र ही मौत को आमंत्रण देना ही ठहरता है। धर्म की यह कितनी ऊलूल-जलूल व्याख्या है !

लेकिन कर्मादानों का वास्तविक स्वरूप यह नहीं है। श्रावक अपने लिए गाड़ी बनाए, खरीदे और स्वयं चलावे तो भी साडीकम्मे कर्मादान नहीं लगता। कर्मादान का पाप उस हालत में लगता है जबकि गाड़ी बनाने का धंधा ही अख्तियार कर लिया जाय और उसी धंधे से आजीविका चलाई जाय। इसी प्रकार अपने भोजन आदि के उपयोग के लिए अंगार जलाने का काम करने से 'अंगारकर्म' कर्मादान नहीं लगता। कोयला बना बनाकर बेचने का व्यापार करने से कर्मादान लगता है। खेती करना 'फोडीकम्मे' कर्मादान नहीं है।

'फोडीकम्मे' कर्मादान में तालाब खोदना कुआ-बावड़ी खोदना आदि कार्य भी गिने जाते हैं। परन्तु हमारा सहज ज्ञान क्या यह स्वीकार करने के लिए तैयार है कि परोपकार के लिए या अपने उपयोग के लिए कुआ आदि खोदने-खुदवाने से महान् पाप, इतना बड़ा पाप जिससे श्रावक का व्रत खंडित हो जाए, लगता है ? कदापि नहीं। वास्तव में अपने व्यापार के लिए भूमि फोड़ने का धंधा करना ही कर्मादान है, कृषि करना कर्मादान में सम्मिलित नहीं है।

जिस कार्य को करने से महान् पाप का बंध होता है, वह कार्य कर्मादान कहलाता है। इस अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे में जब कल्पवृक्ष नष्ट हो गए और कर्मभूमि का आरंभ हुआ तब तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव ने उस समय की अज्ञान जनता को कृषिकर्म करने का उपदेश दिया था। श्री सम्मन्त भद्राचार्य ने आदिनाथ की स्तुति करते हुए कहा है—

शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः। —बृहत्स्वयंभूस्तोत्र।

अगर कृषिकर्म आर्योचित कर्म न होता, महान् पाप का कारण होता तो भगवान् उसका उपदेश क्यों देते ? भगवान् ने उस समय की प्रजा को जुआ या सट्टा न सिखला कर खेती की शिक्षा क्यों दी है ? तात्पर्य यह है कि कृषिकर्म न कर्मादान है, न अनार्य कर्म है । जगह-जगह उसे वैश्यों का कर्त्तव्य बतलाया गया है । श्री सोमदेव सूरि लिखते हैं—

कृषिः पशुपालनं वाणिज्या च वार्त्ता वैश्यानाम्—नीतिवाक्यामृत ।

उत्तराध्ययन सूत्र में 'वइसो कम्मुणा होइ' इस सूत्रांश की टीका इस प्रकार की गई है—'कर्मणा कृषिपशुपालनादिना भवति।' अर्थात् कृषि और पशु-पालन आदि कार्यों से वैश्य होता है ।

कृषिकर्म वैश्यों का प्रधान कर्त्तव्य है । इस सम्बन्ध में अधिक उद्धरणों की आवश्यकता नहीं है । यही बात दूसरे शब्दों में इस प्रकार कही जा सकती है कि जो वैश्य कृषि, पशुपालन और वाणिज्य रूप वैश्योचित कर्म नहीं करता वह अपने वर्ण से च्युत होता है । वर्ण—व्यवस्था की दृष्टि से उसे वैश्य नहीं कहा जा सकता ।

कृषिकर्म के सम्बन्ध में मुख्य—मुख्य बातों का यहां तक विचार किया गया है । इससे यह भलीभांति सिद्ध है कि कृषिकर्म, श्रावकधर्म को बाधा नहीं पहुंचाता । हां, जो श्रावक गृहवास का त्याग करके प्रतिमा धारण करके विशिष्ट साधना में अपना समय व्यतीत करने के लिए उद्यत होते हैं, वे जैसे अन्यान्य आरंभों का त्याग करते हैं, उसी प्रकार कृषि का भी त्याग कर देते हैं । जो श्रावक व्रत रहित है या व्रत सहित होने पर भी आरंभ त्याग प्रतिमा की कोटि तक नहीं पहुंचे हैं, उनके लिए कृषिकर्म त्याज्य नहीं है ।

कृषि और अन्य आजीविकाएं :

अगर आजीविकाओं पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाय तो यह प्रतीत हुए बिना नहीं रहेगा कि ब्याज—खोरी आदि अन्य आजीविकाओं की अपेक्षा कृषि आजीविका श्रावकधर्म के अधिक अनुकूल है । सट्टे के साथ जो एकप्रकार का जुआ ही है, कृषि की तुलना की जा चुकी है । जुए को धर्म-शास्त्रों में त्याज्य ठहराया है । सूदखोरी का धन्धा भी प्रशस्त नहीं है । शास्त्रों में वर्णित कोई आदर्श श्रावक यह धन्धा नहीं करता था ।

आचार्य सोमदेव सूरि ने लिखा है—

पशुधान्यहिरण्यसम्पदा राजते—शोभते, इति राष्ट्रम् ।

अर्थात्—जो देश पशु धान्य और हिरण्य से सुशोभित होता है, वही

इस कर्मादान का फोडीकम्मे की भांति सामान्य अर्थ लिया जाय तो श्रावक बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी, तांगा, मोटर आदि कोई गाड़ी भी नहीं रख सकेगा, क्योंकि शकट चलाना कर्मादान है और व्रती श्रावक को कर्मादान का त्याग करना ही चाहिए।

औरों की बात जाने दीजिए और सिर्फ कर्मादान 'अंगारकर्म' को ही लीजिए। श्रावक अपने उदरनिर्वाह के लिए अग्नि जलाता है, कोयले जलाता है तो क्या उसे कर्मादान का महापाप लगता है? अगर भोजन बनाने के लिए अंगार जलाने से ही कर्मादान का महापातक लग जाता है और श्रावक का व्रत दूषित हो जाता है तो फिर कर्मादानों का त्याग करने के लिए आजीवन संथारा लेने के सिवाय और क्या चारा है? इस प्रकार श्रावक के व्रत ग्रहण करना अर्थात् शीघ्र ही मौत को आमंत्रण देना ही ठहरता है। धर्म की यह कितनी ऊलूल-जलूल व्याख्या है!

लेकिन कर्मादानों का वास्तविक स्वरूप यह नहीं है। श्रावक अपने लिए गाड़ी बनाए, खरीदे और स्वयं चलावे तो भी साडीकम्मे कर्मादान नहीं लगता। कर्मादान का पाप उस हालत में लगता है जबकि गाड़ी बनाने का धंधा ही अख्तियार कर लिया जाय और उसी धंधे से आजीविका चलाई जाय। इसी प्रकार अपने भोजन आदि के उपयोग के लिए अंगार जलाने का काम करने से 'अंगारकर्म' कर्मादान नहीं लगता। कोयला बना बनाकर बेचने का व्यापार करने से कर्मादान लगता है। खेती करना 'फोडीकम्मे' कर्मादान नहीं है।

'फोडीकम्मे' कर्मादान में तालाब खोदना कुआ-बावड़ी खोदना आदि कार्य भी गिने जाते हैं। परन्तु हमारा सहज ज्ञान क्या यह स्वीकार करने के लिए तैयार है कि परोपकार के लिए या अपने उपयोग के लिए कुआ आदि खोदने-खुदवाने से महान् पाप, इतना बड़ा पाप जिससे श्रावक का व्रत खंडित हो जाए, लगता है? कदापि नहीं। वास्तव में अपने व्यापार के लिए भूमि फोड़ने का धंधा करना ही कर्मादान है, कृषि करना कर्मादान में सम्मिलित नहीं है।

जिस कार्य को करने से महान् पाप [illegible] बंध [illegible]ोता है, वह कार्य कर्मादान कहलाता है। इस अवसर्पिणी काल [illegible] व कल्पवृक्ष नष्ट हो गए और कर्म[illegible] का आरंभ [illegible]त [illegible] [illegible]देव ने उस समय की अज्ञान [illegible] कृषि [illegible]। [illegible]

[illegible]सम्मन्त भद्राचार्य ने अ[illegible] [illegible]त [illegible]

[illegible] शशास [illegible] प्रजाः [illegible]

अगर कृषिकर्म आर्योचित कर्म न होता, महान् पाप का कारण होता तो भगवान् उसका उपदेश क्यों देते ? भगवान् ने उस समय की प्रजा को जुआ या सट्टा न सिखला कर खेती की शिक्षा क्यों दी है ? तात्पर्य यह है कि कृषिकर्म न कर्मादान है, न अनार्य कर्म है । जगह-जगह उसे वैश्यों का कर्त्तव्य बतलाया गया है । श्री सोमदेव सूरि लिखते हैं—

कृषिः पशुपालनं वाणिज्या च वार्त्ता वैश्यानाम्—नीतिवाक्यामृत ।

उत्तराध्ययन सूत्र में 'वइसो कम्मुणा होइ' इस सूत्रांश की टीका इस प्रकार की गई है—'कर्मणा कृषिपशुपालनादिना भवति ।' अर्थात् कृषि और पशु-पालन आदि कार्यों से वैश्य होता है ।

कृषिकर्म वैश्यों का प्रधान कर्त्तव्य है । इस सम्बन्ध में अधिक उद्धरणों की आवश्यकता नहीं है । यही बात दूसरे शब्दों में इस प्रकार कही जा सकती है कि जो वैश्य कृषि, पशुपालन और वाणिज्य रूप वैश्योचित कर्म नहीं करता वह अपने वर्ण से च्युत होता है । वर्ण-व्यवस्था की दृष्टि से उसे वैश्य नहीं कहा जा सकता ।

कृषिकर्म के सम्बन्ध में मुख्य-मुख्य बातों का यहां तक विचार किया गया है । इससे यह भलीभांति सिद्ध है कि कृषिकर्म, श्रावकधर्म को बाधा नहीं पहुंचाता । हां, जो श्रावक गृहवास का त्याग करके प्रतिमा धारण करके विशिष्ट साधना में अपना समय व्यतीत करने के लिए उद्यत होते हैं, वे जैसे अन्यान्य आरंभों का त्याग करते हैं, उसी प्रकार कृषि का भी त्याग कर देते हैं । जो श्रावक व्रत रहित है या व्रत सहित होने पर भी आरंभ त्याग प्रतिमा की कोटि तक नहीं पहुंचे हैं, उनके लिए कृषिकर्म त्याज्य नहीं है ।

कृषि और अन्य आजीविकाएं :

अगर आजीविकाओं पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाय तो यह प्रतीत हुए बिना नहीं रहेगा कि ब्याज-खोरी आदि अन्य आजीविकाओं की अपेक्षा कृषि आजीविका श्रावकधर्म के अधिक अनुकूल है । सट्टे के साथ जो एकप्रकार का जुआ ही है, कृषि की तुलना की जा चुकी है । जुए को धर्म-शास्त्रों में त्याज्य ठहराया है । सूदखोरी का धन्धा भी प्रशस्त नहीं है । शास्त्रों में वर्णित कोई आदर्श श्रावक यह धन्धा नहीं करता था ।

आचार्य सोमदेव सूरि ने लिखा है—

पशुधान्यहिरण्यसम्पदा राजते-शोभते, इति राष्ट्रम् ।

अर्थात्—जो देश पशु धान्य और हिरण्य से सुशोभित होता है, वही

सच्चा राष्ट्र कहलाता है। यहां पशुओं और धान्य को प्रथम स्थान दिया गया है और उसके बाद हिरण्य(चांदी-सोने) को। ऐसा करके आचार्य ने यह सूचित कर दिया है कि किसी भी देश की प्रधान सम्पत्ति पशु और धान्य है, क्योंकि उनसे जीवन की वास्तविक आवश्यकता साक्षात् रूप से पूर्ण होती है। जो वस्तु जीवन की वास्तविक आवश्यकताओं की साक्षात् पूर्ति करती है, उसका उपार्जन करने वाला सामाजिक एवं राष्ट्रीय दृष्टि से समाज एवं राष्ट्र का उपकार करता है। वह जगत को अपनी ओर से कुछ प्रदान करता है, अतएव वह जगत् का बोझ नहीं है वरन् बोझ उठाने वालों का हिस्सेदार है। वह समाज से कुछ लेता है तो उसके बदले समाज को कुछ देता भी है। अनाज पैदा करने वाला किसान दूसरों का भार नहीं है, बल्कि दूसरों का भार संभालता है। वह अनेक मनुष्यों को अन्न के रूप में जीवन दे रहा है, क्योंकि पैदा किया हुआ सारा अनाज वह स्वयं नहीं खा लेता। यही बात पशु-पालन के संबंध में भी कही जा सकती है। मगर सूद का धंधा करने वाला पुरुप स्वार्थ साधन के सिवा और क्या करता है? एड़ी से चोटी तक पसीना बहाकर किसान जो अन्न उपजाता है, उस पर सूदखोर का जीवन निर्भर है, फिर भी वह किसान को भरपेट नहीं खाने देता। समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों के परिश्रम पर वह गुलछर्रे उड़ाता है, मगर उनमें से किसी की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह कुछ भी आत्मदान नहीं करता। वह अगर कुछ करता है तो सिर्फ समाज में विषमता का विष ही फैलाता है। अतएव उसका कार्य जगत् के लिए कल्याणकारी न होकर अकल्याणकारी ही है।

व्यापार अगर सामाजिक भावना का विरोध न करते हुए, बल्कि समाज कल्याण की दृष्टि को साथ लेकर किया जाय तो वह भी उपयोगी और श्रावकधर्म से अविरुद्ध है, मगर ऐसा होता नहीं है। व्यापारी वर्ग व्यक्तिगत लाभ के लिए ही व्यापार करता है। यह बात गत युद्ध के समय में अत्यन्त स्पष्ट हो गई है। लोग भूखे मरे पर व्यापारियों का हृदय नहीं पसीजा। उन्होंने मुनाफे के लोभ में जनता के जीवन-मरण की चिन्ता नहीं की। कम-बढ़ रूप में सदा ही यह होता रहता है। लेकिन खेती में यह संभावना नहीं है। किसान अत्यधिक अनाज का लम्बे समय तक संग्रह नहीं रख सकता।

व्यापार की अपेक्षा खेती की महत्ता इसलिए भी अधिक है कि खेती मूल आजीविका है। मूल आजीविका वह कहलाती है, जिस पर अन्य अनेक आजीविकाएं निर्भर हों। कपास, रूई, सूत, जूट, बुनाई, सिलाई, कपड़े के मिल बजाजी का व्यवसाय इस संबंध के तमाम आढ़त आदि के धन्धे, तथा समस्त

अनाज संबंधी व्यवसाय हलवाई की दुकानें होटल ढाबा आदि-आदि कृषिकर्म पर अवलंबित हैं। अगर किसान खेती करना छोड़ दें तो दुनिया के अधिकांश व्यापारी चोपट हो जाएं। इस दृष्टि से व्यापार का मूल भी खेती ही ठहरती है। ऐसी स्थिति में विभिन्न आजीविकाओं के साथ तुलना करने पर कृषि की उत्कृष्टता सिद्ध होती है। निःसंदेह कृषि जीवन है और कृषक जीवनदाता है। लोग राजा-महाराजाओं को 'अन्नदाता' कहते हैं, मगर ईमानदारी से तो किसान अन्नदाता है।

प्रवृत्ति और निवृत्ति का समन्वय :

जैन धर्म संबंधी आचार विषयक विभ्रम उत्पन्न होने के कारण पर एक निगाह डालना शायद अप्रासंगिक न होगा। मेरे विचार से आचार विषयक विभ्रम का प्रधान कारण यह है कि हम जैन धर्म को एकान्त निवृत्तिमय मान बैठे है। धर्मोपदेशक भी प्रायः उसी रूप में धर्म का स्वरूप प्रकट करते हैं। लेकिन एकान्त निवृत्ति क्या कहीं संभव है ? निवृत्ति प्रवृत्ति के बिना और प्रवृत्ति निवृत्ति के बिना असंभव है। अक्सर लोग समझते हैं, अहिंसा निवृत्ति रूप है, लेकिन वास्तव में अहिंसा में जो निवृत्ति है, वह अहिंसा का शरीर है और उसमें पाया जाने वाला प्रवृत्ति का भाव उसकी आत्मा है। किसी प्राणी को नहीं सताना, अहिंसा का बाह्य रूप है और इस निवृत्ति के साथ सर्व-प्राणियों में बन्धुभाव होना, विश्वप्रेम का अंकुर उगना, करुणभाव से हृदय द्रवित होना, जगत् के सुख के लिए कर्त्तव्यपरायण होना आदि प्रवृत्ति अहिंसा का आन्तरिक रूप है। इसके बिना अहिंसा की भावना न उद्भूत हो सकती है, न जीवित रह सकती है।

जैसे पक्षी एक पंख से आकाश में विचरण नहीं कर सकता, उसी प्रकार एकान्त निवृत्ति या एकान्त प्रवृत्ति से आत्मा ऊर्ध्वगामी नहीं हो सकता। अतएव यह कहा जा सकता है कि प्रवृत्ति और निवृत्ति जैनाचार के दो पख हैं। इनमें से किसी भी एकके अभाव में अधःपतन ही संभव है। इसलिए शास्त्रों में कहा है—

असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।

अर्थात्—अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति को ही चारित्र समझना चाहिए। प्रवृत्ति और निवृत्ति का समन्वय ही चारित्र का निर्माण करता है।

जब हमें जीवन-यापन करना ही है तो एकान्त निवृत्ति से काम नहीं

चल सकता। प्रवृत्ति कुछ करनी ही होगी। ऐसी स्थिति में किस कार्य में प्रवृत्ति करनी चाहिए और किससे निवृत्त होना चाहिए, यह प्रश्न अपने आप उत्पन्न हो जाता है। इसका आंशिक समाधान ऊपर उद्धृत वाक्य से हो जाता है कि शुभ में प्रवृत्ति और अशुभ से निवृत्ति करनी चाहिए। लेकिन शुभ क्या है और अशुभ क्या है ? यह प्रश्न फिर भी बना रहता है। शुभ और अशुभ की व्याख्या कुछ-कुछ देश काल की परिस्थिति पर निर्भर करती है, लेकिन उनकी सर्वदेश काल व्यापी व्याख्या यही हो सकती है कि जिस कार्य से आत्मा का और जगत् का कल्याण हो वह शुभ है और जिससे व्यक्ति और समष्टि का अकल्याण हो वह अशुभ है। इसी दृष्टि से हमें जीवन-निर्वाह के लिए कोई भी शुभ कार्य पसंद करना चाहिए। पहले जो विवेचन किया गया है, उससे यह स्पष्ट है कि कृषिकर्म जीवन के लिए अत्युपयोगी है—व्यक्ति और समाज का जीवन उसी पर अवलंबित है। उससे किसी को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुंचती। अतएव जीवन निर्वाह का जहां तक प्रश्न है, कृषि विधेय कर्म है। सट्टे आदि की निवृत्ति से कृषि आदि शुभ कार्यों में प्रवृत्ति ही फलित होती है। 'उत्तराध्ययन सूत्र' में बतलाया गया है कि धर्मात्मा पुरुष स्वर्ग में उत्पन्न होने के पश्चात् जब मनुष्य योनि प्राप्त करता है, तब उसे दस श्रेष्ठ वस्तुओं की प्राप्ति होती है। यथा—

> खेत्त वत्थु हिरण्णं च, पसवो दास पोरुस।
> चत्तारि कामखंधारी, तत्थ से उववज्जइ॥

—उत्तरा० तीसरा अध्ययन।

यहां क्षेत्र (खेत) की प्राप्ति को प्रथम स्थान दिया गया है। वास्तव में पुण्य के उदय से खेत मिलता है और खेत जोतने वाला जगत् की रक्षा करके पुण्य का भागी होता है।

हमारा ख्याल है, पाठक इतने विवेचन से भलभांति समझ सकेंगे कि जीवन निर्वाह के कार्यों में कृषि का स्थान क्या है और वह धर्म से संगत है या विसंगत है ?

★

विशेष जागरूक हों तथा लोगों को इस बात के लिए प्रेरित करें कि वे ग्राम-धर्म का निर्वाह कर राष्ट्र-निर्माण में अपना सहयोग दें। युवकों को गांवों के प्रति अपना पलायनवादी दृष्टिकोण त्यागना होगा।

गांवों के विस्तार से नगर की रचना होती है। ग्राम-धर्म के समान नगर-धर्म की पालना भी आवश्यक है। गांव नगर का ही एक अंग है। गांव व नगर एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों के विकास पर ही देश की मजबूती को बल मिलता है। आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. का कहना है—

"शरीर और मस्तिष्क में जितना घना सम्बन्ध है, उतना ही सम्बन्ध ग्राम-धर्म और नगर-धर्म में आपस में है। ग्राम्य जन अगर शरीर के स्थान पर हैं तो नागरिकजन मस्तिष्क की जगह। जब शरीर स्वस्थ होता है तभी मस्तिष्क स्वस्थ रह सकता है, यह बात कौन नहीं जानता?" [1]

अतः शिक्षित युवावर्ग का यह पुनीत कर्त्तव्य है कि वे नगर-धर्म का पालन करते हुए अपने आश्रित ग्राम-धर्म का भी निर्वाह करें तथा दूसरों को भी इस हेतु प्रेरित करें।

ग्राम-धर्म और नगर-धर्म के उचित तथा पूर्ण पालन से राष्ट्र-धर्म की सृष्टि होती है। दोनों धर्मो का सम्मिलित प्रभाव राष्ट्र पर पड़ता है। भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि चन्द 'जयचन्दों' के नगर-द्रोही कार्यो ने संपूर्ण देश की प्रतिष्ठा को धूल में मिला दिया। आज भी हमारे देश में अनेक 'जयचन्द' हैं, जिन्होंने समय-समय पर राष्[illegible]ति में रोड़े अटकाये, उत्पादन को ठप्प करवाया, युवकों को गुमर[illegible] सारी व्यवस्थाओं को छिन्न-भिन्न कर प्रगति के पथ पर बढ़ते[illegible] पीछे की ओर धकेलना चाहा। अब समय आ[illegible] देश [illegible]ि को इन 'जयचन्दों' को मार भगाना है।

"राष्ट्र की रक्षा में हमारी रक्षा है । राष्ट्र के विनाश में हमारा विनाश है ।" [1]

स्वावलम्बन का हमारे जीवन में अत्यधिक महत्त्व है । स्वावलम्बी व्यक्ति ही ग्राम-धर्म, नगर-धर्म और राष्ट्र-धर्म का निर्वाह कर सकता है । स्वावलम्बन की महिमा का बखान करते हुए राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है—'स्वावलम्बन की एक झलक पर न्यौछावर कुबेर का कोष ।' स्वावलम्बन की महिमा को शब्दों के माध्यम से व्यक्त नहीं किया जा सकता । इसका तो केवल अनुभव ही किया जा सकता है; किन्तु दुःख है, आज का युवक स्वावलम्बन के महत्त्व को भूलता जा रहा है । दिन-प्रतिदिन नये-२ फैशन में व्यस्त आज का युवक स्वावलम्बी जीवन त्याग कर आलसी तथा परावलम्बी होता जा रहा है । श्रम का उसके लिये कोई महत्त्व नहीं है । आचार्यश्री अपनी ओजमयी वाणी में युवकों को सन्देश दे रहे हैं—

"किसी भी दूसरे की शक्ति पर निर्भर न बनो । समझ लो, तुम्हारी एक मुट्ठी में स्वर्ग है, दूसरी में नरक है । तुम्हारी एक भुजा में अनन्त संसार है और दूसरी भुजा में अनन्त मंगलमय मुक्ति है । तुम भाग्य के खिलौने नहीं हो वरन् भाग्य के निर्माता हो । आज का तुम्हारा पुरुषार्थ कल भाग्य बन कर दास की भांति तुम्हारा सहायक होगा ।" [2]

अतः भारत के युवकों को, नौजवानों को आचार्यश्री से प्रेरणा प्राप्त कर स्वावलम्बी जीवन व्यतीत करना चाहिए, ताकि वे स्वयं तो स्वस्थ रहेंगे ही, साथ ही राष्ट्र की सुख-समृद्धि में भी सहायक होंगे ।

आज हमारे देश के युवकों पर पाश्चात्य संस्कृति का काफी प्रभाव पड़ा है । इसी संस्कृति के वशीभूत होकर हमारा युवावर्ग नशीली वस्तुओं का सेवन काफी मात्रा में करने लगा है । विश्वविद्यालय केम्पस में तो अनेक छात्र हमें सिगरेट पीते हुए दिखाई देते हैं, किन्तु अब तो छात्रों को मदिरा, एल. एस. डी. आदि मादक पदार्थों का भी चसका लग गया है । ऐसे छात्रों को सावधान करते हुए आचार्यश्री उनके सम्भावित खतरों के प्रति युवकों को आग्रह कर रहे हैं—

"मदिरा पीने वाला मदिरा की बुराइयों को समझता हुआ भी उससे बच नहीं पाता । वह (मदिरा) पिशाचिनी की तरह एक बार अपने अधीन

१—धर्म और धर्म नायक, पृष्ठ—२३

२—जवाहर विचारसार, पृष्ठ—२६१

विशेष जागरुक हों तथा लोगों को इस बात के लिए प्रेरित करें कि वे ग्राम-धर्म का निर्वाह कर राष्ट्र-निर्माण में अपना सहयोग दें। युवकों को गांवों के प्रति अपना पलायनवादी दृष्टिकोण त्यागना होगा।

गांवों के विस्तार से नगर की रचना होती है। ग्राम-धर्म के समान नगर-धर्म की पालना भी आवश्यक है। गांव नगर का ही एक अंग है। गांव व नगर एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों के विकास पर ही देश की मजबूती को बल मिलता है। आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. का कहना है—

"शरीर और मस्तिष्क में जितना घना सम्बन्ध है, उतना ही सम्बन्ध ग्राम-धर्म और नगर-धर्म में आपस में है। ग्राम्य जन अगर शरीर के स्थान पर हैं तो नागरिकजन मस्तिष्क की जगह। जब शरीर स्वस्थ होता है तभी मस्तिष्क स्वस्थ रह सकता है, यह बात कौन नहीं जानता ?" [१]

अतः शिक्षित युवावर्ग का यह पुनीत कर्त्तव्य है कि वे नगर-धर्म का पालन करते हुए अपने आश्रित ग्राम-धर्म का भी निर्वाह करें तथा दूसरों को भी इस हेतु प्रेरित करें।

ग्राम-धर्म और नगर-धर्म के उचित तथा पूर्ण पालन से राष्ट्र-धर्म की सृष्टि होती है। दोनों धर्मों का सम्मिलित प्रभाव राष्ट्र पर पड़ता है। भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि चन्द 'जयचन्दों' के नगर-द्रोही कार्यों ने संपूर्ण देश की प्रतिष्ठा को धूल में मिला दिया। आज भी हमारे देश में अनेक 'जयचन्द' हैं, जिन्होंने समय-समय पर राष्ट्र की प्रगति में रोड़े अटकाये, उत्पादन को ठप्प करवाया, युवकों को गुमराह किया तथा सारी व्यवस्थाओं को छिन्न-भिन्न कर प्रगति के पथ पर बढ़ते इस देश को पीछे की ओर धकेलना चाहा। अब समय आ गया है जब देश की युवा शक्ति को इन 'जयचन्दों' को मार भगाना है।

आचार्य श्री का कहना है कि भारत गुलाम इसीलिए हुआ कि यहां के नागरिक नगर-धर्म का पालन नहीं करते थे [२]। आचार्य श्री कड़े शब्दों में उन लोगों की आलोचना करते हैं जो नगर धर्म का ठीक पालन नहीं करते। वे उन्हें देश-द्रोही कहते है। देश के युवकों को आचार्य श्री के इस कथन को अपने हृदय-पटल पर अंकित कर लेना चाहिए—

१—धर्म और धर्म नायक, पृ० १०
२—वही पृ० १७

"राष्ट्र की रक्षा में हमारी रक्षा है। राष्ट्र के विनाश में हमारा विनाश है।" [१]

स्वावलम्बन का हमारे जीवन में अत्यधिक महत्त्व है। स्वावलम्बी व्यक्ति ही ग्राम-धर्म, नगर-धर्म और राष्ट्र-धर्म का निर्वाह कर सकता है। स्वावलम्बन की महिमा का बखान करते हुए राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है—'स्वावलम्बन की एक झलक पर न्यौछावर कुबेर का कोष।' स्वावलम्बन की महिमा को शब्दों के माध्यम से व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसका तो केवल अनुभव ही किया जा सकता है; किन्तु दुःख है, आज का युवक स्वावलम्बन के महत्त्व को भूलता जा रहा है। दिन-प्रतिदिन नये-२ फैशन में व्यस्त आज का युवक स्वावलम्बी जीवन त्याग कर आलसी तथा परावलम्बी होता जा रहा है। श्रम का उसके लिये कोई महत्त्व नहीं है। आचार्यश्री अपनी ओजमयी वाणी में युवकों को सन्देश दे रहे हैं—

"किसी भी दूसरे की शक्ति पर निर्भर न बनो। समझ लो, तुम्हारी एक मुट्ठी में स्वर्ग है, दूसरी में नरक है। तुम्हारी एक भुजा में अनन्त संसार है और दूसरी भुजा में अनन्त मंगलमय मुक्ति है। तुम भाग्य के खिलौने नहीं हो वरन् भाग्य के निर्माता हो। आज का तुम्हारा पुरुषार्थ कल भाग्य बन कर दास की भांति तुम्हारा सहायक होगा।" [२]

अतः भारत के युवकों को, नौजवानों को आचार्यश्री से प्रेरणा प्राप्त कर स्वावलम्बी जीवन व्यतीत करना चाहिए, ताकि वे स्वयं तो स्वस्थ रहेंगे ही, साथ ही राष्ट्र की सुख-समृद्धि में भी सहायक होंगे।

आज हमारे देश के युवकों पर पाश्चात्य संस्कृति का काफी प्रभाव पड़ा है। इसी संस्कृति के वशीभूत होकर हमारा युवावर्ग नशीली वस्तुओं का सेवन काफी मात्रा में करने लगा है। विश्वविद्यालय केम्पस में तो अनेक छात्र हमें सिगरेट पीते हुए दिखाई देते हैं, किन्तु अब तो छात्रों को मदिरा, एल. एस. डी. आदि मादक पदार्थों का भी चसका लग गया है। ऐसे छात्रों को सावधान करते हुए आचार्यश्री उनके सम्भावित खतरों के प्रति युवकों को आग्रह कर रहे हैं—

"मदिरा पीने वाला मदिरा की बुराइयों को समझता हुआ भी उससे बच नहीं पाता। वह (मदिरा) पिशाचिनी की तरह एक वार अपने अधीन

१—धर्म और धर्म नायक, पृष्ठ—२३
२—जवाहर विचारसार, पृष्ठ—२६१

कारके मनुष्य का सत्व चूस लेती है। वह मनुष्य को हड्डियों का ढेर बना डालती है। जीवन को एकदम बर्बाद कर देती है।" [१]

देश की प्रगति में बाधक हैं—हमारी सामाजिक कुरीतियां। इन कुरीतियों को, इन सामाजिक बेड़ियों व बन्धनों को केवल युवक ही तोड़ सकते हैं। वृद्ध पुरुषों के लिये यह सम्भव नहीं क्योंकि जिस रास्ते पर वे लम्बे समय तक चले, उसें यकायक छोड़ देना उनके बस की बात नहीं है। युवक सदैव से प्रगतिशील होता है, नये को स्वीकार करने तथा पुराने को छोड़ देने की हिम्मत व साहस उसमें होता है। इन सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने का दायित्व युवकों के कन्धों पर ही है।

सबसे पहली समस्या है, बाल-विवाह की। हालांकि शहर में इस प्रथा का प्रचलन कम है, किन्तु गांवों की स्थिति इस दृष्टि से दयनीय है। अतः युवकों को इसके विरुद्ध आवाज बुलन्द करनी है। आचार्यश्री का कहना है—

"छोटी-कच्ची उम्र में बालक-बालिका का विवाह करना अमङ्गल है। ऐसा विवाह भविष्य में हाहाकार मचाने वाला है। ऐसा विवाह त्राहि-त्राहि की आवाज से अकाश गुंजाने वाला है। ऐसा विवाह देश में दुःख का दावानल दहकाने वाला है। इस प्रकार के विवाह से देश की जीवनी शक्ति का ह्रास हो रहा है। विविध प्रकार की आधि-व्याधियों को जन्म दे रहा है।" [२] अतः जब बाल विवाह इतना घातक हो सकता है तो फिर क्यों न इसे बंद करने में पहल करें।

आचार्य श्री ने विवाह को मात्र भोग्य नहीं माना है बल्कि उसे जीवन विकास का साधन माना है। कितने सुन्दर विचार उन्होंने इस संदर्भ में प्रकट किए हैं—

"विवाह तो तुम्हारा हुआ, पर देखना यह चाहिए कि तुम विवाह करके चतुर्भुज बने हो या चतुष्पद। विवाह करके अगर तुम बुरे काम में पड़ गये तो समझो कि चतुष्पद बने हो। अगर विवाह को भी तुमने धर्म-साधना का निमित्त बना लिया है तो निस्संदेह तुम चतुर्भुज-जो कि ईश्वर का रूप माना जाता है, बने हो। इस बात के लिए सतत यत्न करना चाहिए कि मनुष्य चतुष्पद न बनकर चतुर्भुज-ईश्वर का रूप बने और अन्ततः उसमें एवं

१—जवाहर विचारसार, पृष्ठ—२२१
१—जवाहर विचार सार, पृ० १४७

ईश्वर में किंचित् भी भेद न रह सके ।"[1]

अस्पृश्यता के विरुद्ध भी युवकों को आवाज उठानी होगी । अस्पृश्यता हमारे समाज के लिए कलंक है । इस कलंक को मिटाने के लिए युवकों को पहल करनी होगी । आचार्य श्री के ये उद्गार हमारे लिए दीपस्तम्भ के समान हैं—

"मित्रो ! सत्य को समझने का प्रयास करो । किसी के प्रति घृणा भाव लाकर अपने अन्तःकरण को कलुषित मत करो । मनुष्यता का अपमान मत करो । प्राणी मात्र पर मैत्री का अभ्यास करने वालों को मनुष्य के प्रति घृणा करना शोभा नहीं देता । अतएव उन पर यथा भाव रखोगे तो अपना ही कल्याण होगा ।"[2]

हमारे देश में चन्द व्यापारियों की मुनाफाखोरी तथा जमाखोरी की प्रवृत्ति से अवश्यक वस्तुओं का कृत्रिम संकट पैदा हो गया था । आपातकालीन स्थिति की घोषणा के बाद व्यापारियों की इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगा है, किन्तु आंशिक रूप से । इस प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए, ऐसे व्यापारियों को बेनकाब करने के लिए युवा-शक्ति को भी संगठित प्रयास करने पड़ेंगे । आचार्य श्री का यह कथन व्यापारियों के लिए आदर्श होना चाहिए—

"मित्रो ! आदर्श वैश्य संसार की माता की तरह संग्रह करता है, जोंक की तरह नहीं । जो इस बात का ध्यान रखता है वह दयालु, करुणा-शील और धर्मात्मा कहा जायेगा, क्योंकि उसकी जीविका धर्म की जीविका है, अधर्म की नहीं ।"

युवा शिक्षकों को आचार्यश्री प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि "समाज में तुम्हारा स्थान बहुत ऊंचा है । शरीर में मस्तिष्क का जो स्थान है, वही स्थान समाज में शिक्षक का है । शिक्षक विधाता है, निर्माता है ।"[3] देश के युवा शिक्षकों के हाथ में देश का भविष्य निर्भर है । आज का बालक कल का कर्णधार होगा और जिस देश का बचपन शिक्षित होगा, उस देश का यौवन भी वैभवपूर्ण होगा । अतः भारत के शिक्षको ! देश की नयी पीढ़ी का भविष्य आपके हाथों में है, आप इन्हें राष्ट्रनिर्माण व राष्ट्रीय चरित्र की शिक्षा देकर ऊंचा उठायें ।

१—जवाहर विचारसार, पृ० १४३

२—जीवनधर्म, पृ० ३०६

३—जवाहर विचारसार, पृ० २५

आज हमारे देश की युवा पीढ़ी में अश्लील साहित्य काफी लोकप्रिय है। यह साहित्य व्यावसायिक बुद्धि वाले क्षुद्र लेखकों द्वारा लिखा जाता है। ये लेखक इस बात पर विचार नहीं करते कि साहित्य का दूरगामी प्रभाव क्या पड़ेगा ? अतः देश की युवा-शक्ति से आचार्य श्री यह अनुरोध करते है कि वे ऐसे साहित्य को न पढ़ें—

"प्यारे विद्यार्थियो ! अगर तुम अपना जीवन सफल और तेजोमय बनाना चाहते हो तो ऐसी पुस्तकों को कभी हाथ मत लगाना, अन्यथा वे तुम्हारा जीवन मिट्टी में मिला देंगी।"

अतः मेरा अपने युवा-साथियों से अनुरोध है कि वे श्रीमद् जवाहराचार्य की जीवनी को पढ़ें, उनके विचारों को पढ़ें तथा उनसे प्रेरणा प्राप्त कर तदनुरूप अपने को ढालने का प्रयास करें। श्रीमद्जवाहराचार्य केवल जैन धर्म के उपदेशक ही नहीं हैं, वरन् सम्पूर्ण देश के युवा-वर्ग के प्रेरक हैं। श्री जवाहराचार्य एक दूरद्रष्टा थे। अंग्रेजों के जमाने में उन्होंने समय से आगे बढ़ कर बातें कही थीं, जिनसे हमें उनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। उन्होंने युवकों से स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करने का आह्वान किया। सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध उन्होंने अभियान छेड़ा उनके विचार सदैव हमारा मार्ग-निर्देशन करते रहेंगे। विभिन्न पुस्तकों मे आपके समय-२ पर दिये गये प्रवचनों का संकलन है जो हमारे लिये पठनीय हैं उनके विचार अमूल्य हैं और जीवन में ढालने योग्य हैं।

❀❀

तप करने वाले की वाणी पवित्र और प्रिय होती है। और जो प्रिय, पथ्य और सत्य बोलता है, उसी का तप वास्तव में तप है। असत्य या कटुक वाणी करने का तपस्वी को अधिकार नहीं है। तपस्वी अपनी अमृतमयी वाणी द्वारा भयभीत को निर्भय बना देता है।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.)

स्वप्न हुआ साकार—'वीर संघ'

● श्री भंवरलाल कोठारी

श्रीमद् जवाहराचार्य इस युग के एक महान् क्रांतद्रष्टा, विचारक एवं दृढ़-धर्मा, संयमाराधक आचार्य थे। वे स्वयं साधनारत रहते हुए अपने सम्यक् तलस्पर्शी ज्ञान, अनाग्रह-युक्त, अन्तर्स्पर्शी उदात्त दर्शन एवं आध्यात्मिक योगी के उदात्त चारित्रिक प्रभाव से समाज को रूढ़ि-मुक्त और धर्म-संयुक्त करना चाहते थे।

उनके विचारानुसार—धर्म-साधना के लिए सामाजिक और राष्ट्रीय वातावरण को भी शुद्ध बनाना आवश्यक है। समाज में विकृतियां पनपती रहें, राष्ट्र परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा रहे और देशवासी स्वदेशी के भान को भूल कर विदेशी वस्तुओं के मोहजाल में फंसे रहें, तो भला धर्म-आराधना के लिए शुद्ध निर्मल वातावरण कैसे बन सकता है।

समाज-सुधार एवं राष्ट्रीय जागरण, धर्म-साधना की पृष्ठभूमि हैं। धर्म को केवल वैयक्तिक साधना तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता, वह समाज और राष्ट्रव्यापी है। वह व्यक्ति से समष्टि के विकास तक की यात्रा है। वह एकांगी नहीं, सर्वांगीण है।

पारलौकिक व्यवहार को सुधारने से पूर्व लौकिक व्यवहार को सुधारने पर आचार्यश्री ने सर्वथा बल दिया। उनके शब्दों में :—

> "जो समाज लौकिक व्यवहार में ही बिगड़ा हुआ होगा उसमें धर्म की स्थिरता किस प्रकार रह सकेगी ? व्यवहार से गया-गुजरा समाज धर्म की मर्यादा को किस प्रकार कायम रख सकेगा ? इस दृष्टि से समाज-सुधार का प्रश्न भी उपेक्षणीय नहीं है।"

पर प्रश्न उठता है, समाज-सुधार का कार्य करे कौन ? श्रावक करे, या साधु ?

आचार्यश्री की पारदर्शी दृष्टि में आज के तथाकथित श्रावकों का

गृहस्थी के जंजालों में गहरा उलझाव एवं साधुजनों का संयम से च्युत होकर सांसारिक प्रपंचों में फंसने का खतरा सामाजिक उत्तरदायित्वों को निभा पाने में प्रमुख बाधा थी ।

आपने देश की राजधानी दिल्ली में स्थानकवासी जैन कान्फरेन्स की साधारण सभा को संबोधित करते हुए दिनांक ११-१०-१९३१ को निम्नानुसार युगीन संदेश दिया था :—

" साधु-समाज के निरंकुश होने और साधुता के विषयों में शिथिलता आ जाने के कारणों में से एक कारण है साधुओं के हाथ में समाज-सुधार का काम होना । आज सामाजिक लेख लिखने, वाद-विवाद करने और इस प्रकार समाज-सुधार करने का भार साधुओं पर डाल दिया गया है ।"

" सामाज-सुधार का भार साधुओं पर पड़ने का परिणाम क्या हो सकता है, यह समझने के लिए यति-समाज का उदाहरण मौजूद है । यदि वर्तमान साधुओं को समाज-सुधार का भार सौंपा गया और उनमें सामाजिकता की वृद्धि हुई तो उनकी भी ऐसी ही—यतियों जैसी—दशा होना संभव है ।"

" अब प्रश्न उपस्थित होता है कि ऐसा कौन सा उपाय है, जिससे समाज-सुधार का आवश्यक और उपयोगी काम भी हो सके और साधुओं को समाज-सुधार में पड़ना न पड़े ?"

" हमारे समाज में मुख्य दो वर्ग हैं— साधुवर्ग और श्रावकवर्ग । साधुवर्ग पर उस बोझ पड़ने से क्या हानियां हो सकती हैं, यह बात सामान्य रूप से मैं बतला चुका हूँ । रहा श्रावकवर्ग, सो इसी वर्ग को समाज-सुधार की प्रवृत्ति करनी चाहिए । मगर हमारा श्रावकवर्ग दुनियादारी के पचड़ों में इतना अधिक फंसा रहता है और उसमें शिक्षा का इतना अभाव है कि वह समाज-सुधार की प्रवृत्ति को यथावत् संचालित नहीं कर सकता । श्रावकों में धर्म संबन्धी ज्ञान भी इतना पर्याप्त नहीं है, जिससे वे धर्म का लक्ष्य रख कर, धर्म-मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रख कर तदनुकूल समाज-सुधार कर सकें ।

" इस स्थिति में किस उपाय का अवलंबन करना चाहिए, जिससे समाज-सुधार के कार्य में रुकावट न आवे और साधुओं को भी इस कार्य से अलहदा रखा जा सके ? आज यही प्रश्न हमारे सामने उपस्थित है और उसे हल करना अत्यावश्यक है ।'

इस समस्या के समाधान में युग-बोध देने वाले युगद्रष्टा आचार्यश्री ने जो उद्बोधक विचार प्रस्तुत किये, वे इस युग को उनकी महानतम देन हैं —

"मेरी सम्मति के अनुसार इस समस्या का हल ऐसे तीसरे वर्ग की स्थापना करने से ही हो सकता है, जो साधुओं और श्रावकों के मध्य का हो। यह वर्ग न तो साधुओं में ही परिगणित किया जाय और न गृह-कार्य करने वाले साधारण श्रावकों में ही। इस कार्य में वे ही व्यक्ति समाविष्ट किये जाएं जो ब्रह्मचर्य का अनिवार्य रूप से पालन करें और अकिंचन हों अर्थात् अपने लिए धन-संग्रह न करें। वे लोग समाज की साक्षी से, धर्माचार्यों के समक्ष इन दोनों व्रतों को ग्रहण करें। इस प्रकार के तीसरे त्यागी श्रावक-वर्ग से समाज-सुधार की समस्या भी हल हो जायगी और धर्म का भी विशेष प्रचार हो सकेगा। साथ ही निर्ग्रन्थ वर्ग भी दूषित होने से बच जायगा।"

"सच्चे सेवा-भावी और त्याग परायण तृतीय-वर्ग की स्थापना से समाज सुधार के अतिरिक्त धार्मिक कार्यों में बड़ी सहायता मिलेगी। यह वर्ग न तो साधु पद की मर्यादा में बंधा रहेगा और न गृहस्थी के झंझटों में ही फंसा होगा। अतएव यह वर्ग धर्म प्रचार में उसी प्रकार सहायता पहुंचा सकेगा जैसे चित प्रधान ने पहुंचाई थी।

"अगर अमेरिका या किसी अन्य देश में सर्व-धर्म-सम्मेलन होता है, वहां सभी धर्मों के अनुयायी अपने-अपने धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते है तो ऐसे सम्मेलनों में मुनि सम्मिलित नहीं हो सकते। अतः धर्म प्रभावना का कार्य रुक जाता है। यह तीसरा वर्ग ऐसे अवसरों पर उपस्थित होकर जैनधर्म की वास्तविक उत्तमता का निरूपण करके धर्म की बहुत सेवा कर सकता है।

"तीसरे वर्ग की स्थापना से यद्यपि साधुओं की संख्या घटने की संभावना है और यह भी संभव है कि भविष्य में अनेक पुरुष साधु होने के बदले इसी वर्ग में प्रविष्ट हों, लेकिन इससे घबराने की आवश्यकता नहीं है। साधुता की महत्ता संख्या की विपुलता में नहीं है, वरन् चारित्र की उच्चता और त्याग की गम्भीरता में है। उच्च चारित्रवान और सच्चे त्यागी मुनि अल्प संख्यक हों तो वे भी साधुपद की गुरुता का संरक्षण कर सकेंगे। बहुसंख्यक शिथिलाचारी मुनि उस पद के गौरव को बढ़ाने के बदले घटायेंगे ही। अतएव मध्यवर्ग की स्थापना का परिणाम यह भी होगा कि जो पूर्ण त्यागी और पूर्ण विरक्त होंगे, वही साधु बनेंगे और शेष लोग मध्यवर्ग में सम्मिलित हो जाएंगे। इस प्रकार साधुओं की संख्या कदाचित घटेगी तो भी उनकी महत्ता बढ़ेगी। जो लोग साधुता का पालन पूर्णरूपेण नहीं कर सकते या जिन लोगों के हृदय में साधु बनने की उत्कंठा नहीं है, वे लोग किसी कारण विशेष से, वेश धार

करके साधु का नाम धारण कर भी लें तो उनसे साधुता के कलंकित होने के अतिरिक्त और क्या लाभ हो सकता है ? इसलिए ऐसे लोगों का मध्यम वर्ग में रहना ही उपयोगी और श्रेयस्कर है। इन सब दृष्टियों से विचार करने पर समाज में तीसरे वर्ग की विशेष आवश्यकता प्रतीत होती है।"

साधुत्व को अक्षुण्ण बनाये रखने एवं सामान्य गृहस्थों को गृहस्थी के प्रपंचों से विरक्त होकर त्याग, ब्रह्मचर्य, शास्त्र ज्ञान और निःस्वार्थ सेवा भावना-पूर्वक तीसरे वर्ग की स्थापना का दिग्दर्शन युगद्रष्टा आचार्यश्री जी की इस युग को एक अन्यतम विशिष्ट देन है।

श्री अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स के सन् १९३२ के अजमेर अधिवेशन में इस तीसरे वर्ग की योजना को स्वीकार किया गया और जयपुर निवासी रत्न-व्यवसायी धर्मवीर श्री दुर्लभ जी भाई जौहरी ने उसी समय उसमें प्रविष्ट होने की पहली घोषणा भी की परन्तु समय की परिपक्वता न होने के कारण उस समय उसे क्रियान्वित नहीं किया जा सका।

समय के साथ इन विचारों की उपादेयता और उन्हें मूर्त्तरूप प्रदान करने की आवश्यकता निरंतर बढ़ती गई। श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ ने गत वर्ष देशनोक अधिवेशन में आचार्य श्रीजी के विचारों की कड़ियों को जोड़कर निवृत्ति, स्वाध्याय, साधना और सेवा के चार मूल आधारों पर आधारित उपासक, साधक और मुमुक्षु की उत्तरोत्तर विकासशील तीन श्रेणियों की परिकल्पना के साथ इस ठोस एवं व्यावहारिक योजना को **"वीर संघ"** नाम देकर मूर्त्तरूप प्रदान किया है। तीनों श्रेणियों को मिलाकर अब तक लगभग ७५ सदस्य बन चुके हैं। जयपुर के ही रत्न व्यवसायी मानवरत्न त्यागमूर्ति, श्री गुमानमलजी चोरड़िया इसके प्रथम प्रधान निर्वाचित हुए हैं।

वीर संघ में अर्थ और पद का महत्व न रख कर कर्म और सेवा की ही प्रधानता रखी गई है। तदनुसार अध्यक्ष, मन्त्री, कोषाध्यक्ष के पदों के स्थान पर कार्य योजना के अनुसार व्यवस्था प्रमुख, स्वाध्याय प्रमुख, साधना प्रमुख, सेवा प्रमुख एवं प्रथम सेवक के रूप में प्रधान का चयन किया जाता है।

धर्मवीर लोंकाशाह, लवजीऋषि आदि नवक्रांति का सूत्रपात करने वाले मनीषियों के सदृश यह योजना भी आज के संदर्भ में एक नए युग का सूत्रपात है।

नोट— योजना का विस्तृत विवरण **"वीर संघ"** रूप रेखा एवं नियमावली पुस्तिका में वर्णित है।

द्वितीय खण्ड

श्रीमज्जवाहराचार्य

जीवन-प्रसंग

ज्योतिर्धर आचार्य

● प्रवर्तक पंडितरत्न श्री विनयऋषि जी म.

अप्रतिम संत :

मेरे सद्‌भाग्य से मुझे कुछ दिन तक स्व० पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. की सेवा का लाभ मिला। वे सिर्फ स्थानकवासियों के नहीं, परन्तु पूरे जैन समाज के अप्रतिम, अद्वितीय संत थे। आप श्रमण एवं आर्य–संस्कृति के महान् संरक्षक थे। आपश्री युगद्रष्टा, युगप्रवर्तक, क्रांतिकारी, जैन समाज की महान् विभूति के रूप में ज्योतिष्मान् नक्षत्र की तरह चमके।

प्रखर वक्ता :

आपकी वक्तृत्व शक्ति अलौकिक एवं अजोड़ थी। आप जब प्रवचन फ़रमाते थे तब श्रोताजन मंत्रमुग्ध हो जाते थे। बुलन्द आवाज, विवेचन शक्ति, नवीन स्फूर्तिदायक दृष्टि की विशालता एवं मानवता के महान् पुरस्कर्ता के रूप में आप जनता के हृदय में सहज स्थान प्राप्त कर लेते थे।

दो प्रश्न :—

एक वार एक आर्य-समाजी भाई ने आकर उनसे दो प्रश्न किए— "आपके जैनधर्म में शुद्धि एवं पुनर्विवाह के लिए कुछ स्थान है ?" उत्तर में आपने फरमाया कि "हमारे शास्त्रों में शुद्धि के १० प्रकार वताये हैं, छोटा या वड़ा दोप लग जावे तो उसके लिए भी प्रायश्चित्त का विधान है और उसे प्रायश्चित्त देकर शुद्ध किया जाता है और समानता का स्थान दिया जाता है।

पुनर्विवाह के लिए हम कुछ नहीं कह सकते परन्तु एक मनुष्य स्वच्छंदतापूर्वक जीवन विताता है तो वह व्रत प्रत्याख्यान लिया हुआ भी श्रावक की श्रेणी में नहीं आ सकता और पुनर्विवाह करने वाला श्रावक, व्रत–ग्रहण करके उसका पालन करके श्रावक हो सकता है।"

निसर्ग के प्रति प्रेम :

आपको विज्ञान एवं कृत्रिमता की अपेक्षा कुदरत के प्रति विशेष प्रेम था । आपने कहा था— शिवनिवास पहाड़ी का जो सौंदर्य है, वह एम्पायर बिल्डिंग से विशेष है । वे हमेशा करीब ६ मील घूमते थे, उस समय आपके मस्तिष्क में अनेक प्रकार की स्फूर्तिदायक व जीवनोपयोगी कल्पनाएं उद्भूत होती थीं । उनका ये व्याख्यान में उपदेश के रूप में उपयोग करते थे ।

संपत्ति—लक्ष्मी :

एक श्रोता ने आपसे संपत्ति—लक्ष्मी के संबन्ध में प्रश्न पूछा तो उत्तर में आपने फरमाया कि "पिता की सम्पत्ति पर पुत्र का अधिकार नहीं है और उसका उपयोग भी पुत्र नहीं कर सकता, क्योंकि पिता संपत्ति—लक्ष्मी का पति है तो वह पुत्र की माता हुई और उसका उपयोग करना माता के साथ दुर्व्यवहार करने के समान है ।

भारत के दो जवाहर :

पूज्यश्री जब सौराष्ट्र में विचरण कर रहे थे तब राणपुर पधारे, उस समय उनके जाहिर प्रवचन होते थे । वहां पर एक प्रसिद्ध पत्र के संपादक भी सुनने के लिए आते थे । उन्होंने अपने अखबार में आपका परिचय देते हुए कहा कि "भारत में एक जवाहर नहीं है परन्तु दो जवाहर हैं। एक धर्मनेता जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज एवं दूसरे राष्ट्रनेता हृदय—सम्राट श्री जवाहरलाल जी नेहरू ।"

आचार्य श्री जी अपने प्रवचन में सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, राष्ट्रीय, नैतिक एवं शैक्षणिक उन्नति के संबन्ध में हमेशा नई दिशा देते थे ।

ऐसा दूध पीना खून के बराबर :

आचार्यश्री घाटकोपर से बम्बई की ओर विहार कर रहे थे तब वे कुर्ला के नजदीक पधारे । वहां पर गाय, भैंस एवं बैल के कटे हुए मस्तकों से भरी हुई गाड़ियां देख कर पूछा "यह क्या है ?" तब श्रावकों ने उत्तर दिया, "महाराज साहब ! ये बांद्रा के कतलखाने में कटे हुए पशुओं के मस्तक हैं।" तब सभी बातों की जानकारी करने के बाद "जहां ऐसी हिंसा होती है, उस शहर में पैर नहीं रखना ।" यह कह कर वापिस लौट कर घाटकोपर आये और वहां पर चातुर्मास में तत्सम्बन्धी उद्बोधनों से "सार्वजनिक प्राणी दया" संस्था की स्थापना की और कतलखाने में और कसाइयों के हाथों कटते

हुए पशुओं को बचाने का उपदेश दिया। वे बम्बई और बड़े शहरों में दूध को पीना खून के बराबर मानते थे, क्योंकि कृत्रिम रीति से दूध निकाला जाता था और दूध देना बन्द होने के बाद गाय-भैंस कसाई को बेच दी जाती थीं।

संगठन-प्रेमी :

ई० सन् १९३३ में अजमेर साधु-सम्मेलन में उन्होंने स्थानकवासी श्रमण-संघ के संगठन के लिए बहुत परिश्रम किया परन्तु सफलता न मिली। उनका फरमाना था कि एक संघ, एक समाचारी एवं एक आचार्य का होना अनिवार्य है, परन्तु विचारभेद के कारण सफल न हो सके।

आत्मबल :

वि० सं० १९८० में जब आपको सातपुडा जहरी छाला हो गया था तब आपके हाथ का आपरेशन बिना क्लोरोफार्म सुंघाये किया गया। उस समय डॉ० मुलगांवकर आदि आश्चर्यचकित हो गये। ऑपरेशन के बाद कई दिनों तक विश्रांति लेनी पड़ी। तब आपने कहा कि बीमारी ने मेरे पर बड़ा उपकार किया, मुझे चिन्तन-मनन के लिए अच्छा समय मिला।

सर्वथा निर्लिप्त :

वे परिग्रह से बहुत अलिप्त रहते थे। उनकी मान्यता थी कि जैसे विषयवासना का त्याग अर्थात् चौथे महाव्रत का जितनी कट्टरता से पालन करते हैं, उतनी ही कट्टरता से पांचवें महाव्रत का पालन करना चाहिए। पांचवां महाव्रत परिग्रह का—मूर्छा त्याग का है और परिग्रह भी एक आस्रव है। पूज्य श्रीलाल जी महाराज साहब के स्मारक के लिए बीकानेर श्रीसंघ ने फंड किया परन्तु आप उससे बिल्कुल अलिप्त रहे। आपने कहा कि यह मेरा साधु-धर्म नहीं है कि मेरे वचन से फंड हो और उसकी अव्यवस्था हो तो जवाबदारी मेरे पर आती है।

वाणी के जादूगर :

आपश्री हरिश्चन्द्र-तारा, चंदनबाला, सुदर्शन सेठ आदि की कथाएं व्याख्यान में आधुनिक शैली से समझाते थे। उन व्याख्यान-कथाओं की पुस्तकें जब प्रकाशित हुईं, तब जनता में उनकी काफी रुचि पैदा हुई। लोग दिलचस्पी से उन्हें पढ़ते थे। "हरिश्चन्द्र-तारा" पुस्तक जब श्री मणिलाल जी कोठारी ने जेल में पढ़ी तब उन्होंने कहा कि मैंने बहुत सी हरिश्चन्द्र-तारा के सम्बन्ध

में पुस्तकें पढ़ी हैं परन्तु यह तो सबसे अनूठी है । ऐसे उत्तम भाव एव विचार-धारा दूसरे स्थान पर मिलना मुश्किल है ।

राष्ट्रीय विचारों के धनी :

आपश्री ने "धर्म और धर्मनायक" पुस्तक में फरमाया है कि जब राष्ट्रधर्म की रक्षा होगी तभी सत्य–धर्म की रक्षा हो सकेगी । श्री ऋषभदेव भगवान् ने पहले राष्ट्रधर्म की शिक्षा और व्यवस्था दी। बाद में आत्मधर्म के लिए उपदेश दिया । तात्पर्य यह है कि राष्ट्र सुरक्षित रहेगा तो ही धर्म भी सुरक्षित रहेगा, अतः राष्ट्र की सेवा करना सब देशवासियों का कर्त्तव्य है ।

हरिजनों से प्रेम :

एक बार उदयपुर के व्याख्यान में आपने कोठारी साहब से पूछा, "कोठारी जी ! गन्दगी करने वाला अच्छा या गन्दगी दूर करने वाला अच्छा ?" "बापजी ! गन्दगी साफ करनेवाला अच्छा है ।" "ये हरिजन आपकी गन्दगी को साफ करते हैं तो वे अच्छे हैं न । तो उनसे क्यों घृणा की जाती है ? उनको दूर क्यों बिठाया जाता है ? आप गन्दगी करो और वे दूर करें तो आप अच्छे और वे बुरे, यह कहां का न्याय ?"

क्रांतिकारी :

धार्मिक, सामाजिक रिवाजों में आपने बड़ी क्रांति की । आप जब जलगांव से रतलाम पधारे तब दर्शनार्थियों को मीठा भोजन जिमाने की अपेक्षा सादा भोजन जिमाने का उपदेश दिया । रतलाम श्रीसंघ ने सादे भोजन का प्रबन्ध किया तो दर्शनार्थी लोग चर्चा करने लगे, तब भरी सभा में व्याख्यान के समय वर्धमान जी सेठ को पू. महाराज सा. ने पूछा - वर्धमान जी सेठ ! आपका भाई आपके घर पर आवे तो आप सादा भोजन जिमावो या मीठा ? तब सेठजी ने कहा—"बापजी ! सादा भोजन जिमावें ।" तब सेठजी को पूछा गया, "ये सब दर्शनार्थी आपके स्वधर्मी, धर्मबंधु बन कर आये हैं या जमाई बन कर आये हैं ?" "बापजी ! ये सब स्वधर्मी बन्धु बन कर आये हैं, जमाई बन कर नहीं ।" "तब उनको सादा भोजन देना ही बराबर है, मीठा भोजन देना योग्य नहीं है ।" फिर श्रोताओं से पूछा कि–देवानुप्रियो ! आप सब स्वधर्मी बन्धु बन कर आये हैं या जमाई बन कर ? तब सभा में से एक ही आवाज सुनाई दी, "अन्नदाता ! हम सब स्वधर्मी बन्धु बन कर आये हैं ।"

❀ ❀

अविस्मरणीय प्रसंग

● श्री मगनमुनिजी म. सा.

जैन समाज के प्रहरी, जिनवाणी के संदेश-वाहक, धर्म के प्रभावक जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी म. सा. का शताब्दी महोत्सव मनाया जा रहा है। शताब्दी महोत्सव के उपलक्ष्य में 'श्रमणोपासक' विशेषांक छपने की तैयारी में है, ऐसे समय मेरी कलम भी कैसे रुक सकती है ?

वात्सल्य वारिधि :

सं० १९९६ में, माघ महीने के शुक्लपक्ष की ११ के दिन मेरी दीक्षा सम्पन्न हुई। आध्यात्मिक चिकित्सक उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी म. सा. का शिष्य बनने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। प्रथम चातुर्मास कानूर एवं द्वितीय चातुर्मास सरदारशहर में गुरुदेव के सान्निध्य में हुआ। एक दिन गुरुदेव ने पूछा कि यदि अन्यत्र किसी की सेवा में जाने का मौका मिले तो तुम जा सकते हो क्या ? मैंने प्रत्युत्तर में कहा, पूज्य आचार्य श्री की सेवामें जाने के लिये मैं किसी भी क्षण तैयार हूँ। गुरुदेव ने फरमाया-आचार्य श्री की इच्छा है, मगनमुनिजी मेरी सेवा में रहें तो ठीक है।

आज्ञा शिरोधार्य कर चातुर्मास समाप्ति के बाद दो सन्तों के साथ मैं आचार्य श्री की सेवा में पहुँचा ! आचार्य श्री ने वात्सल्य भाव से कृपा-पूर्ण दृष्टि डालते हुए प्रश्न किया—मैंने किस आशय से बुलाया तुझे, ज्ञात है ? फिर आशय बताते हुए कहा कि-जिस प्रकार तपस्वी श्री हमीरमल जी म. सा. को उचित समय में संथारा करवा कर उनका अंतिम कार्य सिद्ध किया, उसी प्रकार समय आने पर मुझे भी संथारा देकर मेरा अतिम कार्य सफल करना। मेरा हृदय स्नेह सने शब्दों को सुनकर गद्‌गद् हो गया। मैंने कहा 'एक नवदीक्षित छोटे संत पर अगाध कृपा का भाव, आपकी महानता का द्योतक है।'

समता एवं समानता की साकार प्रतिमा :

समय कभी एकसा नहीं रहता । सुख-दुःख का चक्र निरन्तर चालू रहता है । जीवन में साता एवं असाता के उदय का क्रम बना रहता है, कभी तीव्र परिमाण में, कभी मंद परिमाण में । सं. १९९९ के साल में भीनासर विराजित आचार्य श्री के कमर में ९ इंच लंबा चौड़ा जहरीला फोड़ा हुआ । फोड़े का ड्रेसिंग एवं दवा देने का लाभ मुझे मिला । ड्रेसिंग करते समय ऐसा प्रतीत होता था, मानों आचार्यश्री समता-भाव में स्नान कर रहे हैं । तीव्र वेदना को वे हंसते-हंसते सहन करते थे । भीनासर एवं गंगाशहर के मध्य में रहे हुए बांठियाजी के बंगले के हाल में विराजित आचार्य श्री को एक दिन रात के २ बजे गरमी बहुत ही महसूस होने लगी । आपने फरमाया-असह्य गरमी से मैं बेचैन हो गया हूं, अतः मुझे हाल के बाहर बरामदे में ले चल। मैंने सोचा-अब किसे जगाऊं ? मुझे विचार-मग्न देख आचार्य श्री ने कहा-अरे ! तू क्या सोच रहा है, तेरे में १०० व्यक्तियों की शक्ति है । जरा प्रमाद दूर कर । इसी वाक्य को तीसरी बार जोश में कहा । मैंने उस दिव्य, भव्य, सौम्य, एवं सौजन्य मूर्ति की ओर देखा । आश्चर्य यह कि-आचार्य श्री के प्रभाव और प्रेरणा से ओतप्रोत शब्दों ने जादू का काम किया और उसी क्षण मुझे एक युक्ति सूझी; आत्म विश्वास जागृत हुआ । उसी के बल पर आचार्य श्री को एक पाट से दूसरे पाट पर बैठाते हुए मैं अकेला उन्हें बरामदे में ले आया । ६ व्यक्तियों का कार्य अकेला कर सका । यह आचार्य श्री की कृपा-दृष्टि का ही सुफल था । आचार्य श्री ने प्रसन्न होकर कहा—आलस्यो हि मनुष्याणां शरीरस्थो महारिपुः । शरीर में रहे हुए आलस्य-शत्रु को नष्ट कर, प्रमाद को दूर करेगा तो हर कार्य में सफलता प्राप्त होगी । महापुरुषों का प्रत्येक शब्द प्रेरणाप्रद होता है तथा दृष्टि में कल्याण भावना ओतप्रोत बनी रहती है ।

करुणा-निकेतन :

एक दिन, करीब रात के २ बजे का समय था । मैं एवं बीकानेर वाले चौथमल जी म. सा. आचार्य श्री के इर्द गिर्द खड़े थे । उसी समय मेरे दोनों पैरों के बीच टकराता हुआ सर्प निकला । बाहर से आते हुए प्रकाश में सर्प देखते ही चौथमल जी म. सा. बोल उठे—मगन मुनिजी ! तुम्हारे पैरों के बीच होकर सर्प जा रहा है । मैंने कहा-कुत्ता पूंछ हिलाता होगा । देखा तो सर्प था । सर्प को पकड़ने की इच्छा प्रकट की तो आचार्य श्री ने फरमाया, पकड़ने से सर्प को कष्ट होगा, इसके पीछे २ जाकर जहां जाता है वहां इसे

छोड़ आ ।' सवेरे बगीचे तक निशान देखे गये । वाद में चम्पालाल जी वांठिया ने वताया कि यह वहुत बड़ा सर्प, यहां कई वर्षों से रहता है, पर कभी किसी को डसा नहीं । इस प्रकार प्राणी मात्र के प्रति आचार्य श्री के हृदय में करुणा का स्रोत वहा करता था ।

नम्रता की अप्रतिम विभूति :

आचार्य श्री का अंतिम समय जानकर मैंने उपाचार्य श्री से नम्र निवेदन किया कि आप इन्हें संथारा करवा दें । एक दो दिन चले तो कोई परवाह नहीं, लेकिन डाक्टरों ने तथा श्रावकसंघ ने मना किया । तीसरे दिन रूई द्वारा दूध पिला रहा था, तव गले से घर्-घर् आवाज आने लगी । जवान वंद हो गई । मैंने उपाचार्य श्री से कहा-अव क्या करना ? उपाचार्य श्री ने कहा म. सा. अपने मुंह से कह दें, तो मैं अभी संथारा करवा दूं । वाद में मैंने अपनी वुद्धि-अनुसार उपचार किया तो कुछ क्षण के वाद आचार्य श्री वोल उठे । मैंने कहा, समय चूक जाने से कार्य नहीं होगा । १२ बजे विधि-सहित संथारा दिया गया । संथारा देने के वाद आचार्य श्री के अंतिम उद्‌गार थे, "मुझे कोई वंदन नहीं करना । मैं सबसे छोटा हूँ ।" ऐसी नम्रता एवं लघुता ने ही आपको आचार्य जैसे श्रेष्ठ एवं उच्च पद पर प्रतिष्ठित किया । ५ घंटे के वाद, सं. २००० में आषाढ़ शुक्ला अष्टमी के दिन आपका स्वर्ग-वास हुआ ।

★

अहिंसा का पालन करो । जीवन को सत्य से ओतप्रोत वनाओ । जीवन-रूपी महल की आधारशिला अहिंसा और सत्य हो । इन्हीं की सुदृढ़ नींव पर अपने अजेय जीवन-दुर्ग का निर्माण करो । विलासिता तजो । संयम और सादगी को अपनाओ ।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.)

एक योग्यतम अनुशास्ता

● श्री मधुकर मुनि

आचार्यश्री जी अपने युग के एक योग्यतम अनुशास्ता थे। वे आचार्य-सम्पदा से सम्पन्न आचार्य थे। यद्यपि वे एक सम्प्रदाय–विशेष के आचार्य थे, परन्तु उनका प्रभाव सर्वतो–मुखी था।

उनके जीवन में शान्ति, क्रान्ति व संयम साधना का सुन्दर त्रिवेणी–संगम था। मन में मनस्विता, वाणी में ओजस्विता, मुख-मंडल पर ब्रह्मतेजस्विता आदि अनेक प्रमुख गुणों के कारण आचार्यश्री जी जन–जन के आकर्षण के केन्द्र बने हुए थे।

संस्कृति की संयोजना की ओर और समाज में इतस्ततः प्रसृत रुढ़िवादिता और अंध–विश्वासों को दूर करने की ओर उनकी आभामयी उद्घोषणा थी।

वे स्वयं शुद्ध संयम साधना के धनी थे। साधु–साध्वियों व श्रावक–श्राविकाओं के लिये भी सतत संयम–निष्ठ होकर रहने की प्रेरणा निरंतर देते रहते थे वे।

अपने विचारों में पूर्णतः सुदृढ़ रह कर भी वे दूसरों के विचार सुनने व समझने की सजग क्षमता रखते थे।

अल्पारम्भ व महारम्भ को लेकर उस समय जैन–समाज में प्रमुखतः स्थानकवासी जैन समाज में काफी ऊहापोह चलता था। इस बात को लेकर जन–मस्तिष्क में नानाविध प्रश्न प्रस्फुटित होते रहते थे। सही समाधान न पाकर वे अपने ही प्रश्न–जाल में उलझते जाते थे। आचार्यश्री जी के सम्मुख भी ऐसी प्रश्नावली आई। उन्होंने इस पर गहरा चिन्तन–मनन किया। उनके इस निदिध्यासन से जो निष्कर्ष–नवनीत निकला, उससे जनता को शुद्ध श्रद्धा का पोषण मिला।

कृषि व अन्य ऐसे व्यवसाय उनकी तर्क-सम्मत विचार-धारा में महारंभ के कार्य नहीं माने गये। बुद्धिजीवी लोगों को उनकी यह विचार-धारा बहुत पसन्द आई।

कुछ समय पूर्व स्थानकवासी जैन समाज में गन्दे रहने की प्रवृत्ति को उच्च स्थान दिया जाने लगा था। आज भी समाज में यत्र-तत्र ऐसी मान्यता बल पकड़ी हुई है। जिन लोगों ने आचार्य श्री जी के श्रीमुख से साक्षात् प्रवचन सुने हैं या जिन्होंने उनके प्रवचन साहित्य का अवगाहन किया है, उन्हें यह जानकारी मिली होगी कि आचार्य श्री जी की मान्यता में इस विचार-धारा को कहीं भी स्थान नहीं मिल पाया।

गांधी-युग का प्रभाव भी आचार्य श्री जी पर पड़ा है। वे स्वयं शुद्ध खादी व स्वदेशी वस्तुओं को ही अपने उपयोग में लाते थे। उनके प्रवचनों में लोगों को भी मिल के वस्त्र व विदेशी वस्तुओं के उपभोग को छोड़ने की प्रबल प्रेरणा मिलती थी।

मुझे उनके दर्शनों का लाभ तो बहुधा मिला परन्तु उनकी सेवा में रहने का सौभाग्य नहीं मिला। यह बात मुझे अब तक भी अखर रही है। बचपन से ही मैं उनकी विचार-धारा से प्रभावित था। आज भी मैं उनकी विचार-धारा से वैसा ही प्रभावित हूँ।

उनके संत-जीवन के श्री चरणों में मेरी शत-शत अभिवन्दना।

दूसरों को कष्ट से मुक्त करने के लिये स्वयं कष्टसहिष्णु बनो और दूसरों के सुख में अपना सुख मानो। मानवधर्म की यह पहली सीढ़ी है।

(पूज्य श्री जवाहरलालजी म.)

आचार्यश्री की वह भविष्यवाणी

● श्री देवेन्द्रमुनि

नब्ज को पहचानने वाले सन्त–रत्न :

युगपुरुष वह व्यक्ति होता है जो अपने युग को अभिनव चेतना व नवीन जागृति का सन्देश देता है। उसके विमल–विचारों में युग के विचार मुखरित होते हैं, उसकी अभय–वाणी में युग के विचार झंकृत होते हैं, उसकी कर्मठ क्रिया–शक्ति से युग को नवीन स्फूर्ति प्राप्त होती है। वह अपने युग की जन–चेतना का साधिकार प्रतिनिधित्व करता है। वह जन–जन को सही दिशा की ओर प्रयाण करने की प्रबल प्रेरणा ही नहीं देता, अपितु भूले–भटके जीवन-राहियों का पथ–प्रदर्शन भी करता है कि जिस पथ पर तू अपने मुस्तैदी से कदम बढ़ा रहा है वह सही पथ नहीं है। यदि उसी पर आंख मूंद कर चला तो भटक जायेगा और बीच में अटक भी जायेगा। अतः जरा सावधान होकर चिन्तन की चांदनी में और अनुभूति के आलोक में अपने लक्ष्य का निश्चय कर। दिल और दिमाग को स्वस्थ कर, मन की दुविधा को दूर कर, मेरे पास आ, मैं तुझे तेरे लक्ष्य पर पहुंचा दूंगा।

परम श्रद्धेय आचार्य प्रवर श्री जवाहरलाल जी महाराज सच्चे अर्थ में युगपुरुष थे। उन्होंने अपने युग की भोली–भाली जनता को श्रद्धा का पाठ पढ़ाया और चिन्तनशील व्यक्तियों को धर्म का मर्म बता कर दर्शन की दृष्टि प्रदान की। अल्पारंभ–महारंभ के सम्बन्ध में उन्होंने सूक्ष्म चिन्तन प्रस्तुत किया। श्रमण–मर्यादा में रह कर राष्ट्रीय विचारों की अलख जगाई। खादी आदि के सम्बन्ध में जम कर प्रचार किया। श्रमण–शिक्षा के सम्बन्ध में नवीन चिन्तन दिया। मैंने आचार्य प्रवर के साहित्य को पढ़ा है, खूब जम कर पढ़ा है। उसके आधार से मैं साधिकार कह सकता हूं कि वे एक महान् क्रांतिकारी, युग की नब्ज को पहचानने वाले सन्तरत्न थे।

मैंने आचार्यश्री के दर्शन बहुत ही लघु वय में किये थे । । मेरा सांसारिक पूरा परिवार आचार्यश्री के परम भक्तों में था। जहां भी उनका वर्षावास होता, वहां महीने दो महीने के लिए चौका लगा कर उनकी सेवा के लिए रह जाता । रतलाम और कपासन के वर्षावास में मैं भी अपने अभिभावकों के साथ गया था ।

विक्रम सं० १९९१ में आचार्यश्री का चातुर्मास कपासन था । उदयपुर से सन्निकट होने के कारण पूरा परिवार आचार्यश्री के दर्शनार्थ वहां पहुंचा था। मैं भी उस समय साथ था । उस समय मेरी उम्र तीन वर्ष की थी ।

जब मैं सिर्फ इक्कीस दिन का था, तब मेरे पिताजी का अठाईस वर्ष की उम्र में संथारे के साथ स्वर्गवास हुआ था । माताजी की उम्र छोटी थी, दादाजी में धार्मिक भावनाएं कूट-कूट कर भरी थीं। उनकी प्रेरणा से मेरी माताजी उदयपुर में स्थानापन्न विराजिता परम विदुषी महासती श्री सोहनकुंवर जी म. की सेवा में प्रतिदिन जातीं और थोकड़े व शास्त्र कंटस्थ करती थीं । उनका अधिकांश समय सतीजी की सेवा में व्यतीत होता था । मैं भी मां के साथ दिन भर सतियों के स्थान पर ही रहता था । आर्य वज्रस्वामी की भांति मुझे भी साध्वियों से धार्मिक संस्कार मिले थे और साधुवेश में रहना मुझे बहुत ही सुहाता था । जब मैं व्याख्यान सुनने के लिए जाता, साधुवेश में ही जाता था ।

दीक्षा ले तो इन्कार मत होना :

एक दिन मैं साधुवेश में अपने दादाजी के साथ गया था । आचार्यश्री शौचभूमि के लिए बाहर पधारे हुए थे । मैं बाल-सुलभ प्रकृति के कारण चबुतरी से लगे हुए आचार्यश्री के पट्टे पर, जो छोटा पट्टा प्रवचन के लिए लगा था, उस पर जाकर बैठ गया और आचार्यश्री के प्रवचन की नकल करने लगा । दादाजी आदि अपने स्वाध्याय में तल्लीन थे । उनका ध्यान मेरी ओर नहीं था । इतने में आचार्यश्री अपने शिष्यों सहित पधारे, अपने बैठने के पट्टे पर मुझे साधुवेश में बैठा हुआ देख कर उनकी पैनी दृष्टि मुझ पर गिरी और उन्होंने सभी बैठे हुए व्यक्तियों को सम्बोधित कर पूछा-यह लड़का किसका है ?

दादाजी आगे बढ़े, अपने अपराध की क्षमा याचना करने के लिए, किन्तु आचार्यश्री ने मेरे सिर पर हाथ रख कर दादाजी को कहा—बड़ा होने पर यदि यह दीक्षा ले तो इन्कार मत होना । यह होनहार लड़का है, जैनधर्म की ज्योति को जगायेगा ।”

दादाजी व माताजी ने आचार्यश्री से नियम ले लिया कि हम इन्कार न करेंगे ।

मैंने पूज्य गुरुदेव महास्थविर श्री ताराचन्द जी म., राजस्थान केशरी अध्यात्मयोगी श्री पुष्करमुनि जी म. के पास ९ वर्ष की लघुवय में दीक्षा ग्रहण की ।

श्रमण बनने के पश्चात् सर्वप्रथम आचार्यश्री के प्रधान अन्तेवासी आचार्यश्री गणेशीलाल जी म. के सादड़ी सन्त–सम्मेलन के अवसर पर दर्शन हुये । मुझे देख कर उनका हृदय आनन्द से विभोर हो गया । वे मुझे बहुत ही स्नेह करते थे । उसके पश्चात् जब भी उनके दर्शन हुए और साथ में रहने का सुअवसर मिला, उस समय वार्तालाप के प्रसंग में आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. की भविष्य–वाणी दुहराया करते थे ।

मैं चिन्तन करता हूँ—मेरे में कुछ भी सामर्थ्य नहीं है, पर आचार्य प्रवर के आशीर्वाद का ही प्रतिफल है कि मैं साधना व साहित्य के क्षेत्र में अपने कदम आगे बढ़ा रहा हूं ।

मैं उस युगपुरुष आचार्यदेव के श्रीचरणों में अत्यन्त श्रद्धा के साथ श्रद्धांजलि समर्पित करता हूं ।

❀ ❀ ❀

जैसे काल का अन्त नहीं है, वैसे ही आत्मा का भी अन्त नहीं है । यह बात जानते हुए भी दो दिन टिकने वाली चीज के लिए प्रयत्न करना और अनन्त काल तक रहने वाले आत्मा के लिए कुछ भी प्रयत्न न करना, कितनी गम्भीर भूल है !

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज)

इष्ट हमारा बने वही जो मंत्र आपने है प्रेरा

● श्री केसरीचन्द सेठिया

चुम्बकीय व्यक्तित्व :

आचार्यश्री से मेरा सर्वप्रथम साक्षात्कार कब और कहां हुआ, मुझे याद नहीं, किन्तु उनके सम्पर्क में आने का, उनके प्रवचन सुनने का सुअवसर अनेक बार मिला। गौर वर्ण, विशाल काय, तेजस्वी मुखमंडल पर स्मित–हास्य, ब्रह्मचर्य एवं साधुत्व का तेज, बच्चों की सी सरलता और न जाने कितनी–कितनी भावनावों का सम्मिश्रण एक ही स्थान पर एकत्र हो गया था। उनका अथाह सागर सा गहन, अद्भुत व्यक्तित्व था। जिसका एक बार उनसे साक्षात्कार हो जाता, वह उनका होकर रहता, उनकी ओर खिचा चला जाता। ऐसा लगता, जैसे उनके सारे शरीर में चुंवक लगा हो।

मेरा जन्म जिस सेठिया परिवार में हुआ, वह स्थानकवासी समाज में अग्रणी माना जाता है। परिवार के लोग जहां भी आचार्यश्री का चातुर्मास होता, अवश्य जाते। मैं प्रारम्भ से ही अन्ध श्रद्धालु नहीं रहा वरन् सच तो यह है कि वहुत सी रूढ़िगत परम्पराओं को मानने वाले लोग रूढ़ियों के इतने अधिक कायल हो गये थे कि उन वातों के औचित्य–अनौचित्य पर विचार करना पसंद ही नहीं करते थे। पर आचार्यश्री क्रांतिकारी विचारों के प्रवुद्ध चिन्तक थे। इसीलिए मैं उनसे प्रारम्भ से ही बड़ा प्रभावित रहा।

दूरदृष्टि और गतिशील व्यक्तित्व :

पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के समय में साधुओं का विद्याध्ययन नहीं के वरावर था। या फिर कुछ थोकड़े, एक आध शास्त्र के वाचन से ही इतिश्री मान लेते थे। आचार्यश्री की दूरदृष्टि ने देखा कि जिस गति

से समय बदल रहा है, अगर साधु-समाज ने संस्कृत, प्राकृत एवं अन्य विषयों का अध्ययन नहीं किया तो कोई आश्चर्य नहीं कि समाज के युवकवर्ग उनसे दूर, अति दूर होते जायेंगे। पंडितों से न पढ़ने की परम्परा में उन्होंने समयानुसार सुधार किया। कहा— जब तक कुछ साधु इस योग्य तैयार नहीं हो जाते कि वे अन्य साधुओं को विद्याध्ययन कराने में सहायक हो जाएं, तब तक वे पंडितों से अध्ययन करें। यही कारण है कि आचार्यश्री स्वर्गीय पंडितरत्न श्री घासीलाल जी म. सा., स्वर्गीय पूज्य श्री गणेशीलाल जी म. सा. जैसे अनेक विद्वान साधुओं को तैयार कराने में सफल हुए। पंडित श्री घासीलाल जी म. सा. ने तो अपने जीवन का लक्ष्य ही शास्त्रोद्धार बना लिया था। कुछ वर्षों पूर्व अहमदाबाद में उनके अंतिम दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। जहां वे विराजित थे, उस स्थान पर केवल उनका चेहरा ही दिखता था। इधर-उधर बड़े-बड़े ग्रंथ पड़े थे जिनसे उनकी सारी देह ढक गई थी। वार्तालाप में उन्होंने कहा कि आज जो कुछ भी बन पाया है, जो कुछ भी शासन की सेवा कर रहा हूं, वह आचार्य गुरुदेव की महती कृपा का ही फल है। श्री गणेशीलाल जी म. सा. पर शासन की अन्य जिम्मेदारियां आ पड़ीं, अतः वे इन सब कामों में अधिक समय नहीं दे सके। उनकी सरलता, भद्रता, नम्रता, मृदुता, उच्च साधुत्व, क्षमा आदि इतने गुण थे कि पूरे साधु-समाज में उपाचार्य के रूप में प्रतिनिधित्व मिला।

ज्ञानपिपासु और जिज्ञासा :

जो लोग प्रारम्भ से ही आचार्यश्री के सम्पर्क में आए, वे जानते थे कि उन्होंने स्वयं जहां भी अध्ययन का, ज्ञान की उपलब्धि का अवसर मिला, उसका लाभ लिया। अन्य-अन्य धर्मों का भी तुलनात्मक अध्ययन किया। नए-नए ज्ञान सीखने की पिपासा अंतिम समय तक उनमें थी।

निराली प्रवचन शैली :

प्रवचन देने की उनकी अपनी, निराली शैली थी। प्रारम्भ में विनयचंद चौवीसी में से या अन्य किसी प्रार्थना की २, ४ कड़ियों के साथ अपना प्रवचन प्रारम्भ करते और उसी के माध्यम से घन्टों जिस विषय पर बोलना होता, धाराप्रवाह बोलते। जिस विषय को ले लेते, उसका बड़े ही सुन्दर ढंग से विवेचन एवं प्रतिपादन करते कि श्रोतागण मंत्र-मुग्ध हो जाते। वे अपने प्रवचनों में धार्मिक, नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि सब विषयों पर अपने मौलिक विचार रखते। समाज में फैली हुई गलत धारणाओं, मान्यताओं

का उन्होंने निवारण किया । खेती में महारम्भ मानने वाले लोगों के भ्रम को निवारण किया । समाज में फैली हुई कुरीतियों के लिए भी वे स्पष्ट विचार रखते थे । खादी के वे बहुत बड़े हिमायती थे । उनके राष्ट्रीय एवं क्रांतिकारी विचार केवल श्रावक-श्राविकाओं तक ही सीमित नहीं थे । वे साधु-समाज में भी बढ़ती हुई आत्म-प्रशंसा, शिथिलता, अपने या अपने गुरुओं के नाम से संस्थाओं के संचालन, वेशकीमती विलायती वस्त्रों (उस समय पांच पी. या ग्लासगो आदि लट्ठे का ही अधिक उपयोग था) का उपयोग, शिक्षा के प्रति उपेक्षा आदि के प्रति उन्हें सजग करते थे । वे फरमाते थे कि—साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं का चतुर्विध संघ भगवान महावीर ने गठित किया है, उसका एक दूसरे के साथ इतना घनिष्ट सम्बन्ध है, जितना कि शरीर के प्रत्येक अंग का एक दूसरे के साथ ।

विचारों में स्पष्टता :

इस संदर्भ में मुझे आज भी याद है— रात को जब प्रश्नोत्तर होते थे तो किसी ने पूछा था—आचार्य देव ! जैनधर्म तो जातिवाद को नहीं मानता फिर आप लोग हरिजनों की बस्ती में पधार कर गोचरी क्यों नहीं लेते ?

जहां तक मुझे स्मरण है, आचार्यश्री ने फरमाया था— तुम ठीक कहते हो । जैनधर्म जातिवाद को नहीं मानता । वह हमेशा गुणों का पूजक रहा है लेकिन हम जिस समाज के गुरु हैं उसमें छुआछूत की बीमारी अत्यधिक फैली हुई है । ब्राह्मण संस्कृति का काफी प्रभाव आप लोगों के गृहस्थ-जीवन पर पड़ा हुआ है । कोई भी सामाजिक उत्सव आप लोगों का उनके बिना पूरा नहीं होता । अगर आप लोगों को एतराज नहीं हो तो हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं सिर्फ वह निरामिषभोजी होना चाहिए । हममें इतना आत्मबल नहीं आया कि हम आप लोगों की उपेक्षा कर सकें । आचार्यश्री के स्पष्ट विचार सुन कर मैं अवाक् रह गया । अगर अन्य साधु होता तो अनेक प्रकार से प्रश्न को टालता ।

नियमित जीवनचर्या :

आचार्यश्री का दैनिक जीवन बहुत व्यस्त रहता । सुबह वे व्याख्यान, ध्यान, प्रार्थना, अध्ययन तथा अन्य साधु-क्रियाओं में व्यस्त रहते । वे इन सब क्रियाओं में बड़े चुस्त थे । प्रत्येक सोमवार को मौन रखते । उनकी कथनी और करनी में इतना एकाकार था कि छोटे से छोटे साधु के दिल में भी नहीं

आता कि इतनी बड़ी सम्प्रदाय के आचार्य का जीवन साधुचर्या में अन्य साधुओं से कुछ भिन्न है।

सद्धर्म का प्रचार :

तेरहपंथी सम्प्रदाय में उस समय दया-दान सम्बन्धी कुछ ऐसी मान्यताएं प्रचलित थीं जिनसे जैनधर्म के मूल मंत्र अहिंसा पर ही कुठाराघात होता था। आचार्यश्री के दिल में इसकी मार्मिक पीड़ा थी कि यह क्या हो रहा है! जिस सिद्धान्त पर हमारे धर्म की नींव है, उसी अहिंसा पर इतना भ्रांतिपूर्ण प्रचार! आचार्यश्री ने घर-घर, गांव-गांव अनेक दुःसह परिषहों कठिनाइयों को सहकर भी भ्रांति को दूर करने की चेष्टा की। खास कर इसके लिए उन्हें थली जैसे उग्र प्रदेश में विचरना पड़ा। 'सद्धर्म-मण्डन", "अनुकम्पा विचार" नामक पुस्तकों की रचना की, जो आज भी जैन-साहित्य के भंडार में अमूल्य ग्रंथ हैं। उस समय अनेक विद्वान साधु व आचार्य स्थानकवासी समाज में तथा अन्य सम्प्रदायों में थे, किन्तु यह बीड़ा सिर्फ वे ही उठा सके। उस समय आचार्यश्री को घोर परिश्रम करना पड़ा। उपलब्ध शास्त्रों, बड़े-बड़े ग्रंथों का अवलोकन चलता था रेफरेंस के लिए। सेठिया ग्रंथालय का भाग्योदय था कि उस समय उस ग्रंथालय का जितना उपयोग हुआ, शायद उसके बाद कभी नहीं।

उनके सारे व्याख्यान संकेत लिपि में लिखे जाते। बाद में 'जवाहर-किरणावली' के नाम से अनेक भागों में उनका प्रकाशन हुआ। जहां-जहां साधु नहीं पहुँच सकते. श्रावक उनको पढ़ कर व्याख्यान सुनाते हैं। यही क्यों, नव-दीक्षित साधुओं के लिए व्यक्तृत्व कला सीखने के लिए ये किरणावलियां अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई हैं।

अपार आत्मसंतोष :

अंतिम समय में आचार्यश्री काफी अस्वस्थ रहे। मुझे अच्छी तरह स्मरण है। आचार्यश्री बीकानेर में सेठिया कोटड़ी में विराजते थे। बीकानेर, भीनासर, गंगाशहर, देशनोक, नोखा आदि सारे नजदीक के निवासी चाहते थे कि आचार्यश्री हमारे यहां विराजें ताकि हम उनके पावन चरणों के दर्शन का लाभ उठा सकें। बीकानेर संघ सबसे बड़ा संघ था। आचार्यश्री ने संघ के प्रमुख श्रावकों से पूछा—सबने कहा आचार्यश्री आप हमारे यहां ही विराजें। आचार्यश्री की दृष्टि बाबूजी (भैंरोदान जी सेठिया) पर ठहर गई। आचार्यश्री

ने फरमाया—सेठियाजी, आपकी क्या राय है? बाबूजी ने बड़ी नम्रता के साथ कहा—हमारे बड़े भाग्य कि आप जैसे पुण्यवान महापुरुष यहां विराजें और हमें संत-समागम का ही नहीं, चतुर्विध संघ की सेवा का लाभ मिले। लेकिन आपकी अस्वस्थता को एवं चिकित्सकों के मत को जान कर मैं तो यही अर्ज कर सकता हूँ कि आपका भीनासर में विराजना अधिक उपयुक्त है। वहां की खुली भूमि, शुद्ध हवा, शांत वातावरण आदि आपके स्वास्थ्य के लिए अधिक अनुकूल हैं। हम गृहस्थों का क्या, हम तो किसी भी सवारी में बैठ कर आ सकते हैं। आचार्यश्री के चेहरे पर एक अपार आत्मसंतोष के भाव छा गए। जैसे वे प्रगट करते हों कि—मेरी तरह मेरे श्रावकों में भी निडर एवं विलक्षण श्रावक हैं। आचार्यश्री की एक-एक बात को याद करें तो एक स्वतंत्र पुस्तक बन सकती है। मैं अपनी 'श्रद्धांजलि' अपनी कविता की इन पंक्तियों के साथ अर्पित करता हूँ, जो सन् १९४८ में मैंने लिखी थी—

मोक्ष मार्ग के पथिक पूज्यवर,
हम कृत-कृत्य आज सारे।
तपोधनी, ऋषिवर्य! तुम्हारी,
महिमा से उज्ज्वल तारे।
... .
इष्ट हमारा बने वही जो,
नन्द आपने है प्रेरा॥

❀ ❀ ❀

सत्य विचार, सत्य भाषण और सत्य व्यवहार करने वाला मनुष्य ही उत्कृष्ट सिद्धि प्राप्त कर सकता है। जिस व्यक्ति में सत्य नहीं है, समझना चाहिए कि उसकी देह निर्जीव कठ-पुतली की तरह बने के लिए अनुपयोगी है।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.)

दिव्य विभूति

● पं० 'उदय' जैन

पूज्यश्री जवाहराचार्य ईसा की प्रारम्भिक अर्द्ध बीसवीं सदी की महान् दिव्य विभूति थे। यह युग राष्ट्रीय क्रांति का था, महात्मा गांधी की सत्याग्रह एवं स्वतन्त्रता प्राप्ति के युद्ध की विभीषिका का था। भारत की पराधीनता से जनमन ऊब चुका था। अंग्रेजों के राज्य से भारत मुक्त होना चाहता था और इसके लिये सब प्रकार के प्रयत्न चल रहे थे।

जनता स्वाश्रित बने। विदेशी सामग्री एवं विदेशी व्यवस्था से विलग हो, अपना ग्रामाश्रयी उत्पादन बढ़ावे और किसी वस्तु के लिये अंग्रेजों के आश्रित न रहे। इस तरह का स्वदेशी आंदोलन जोरों पर चल रहा था। ऐसे समय में एक दिव्य विभूति पूज्यश्री जवाहर ने भी अपना धार्मिक क्रांति का बिगुल बजा दिया। पुरानी मान्यताओं को शास्त्र विरुद्ध और जनमन को हानिकारक बताते हुए सच्चे शास्त्रीय प्रवचनों एवं साहित्य का प्रसार करने के लिये आगे आये। कई सांप्रदायिक आचार्यों ने उन्हें "निह्नव" की उपाधि से विभूषित किया। फिर भी वे बराबर अपने विचारों का प्रचार करते रहे।

आचार की प्रधानता के साथ आपने साधु समाज में हाथ कते और बुने सूत के कपड़ों का व्यवहार चालू किया। सच्चे श्रुतज्ञान का भण्डार खोल कर श्रावकों के सामने रखा। आनन्द, कामदेव आदि श्रावकों के स्वाश्रयी जीवन एवं त्यागमय व्यवहार तथा जनपालक कार्यों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया। दस धर्मों का व्याख्यान किया। श्रावकों को स्वयं उत्पादक प्रवृत्ति का भान कराया। भारत के उत्तर पश्चिम और दक्षिण प्रदेशों में भ्रमण कर राष्ट्रीयता का बोध कराया। राष्ट्र धर्म, कुल धर्म, गण धर्म आदि की उपादेयता का प्रचुर मात्रा में प्रचार किया। उनके बड़े २ श्रेष्ठि भक्त खद्दरधारी बने, व्रती बने। कृषि और पशुपालन क्रिया को अपनाया। 'पिंजरा पोल' खोले।

आपने धार्मिक शिक्षण हेतु ट्रेनिंग कालेज चलाने की प्रेरणा दी। उस समय राष्ट्रीय प्रचार-प्रसार में उनके श्रावक भक्त बहुत आगे आये।

भारत में जैन समाज के जितने राष्ट्रीय नेता हुए, वे प्रायः उनके भक्त थे। उनके भक्त स्पीकर, विधायक, लोक सभा सदस्य और मंत्री बने। जेलों में गये। राष्ट्रीय प्रोग्रामों में आगे आये। गुरुकुल खोले और समय की पुकार के साथ सभी प्रकार के योग दिये।

वह दिव्य विभूति जिधर भी विहार करते हजारों भक्त जन आगे-पीछे चलते। भाषण करते तो मुग्ध होकर सुनते। उनका साहित्य, उस समय और इस समय के लिये बड़ा ग्राह्य है। उनके युग में उनके साहित्य और भाषण की बड़ी धूम थी। भारत के बड़े २ नेता—गांधी, नेहरू, मालवीय आदि उनके भाषणों में आये और उनकी दिव्य शरीराकृति एवं विचारों तथा प्रवृत्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा की। "यदि जवाहर साधु न होता, तो यह भारत का महान् नेता बनता" यह वाणी सब के मुख से उच्चरित होती।

जन-जन के मन में एक बार इस दिव्य विभूति ने अपना नाम, काम और वाणी को बिठा दिया। महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, उत्तर-प्रदेश, दिल्ली और मध्य प्रदेश में जहां देखते उन्हीं के श्रावकों का, भक्तों का और मानने वालों का विस्तार था। सारी कान्फ्रेन्स उनके भक्तों से भरी थी। उनकी वाणी का सभी जगह बड़ा आदर था। सच्चे मायने में एक आचार्य के नाते जैन और अजैन समाज को समयानुकूल जो कुछ वे दे सकते थे, सब कुछ दिया, जिसे आज का समाज भूल नहीं सकता।

उनकी शरीराकृति इतनी आकर्षक थी कि उनके दर्शन मात्र से जनता झुक जाती थी। उनका ध्यान, उनका ज्ञान और उनका तेज ऐश्वर्य-युक्त था। दिव्यता निखरती रहती थी। देवत्व झलकता रहता था। किसी भी शक्तिधर नेता या मानव की शक्ति उनके सामने सवाल-जवाब करने की नहीं होती थी। वे जब प्रवचन के पूर्व प्रार्थना आरंभ करते तो सारी जनता उनके दिव्य चेहरे और आसनयुक्त शरीर पर मोहित हो जाती। सारा समव-सरण शांत और नीरव होकर प्रार्थनामय हो जाता। हजारों की संख्या में जनता प्रवचन श्रवण में सम्मिलित होती, लेकिन किसी को सुनने में बाधा या दुर्मन नहीं होता। यही इस विभूति की दिव्यता थी।

वृहत् साधु सम्मेलन, अजमेर के समय सारे स्थानकवासी समाज के साधु इन्हें अजमेर शहर से सामने लेने गये। गाजे बाजे के साथ अगवानी करने

गये अत: वे नहीं आये और दूसरे दिन साधारण स्थिति में विहार कर अजमेर सम्मेलन में सम्मिलित हुए। वहां पर भी उनकी दिव्यता की बड़ी छाप थी।

मंच पर लाखों के सामने जब उन्हें 'लाउड स्पीकर' में बोलने के लिये विनती की तो वे नीचे उतर आये और दूसरे दिन, जो साधु 'लाउड स्पीकर' में बोले उनको प्रायश्चित्त लेना पड़ा। वे धुन के धनी और दिव्यता के देव थे। उनकी विभूति दिव्य थी और उनका आचार एवं विचार दिव्य थे। भौतिक शरीर और आध्यात्मिक कांति भी दिव्य थी। उनके प्रवचन दिव्य थे और उनका साहित्य दिव्य था। उनके दर्शन दिव्य थे और स्पर्शन दिव्य था। उनके आचार्य पद के सभी लक्षण दिव्य थे, अत: वे दिव्य विभूति थे।

सारा भारत परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़ा हुआ था। सारा जैन समाज भी स्थानकवासी परम्परा में बन्धा हुआ था। जगह २ स्थानकों में साधुओं की परिग्रह की सामग्रियां उनके कब्जे में पड़ी हुई रहती थीं। श्रावक की जगह साधु स्थानकवास के आदी हो गये थे। साधु वृन्दों ने क्षेत्र-ममत्वी होकर अपने २ क्षेत्र में अपनी-अपनी संप्रदाय के अखाड़े जमा रखे थे। बहुत कम आचार्य अपने क्षेत्र से बाहर निकलते और धर्म प्रचार करते थे। श्रावक भी उन्हीं के अंधभक्त थे। साधु चारित्र से गिरने लग गये थे। ममत्वी और गृहस्थ परस्थ बन गये थे। साधुचर्या से गिरते हुए यतिप्रथा के अनुकूल ढलने लगे थे। एक आचार्य जीवरक्षा में पाप बताते हुए अपने पंथ का प्रबल संगठन बनाये हुए थे। उनके क्षेत्र में किसी भी साधु के जाने की हिम्मत नहीं होती थी। ऐसे समय में युग-प्रवर्तक, एक महान् आचार्यश्री जवाहर का धर्म-प्रसार कार्य बड़ा प्रभावक बना।

वे साध्वाचार की कठोर प्रवृत्तियां स्वयं पालते हुए, वैसा ही उपदेश देते हुए सभी संप्रदायों के गठित क्षेत्रों, प्रान्तों और श्रावक समुदायों में विचरे। इनकी संप्रदाय को विदेशी कह कर सभी क्षेत्र के साधु और श्रावक बोलते थे लेकिन उनकी दिव्य हस्ती ने जहां गये, वहीं उनका बोलबाला कर दिया। सभी क्षेत्रों में उनके विचार और प्रचार के भक्त बन गये। जिधर विचरे, उधर उन्हीं का गान होने लगा। उन्हीं की प्रशंसा की जाने लगी। उन्हीं का साहित्य फैलने लगा। उनके सच्चे सूत्रों के अर्थदान, सच्ची क्रियाशीलता, सच्चे श्रावक कर्म, सच्ची आचार परिपाटी एवं सच्ची राष्ट्रीय धर्मक्रियता ने नये युग का आरम्भ कर किया।

अनेकांत, अल्पारंभ और महारंभ करना, कराना और अनुमोदना, धर्म और पाप एवं कर्त्तव्याकर्त्तव्य आदि पर उनकी चिंतना सारे राष्ट्र में

नव विचार सरणि का उद्‌गम बनी। पुराणी विचारणा पर प्रबल प्रहार हुआ और इनकी नई दृष्टियां आदरणीय बन गईं। इनकी स्पष्टवादिता, निर्भीकता एवं प्रामाणिकता की छाप ने युग का प्रवर्तन और परिवर्तन कर दिया। श्रावक सच्चे गृहस्थ धर्मारूढ़ बने और साधु, साधुता पर आये। साधुमार्गी संघ का अभ्युदय हुआ। कुल धर्म, राष्ट्र धर्म, गण धर्म आदि का विस्तार हुआ। स्थानकों का मोह छूटा, क्षेत्र–ममत्व टूटा। साधु क्षेत्र से बाहर निकलने लगे। शास्त्रों के सही अर्थ–प्रतिपादन करने लगे। "सद्धर्म मंडन" एक दिव्य ग्रन्थ धर्म प्रतिपादन के लिये जैन समाज को मिला। थलियों में विचरणकर कष्ट एवं परिषह को जीतते हुए सद्धर्म का प्रचार प्रसार किया। सारा देश इनके उपदेश और साहित्य का अनुगमन करने लगा। राष्ट्रीयता और धार्मिकता का संगम एवं नई विचार धारा का प्रवाहीकरण युगप्रवर्तक आचार्यश्री जवाहर का पुण्यकार्य था। अतः वे युगप्रवर्तक कहलाये।

महान् आध्यात्मिक नेता, साधु और आचार्यश्री जवाहर थे, जिन्होंने नये युग के सूत्रपात के साथ आध्यात्मिक साधना का भी विस्तार किया। उनकी प्रार्थना स्वयं ज्योति स्वरूप थी। प्रार्थना करते समय उनके दिव्य ललाट और मुखाकृति पर ज्योति विराजित हो जाती थी। दिव्य प्रभा आलोकित हो जाती थी। प्रार्थना स्वर के निकलते ही उनकी आत्मा का दिव्य स्वर प्रसारित हो जाता था। जिन्होंने उनका प्रवचन सुना और प्रवचन के पूर्व उनकी प्रार्थना सुनी, वे ही इसका सही ज्ञान पा सके हैं।

उनमें इतना आत्मतेज था कि उनके बड़े बड़े भक्त भी उनकी दिव्य फटकार से रो पड़ते थे। उनकी आध्यात्मिक क्रांति, शांति एवं तेजस्विता उनके दर्शन से ही अनुभवित हो जाती। अनेकान्त का सच्चा विस्तार और समन्वय की सरिता का प्रवाह ज्योतिर्धर श्रीजवाहर ने अपने युग में निरन्तर बहाया।

वे वेदान्त के विज्ञ वेत्ता थे और वेदान्त के साथ जिन–दर्शन का बड़े मार्मिक ढंग से समन्वय करते थे। वे उपनिषदों और गीता के परम रहस्य के जानकार थे। उनके बताये हुए शुद्धिकरण को लोकमान्य तिलक ने सहर्ष स्वीकार किया। वे जिन–धर्म के प्रबल पोषक एवं महान् विज्ञानी आचार्य थे। उनके आध्यात्मिक ज्ञान के खजाने का पता अध्यात्मवादी जन लगाते थे। वे निरन्तर पिछली रात को ३ घन्टे का ध्यान करते थे। उनके हाथ का आपरेशन हुआ तब बेहोश करने की कोई वस्तु सूंघने के काम में नहीं ली और हाथ को इतना सीधा और सही ढंग से बिना हिलाये–डुलाये रख कर

आपरेशन कराया कि डाक्टर लोग चकित रह गये । वे उनकी ज्योति से स्वयं प्रकाशित हो जाते थे और अपने आपको निस्तेज अनुभव करते थे। ऐसे कई संकट समय आये । निश्चिन्त, निर्भय और निर्मम रहते हुए पार किये। उनकी ज्योति से वे सभी प्रभावित हैं, जो उनके संपर्क में आये ।

प्रवल धाक के धनी, दिव्य आत्मशक्ति के पुन्ज, परम मेधावी, महान् श्रुतज्ञ, प्रख्यात प्रवचनकार, भव्य विभूति के शृङ्गार, पुराण पुरुष, आश्चर्यकारी आचार्य, कल्याणकारी मार्गदर्शक, समन्वयकारी शास्त्र ज्ञाता, अनेकांत-दर्शी, 'पुण्यपुरुष, चमत्कारशिरोमणि, प्रवल पुरुपार्थी, प्रवुद्धजन पूज्य, आचार्य-कुल दिवाकर, युगप्रवर्तक, दिव्य विभूति, ज्योतिर्धर पूज्य श्री जवाहर मुनि-वृन्द में उत्तम अलभ्य जवाहररत्न थे । वे महान् जन जौहरीजनों की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर उत्तम जवाहर सावित हुये और अव भी उनकी छाप भारत के कोने २ में विस्तृत है ।

ऐसे अपने अनन्य श्रद्धास्पद गुरु एवं पूज्यवर की असीम प्रसारजन्य विस्तृत दृष्टि को ग्रहण करने वाला यह तुच्छ मानवी अपनी श्रद्धा के सुमन भूत-काल में चढ़ाता रहा और अव भी इस तुच्छ लेख से चढ़ा रहा है । उनकी याद को, हृदय के बाहर कर पिछड़े क्षेत्र में ज्ञानज्योतिस्तंभ रूप जवाहर विद्यापीठ में समाहित कर धन्य बन रहा है ।

❀❀

अकसर लोग सरल काम को कठिन और कठिन काम को सरल समझ वैठते हैं । यह वुद्धि का विकार है । इसी वुद्धि-विकार के कारण परमात्मा का स्वरूप समझना कठिन कार्य जान पड़ता है । वस्तुतः परमात्मा का स्वरूप समझना सरल है ।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.)

❀

आचार्यश्री और समकालीन विशिष्ट व्यक्ति

● डॉ. नरेन्द्र भानावत, श्री महावीर कोटिया

महात्मा गांधी :

संवत् १९९३ में आचार्य श्री का राजकोट में चातुर्मास था। २९ अक्तूबर को महात्मा गांधी कार्यवश राजकोट आए। उन्हें आचार्य श्री की ओजस्वी उपदेश-शैली, उत्कृष्ट व उदार विचार धारा तथा संयम-परायणता का परिचय मिल चुका था। अतः उन्होंने अपने व्यस्त कार्यक्रम में से पूज्य आचार्य श्री से भेंट करने तथा सत्संगति का लाभ लेने का निश्चय कर लिया। तदनुसार जिस दिन वे राजकोट से विदा होने वाले थे, उस दिन उन्होंने संध्या से कुछ पहले पूज्य श्री के दर्शनार्थ आने की सूचना भिजवा दी। जनता को इसका पता नहीं चल पाया। अतः गांधी जी ने बड़े ही शान्त वातावरण में आचार्य श्री के सत्संग का लाभ उठाया तथा वार्तालाप किया। उन्होंने वार्तालाप के समय अपनी यह भावना भी आचार्यश्री के समक्ष प्रकट की। वे उनकी उपदेश-सभा में उपस्थित रहकर उपदेश श्रवण के भी इच्छुक थे, पर समयाभाव से यह संभव न हो सका।

लोकमान्य तिलक :

संवत् १९७२ का चातुर्मास अहमदनगर में पूरा करने के पश्चात् आप घोड़नदी राजणगांव आदि आस पास के क्षेत्रों में विचरण करते हुए पुनः अहमदनगर पधारे। उन्हीं दिनों लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक कारागार से मुक्त होने के बाद अहमदनगर पधारे थे। श्री कुन्दनमल जी फिरोदिया, श्री माणिकचन्द जी मूथा, सेठ किसनदास जी मूथा तथा श्री चंदनमल जी आदि के द्वारा लोकमान्य को आपका परिचय मिला और उन्होंने आपसे भेंट की। आचार्यश्री ने जैन धर्म का दृष्टिकोण तथा सैद्धान्तिक व्याख्या आपके समक्ष

प्रस्तुत की। लोकमान्य तिलक इससे बड़े प्रभावित व हर्षित हुए और उन्होंने आचार्यश्री के प्रति अपनी भावनाएं निम्न शब्दों में प्रकट की—

मैं आचार्यश्री का आभार मानता हूं कि उन्होने भारतवर्ष के एक महान धर्म के विषय में मेरी गलतफहमी दूर की और उसका शुद्ध स्वरूप समझाया।

आज के भारतीय साधु समाज में जैन–साधु त्याग–तपस्या आदि सद्‌गुणों में सर्वोत्कृष्ट हैं। उनमें से एक आचार्यश्री जवाहरलाल जी महाराज हैं जिनका मैं दर्शन कर रहा हूँ और जिनके व्याख्यान सुनने का आनन्द उठा चुका हूं। आप सर्वश्रेष्ठ तथा सफल साधु हैं।

महामना मदनमोहन मालवीय :

संवत् १९८४ में आचार्यश्री जब भीनासर में चातुर्मास पूर्ण कर बीकानेर में पधारे हुए थे, उसी समय मालवीय जी बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में बीकानेर आए। उन्हें आचार्यश्री के बारे में जानकारी मिल चुकी थी। अतः वे उनका प्रवचन सुनने पहुंचे। प्रवचन के पश्चात् मालवीय जी ने आचार्यश्री के प्रवचन की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की और उनके प्रति हार्दिक सद्‌भावना प्रकट की।

श्रीमती कस्तूर बा गांधी :

घाटकोपर (बम्बई) में संवत् १९८० के चातुर्मास काल में श्रीमती कस्तूर बा गांधी पूज्य श्री के दर्शनार्थ आईं। पूज्य आचार्यश्री ने अपने प्रवचन में 'बा' का आदर्श प्रस्तुत करते हुए महिलाओं को खादी पहनने और सादगी से रहने का उपदेश दिया। प्रवचन के पश्चात् आचार्यश्री ने 'बा' से भी कुछ बोलने के लिए कहा। वे बोलीं 'मैं आज अपना अहोभाग्य समझती हूं कि पूज्य श्री के दर्शन हुए। मैं जिस उद्देश्य से आई थी, वह पूरा हो गया। मुझे अब बोलने की आवश्यकता नहीं रही। पूज्य श्री ने मेरा मन्तव्य पूरा कर दिया है।

श्री विट्ठल भाई पटेल :

इसी चातुर्मास काल में केन्द्रीय धारा सभा के प्रेसीडेंट श्रीयुत् विट्ठल भाई पटेल भी पूज्य श्री के दर्शन करने व प्रवचन सुनने आए। आचार्यश्री के व्यापक दृष्टिकोण और उच्च विचारों से, उनके तप और त्याग से तथा वक्तृत्व शक्ति से वे बड़े प्रभावित हुए और उनकी भूरि–भूरि प्रशंसा की।

सेनापति वापट :

संवत् १९७१ में चातुर्मास से पूर्व आचार्यश्री जवाहरलालजी पारनेर पधारे। उनके दैनिक प्रवचनों में उपस्थित रहने वाले अनेक व्यक्तियों में एक विशिष्ट व्यक्ति थे, सेनापति वापट। उनकी स्मरण शक्ति और प्रतिभा का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि वे आचार्यश्री के प्रवचन को सुनने के तुरन्त वाद उसे मराठी कविता में आवद्ध कर सुना दिया करते थे। आचार्य श्री के प्रति उनकी वड़ी श्रद्धा थी और आचार्यश्री भी उनसे वड़े प्रभावित थे।

वापट साहव का संक्षिप्त परिचय यहां उद्धृत करने का लोभ हम संवरण नहीं कर पा रहे हैं। विद्यार्थी अवस्था में वे वड़े प्रतिभाशाली थे। आई. सी. एस. की परीक्षा में वे सर्वप्रथम आए। अंग्रेजी नौकरशाही रूपी मशीन का एक पुर्जा वनने के लिए वे इंग्लैण्ड भेजे गए। लाला लाजपतराय की भारत में गिरफ्तारी होने के अवसर पर उन्होंने वहां एक भाषण दिया जो सरकार की आंखों में वहुत खटका। सरकार उन्हें खतरनाक आदमी समझने लगी और पुलिस उन पर निगाह रखने लगी। वापट साहव ने आई. सी. एस को छोड़कर वहां रहते हुए वैरिस्टरी की परीक्षा पास की। इंग्लैण्ड से आप जर्मनी चले गए और वम वनाना सीखा तथा भारत आकर नवयुवकों को बम वनाना सिखाया और ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के कार्य में संलग्न हो गए। सरकार उनसे सदैव सतर्क रहती और उनकी निगरानी रखी जाती। उनकी दिनचर्या के महत्त्वपूर्ण कार्य थे प्रातःकाल ही टौकरी, कुदाली और झाड़ू लेकर घर से निकल जाना तथा सड़कें व नालियां साफ करना, दिन में अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं के लिए लेख लिखना, सायंकाल गली-मुहल्लों में जा जाकर देशोत्थान सम्बन्धी प्रवचन करना तथा रात्रि में अछूत वालकों को पढ़ाना।

प्रोफेसर राममूर्ति :

संवत् १९७२ में जब आचार्यश्री अहमदनगर में चातुर्मास कर रहे थे तब कलियुगी भीम कहे जाने वाले प्रो० राममूर्ति अपनी सरकस कम्पनी के साथ अहमदनगर आए। अहमदनगर में मुनिश्री के उपदेशों की उस समय वड़ी प्रसिद्धी थी। प्रो० राममूर्ति भी यह ख्याति सुनकर अपने कार्यकर्ताओं के साथ आचार्यश्री का प्रवचन सुनने आए। आचार्यश्री का प्रवचन सुनकर वे वड़े प्रभावित हुए और प्रवचन के पश्चात् उन्होंने कहा—"इस समय मैं क्या वोलूं ? सूर्य के निकल आने पर जिस प्रकार जुगनू का चमकना अनावश्यक है, उसी प्रकार आचार्यश्री के अमृत तुल्य उपदेश के वाद मेरा कुछ वोलना अनावश्यक है। मैं न वक्ता हूं, न विद्वान् हूं। मैं तो एक कसरती पहलवान हूं। किन्तु

बड़े-बड़े विद्वानों का व्याख्यान सुनने का मुझे शौक है। आज आचार्य श्री के उपदेश को सुनकर मेरे हृदय पर जो प्रभाव पड़ा है, वह आज तक किसी के उपदेश से नहीं पड़ा। यदि भारत में ऐसे दस साधु भी हों तो निश्चित रूप से भारत का पुनरुत्थान हो जाय।

जब मैं अपने डेरे से चला तो मुझे यह आशा नहीं थी कि मैं जिनका उपदेश सुनने जा रहा हूँ वे मुनिराज इतने बड़े ज्ञानी और इतने सुन्दर उप-देशक हैं। आज मेरा हृदय एक अभूतपूर्व आनन्द से प्रफुल्लित हो रहा है। मैं जीवन भर इस सुन्दर उपदेश को नहीं भूलूंगा।

श्री विनोबा भावे :

संवत् १९८१ में जलगांव चातुर्मास के अवसर पर श्री विनोबा भावे आचार्यश्री का सत्संग करने पधारे। उस समय विनोबा जी तीन-चार दिन तक आपके साथ रहे तथा तत्त्व-चर्चा के मधुर रस का आस्वादन किया।

श्री जमनलाल बजाज :

इसी चातुर्मास काल मे प्रमुख राष्ट्रसेवी सेठ श्री जमनालाल बजाज भी आचार्य श्री के दर्शन करने व उनका सत्संग करने उपस्थित हुए।

सर मनुभाई मेहता :

श्री मेहता बीकानेर राज्य में प्रधान मन्त्री थे। लन्दन में प्रथम गोलमेज कान्फ्रेन्स में आपने देश का प्रतिनिधित्व किया। संवत् १९८४ में आचार्यश्री के भीनासर-बीकानेर में चातुर्मास के समय आप उनकी प्रवचन शैली और व्यक्तित्व तथा विद्वत्ता से इतने प्रभावित हुए कि उनके विशिष्ट श्रद्धालु बन गए। अनेक बार आप सपरिवार आचार्य श्री के प्रवचनों में उपस्थित हुए। गोलमेज कान्फरेन्स में भाग लेने जाने के अवसर पर भी आप आचार्य श्री के पास आशीर्वाद लेने आए।

श्री रामनरेश त्रिपाठी :

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि और लोकसाहित्य के अध्येता विद्वान् श्री रामनरेश त्रिपाठी फतहपुर (राजस्थान) में आचार्य श्री के सम्पर्क में आए और उनके श्रद्धालु बन गए। संवत् १९८७ में पूज्य श्री के बीकानेर चातुर्मास के

अवसर पर आपने उपस्थित होकर अनेक प्रवचन सुनने का लाभ उठाया। पश्चात् हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिका 'सरस्वती' में उन्होंने एक लेख प्रकाशित किया जिसकी कुछ पंक्तियां यहां उद्धृत हैं—'गत वर्ष फतहपुर में श्री जवाहरलाल जी महाराज से मेरा साक्षात्कार हुआ था। उनका चरित्र बहुत ही अच्छा, पवित्र और तपस्या से पूर्ण है। वे अच्छे विद्वान, निरभिमानी, उदार, सहृदय और निस्पृह हैं। उनके व्याख्यान में सामयिकता रहती है। वे बड़े निर्भय वक्ता हैं, पर अप्रियवादी नहीं।"

काका कालेलकर एवं बुखारी बन्धु :

आचार्यश्री ने संवत् १९८८ में देहली में चातुर्मास किया। इस चातुर्मास काल में उनके प्रभावशाली व्याख्यानों ने उन्हें शीघ्र ही देहली की जैन-जैनेतर जनता में प्रिय बना दिया। अनेक हिन्दू व मुस्लिम राष्ट्रीय नेता भी आपके विचारों से प्रेरणा लेने व्याख्यानों में उपस्थित होते। प्रसिद्ध विचारक विद्वान् काका कालेलकर भी आपके प्रवचन में उपस्थित हुए और आपके राष्ट्रोन्नति सम्बन्धी विचार सुनकर अत्यधिक प्रसन्नता व्यक्त की। इसी प्रकार कांग्रेस के तत्कालीन प्रसिद्ध नेता शेख अताउल्लाशाह बुखारी और उनके भाई हबीबुल्ला शाह बुखारी भी आपके व्याख्यान सुनने उपस्थित हुए। व्याख्यान के पश्चात् उन्होंने मुक्तकंठ से आचार्यश्री के उपदेशों की प्रशंसा की।

सरदार पटेल :

संवत् १९९३ में राजकोट चातुर्मास के अवसर पर १३ अक्तूबर को अपरान्ह तीन बजे सरदार वल्लभ भाई पटेल पूज्य श्री के दर्शनार्थ पधारे। सरदार पटेल का आगमन सुनकर जैनेतर जनता भी बड़ी संख्या में एकत्र हुई। आचार्यश्री के प्रवचन के बाद सरदार पटेल ने जनता को संबोधित करते हुए कहा—"आप लोग धन्य हैं, जिन्हें ऐसे महात्मा मिले हैं और जिनको नित्य ऐसे व्याख्यान सुनने को मिलते हैं। मगर यह सुनना तभी सफल है जब उपदेशों को जीवन में उतारा जाय।"

पट्टाभि सीतारामैय्या :

संवत् १९९३ में राजकोट चातुर्मास के पश्चात् विहार करके जब आचार्यश्री पोरबन्दर विराज रहे थे, तब वहां स्वतन्त्रता संग्राम-सेनानी प्रसिद्ध विद्वान व प्रभावशाली वक्ता श्री पट्टाभि सीतारामैय्या का आगमन हुआ। पूज्य

श्री की ख्याति सुनकर आप दर्शनार्थ पधारे तथा पूज्य श्री से मिलकर व वार्तालाप कर बड़े प्रसन्न हुए ।

श्री ठक्कर बापा तथा श्रीमती रामेश्वरी नेहरू :

संवत् १९९४ में आचार्य श्री का चातुर्मास जामनगर में था । वहीं दिनांक ४-१०-१९३७ को स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी तथा गांधी जी के हरिजनोद्धार कार्यक्रम से सम्बन्धित प्रसिद्ध नेता श्री ठक्कर बापा व श्रीमती रामेश्वरी नेहरू पूज्य श्री के दर्शनार्थ आए तथा उनसे हरिजनोद्धार सम्बन्धी वार्तालाप करके अत्यधिक प्रसन्न हुए ।

यों तो अचेत अवस्था में पड़े हुए आत्मा में भी राग-द्वेष प्रतीत नहीं होते, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि अचेत आत्मा राग-द्वेष से रहित हो गया है । जो आत्मा ज्ञान के आलोक में राग-द्वेष को देखता है-राग-द्वेष के विपाक को जानता है और फिर उसे हेय समझकर उसका नाश करता है वही राग-द्वेष का विजेता है । दुमुही का क्रुद्ध न होना क्रोध को जीत लेने का प्रमाण नहीं है । क्रोध न करना उसके लिए स्वाभाविक है । अगर कोई सर्प ज्ञानी होकर क्रोध न करे तो कहा जायगा कि उसने क्रोध को जीत लिया है, जैसे चंडकौशिक ने भगवान् के दर्शन के पश्चात् क्रोध को जीता था । जिसमें जिस वृत्ति का उदय ही नहीं है, वह उस वृत्ति का विजेता नहीं कहा जा सकता अन्यथा समस्त बालक काम-विजेता कहलाएंगे ।

आचार्यश्री जवाहरलाल जी म.

सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी

● **श्री विजयसिंह नाहर**

आचार्यश्री जवाहरलाल जी महाराज साहब के 'जन्म शताब्दी समारोह' के उपलक्ष्य में "श्रमणोपासक" का विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है, यह जान कर प्रसन्नता हुई। केवल स्थानकवासी जैन-समाज में ही नहीं, सारे जैन एवं जैनेतर समाज में आपके प्रति श्रद्धा थी। एक समय था, जब जैन-समाज में रूढ़िवाद बहुत जबर्दस्त था। उस समय परिवर्तन की बातें करना भी मुश्किल था। समाज वाले नई बातें ग्रहण नहीं करना चाहते थे। विरोध भी होता था। लेकिन समय, काल, पात्र देखते हुए आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज ने समाज में, धर्मसाधना में, आहार-व्यवहार में रूढ़िवाद तोड़ कर समयानुकूल एवं शास्त्रानुसार आचार-व्यवहार एवं साधना का मार्ग समाज में प्रचलित करने की प्रचेष्टा की थी। किसी का भय नहीं, किसी की खुशामद नहीं, जो सही मार्ग है, उस पर चलने का साहस उनमें था। साधुत्व के आदर्श को सामने रखते हुए त्याग और तपस्या, एवं साथ-साथ समाज में जनता को मार्ग-दर्शन कराने में वे सदा तत्पर रहते थे।

आपका क्रान्तिकारी विचार बहुत आगे बढ़ा हुआ था। महावीर की वाणी "जीओ और जीने दो" की आपने समयानुकूल विवेचना की। साधारणतया, प्राणी हत्या नहीं करना, केवल यही अर्थ इसका होता है, लेकिन आचार्यश्री ने बताया कि प्राणीमात्र के अन्दर, मनुष्य भी आता है, एवं जीने दो याने किसी को भी किसी प्रकार का कष्ट न दो, पड़ौसी से सद्भाव रखो, उनके दुःख-सुख के साथी बनो, मानव-मात्र एक है, अतः किसी का शोषण नहीं करो।

महात्मा गांधीजी व अन्यान्य स्वतंत्रता-संग्रामी नेताओं से आपका संपर्क बना था। स्वतंत्रता-संग्राम को आपने अहिंसा की लड़ाई बताया एवं

साथ-साथ खादी को अपनाया । यह राजनैतिक भावना से नहीं, वरन् अहिंसक भावना से । खादी वस्त्र का सबको व्यवहार करना चाहिए, इसका प्रचार भी किया था । मिल के वस्त्र बनाने में चर्बी आदि हिंसक द्रव्यों का व्यवहार होता है, परन्तु चरखा-करघा में शुद्धता से उत्पादन होता है । इनके आदर्श का समाज में काफी प्रभाव पड़ा था ।

सामाजिक, धार्मिक एवं देश की भलाई के कार्य मे आचार्यश्री सदा लगे रहते थे । समाज-सेवा के कार्य का उपदेश देकर, अनेक स्थानों पर विद्यालय, पुस्तकालय, चिकित्सालय आदि समाज-कल्याण के कार्यों की आप प्रेरणा दिया करते थे । समाज की उन्नति होने से धर्म की प्रभावना होगी, इसलिए विद्याभ्यास, पुस्तक प्रकाशन आदि अनेक कार्य आचार्यश्री के उपदेशों से प्रभावित होकर श्रावकों ने किये । स्वयं भी महत्त्वपूर्ण अनेक ग्रंथों की रचना की थी । श्री जवाहरलाल जी महाराज प्रकांड विद्वान थे । सूत्रों का ज्ञान उन्हें अच्छा था । मौका पड़ने पर वे शास्त्रार्थ में सामना भी करते थे । सुवक्ता होने से सब श्रोताओं पर उनका प्रभाव जोरों का पड़ता था । स्वयं साधक एवं निष्ठावान बाल-ब्रह्मचारी थे । उनके मुखमंडल पर एक अपूर्व ज्योति विराजमान थी । उनके संपर्क में आने वाले काफी प्रभावित होते थे ।

आचार्यश्री की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी । राष्ट्रीय, सामाजिक आध्यात्मिक अथवा व्यावहारिक हरेक विषय पर आपकी सेवा अपूर्व है । एक त्यागी आचारवान जैन-साधु होने पर भी, इतना व्यापक चिन्तन, आचरण एक महत्त्वपूर्ण जीवन का प्रतीक है । उच्चकोटि के साधु एवं धर्म-प्रभावना में अग्रणी क्रान्तिकारी चिन्तक, समाज-सुधारक आचार्यश्री जवाहरलाल जी के जन्म-शताब्दी उत्सव को यदि सार्थक करना है तो यह तब ही संभव होगा जब उनके बताये पथ पर समाज के लोग आगे बढ़ेंगे और अपने जीवन में सत्-श्रावक का आचरण ग्रहण करेंगे । उनके आशीर्वाद से जैन-समाज, विश्व-समाज में अपना स्थान प्राप्त करे, यही सदा कामना रहती है ।

❀ ❀ ❀

मेरी एकमात्र यही आकांक्षा है कि मेरे अन्तःकरण की मलीमस वासनाओं का विनाश हो जाय ।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.)

लोकप्रिय आकर्षक व्यक्तित्व

• श्री आनन्दराज सुराणा

श्रौर वे एक महान् सन्त थे । उन्होंने रेशम की साड़ियों का त्याग करा कर खादी को अच्छा प्रोत्साहन दिया ।

पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. ही के अनुशासन और शिक्षण का प्रभाव था कि सादड़ी सम्मेलन में पूज्य श्री गणेशीलाल जी महाराज साहब को उपाचार्य पद प्रदान किया गया ।

मैं "श्रमणोपासक" के "आचार्य श्री जवाहर जन्म–शताब्दी विशेषांक" के प्रति अपनी शुभकामना भेजता हूं तथा आशा करता हूँ कि पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज साहब के विचारों को समाज में अधिक से अधिक पहुंचाने में यह प्रयास लाभदायक सिद्ध होगा ।

❀ ❀ ❀

वैर भूल जाओ। परस्पर प्रेम का झरना बहाओ, जिससे तुम्हारा और दूसरे का संताप मिट जाय, शान्ति प्राप्त हो और अपूर्व आनन्द का प्रसार हो । लेन--देन में, बोल--चाल में, किसी से कोई झगड़ा हुआ हो, मनमुटाव हुआ हो, कलह हुआ हो तो उसे भुला दो। किसी प्रकार की कलुषता हृदय में मत रहने दो । चित्त के विकारों की होली जलाओ, आत्मिक प्रकाश की दीपमालिका जगाओ, प्राणीमात्र की रक्षा के बन्धन में बंध जाओ तो इस महामहिमामय पर्व (पर्युषण) में सभी पापों की समाप्ति हो जाएगी ।

(आचार्य श्री जवाहर

साहसी और दृढ़ व्यक्तित्व

● श्री सौभाग्यमल जैन

श्वेताम्बर स्थानकवासी समाज का यह सौभाग्य रहा है कि उसने कई क्रांतिकारी विचारों के हामी साधु-मुनिराजों को जन्म दिया । वीर लोंका-शाह एक ऐसे सुश्रावक थे कि जिन्होंने तत्कालीन साधु-यतियों में व्याप्त शिथि-लाचार के विरुद्ध विद्रोह का शंख फूंका । इसी सुश्रावक की क्रांतिकारी परम्परा को कई प्रभावशाली मुनिजनों ने आगे बढ़ाया । हमारे पूज्य आचार्य श्री जवा-हरलाल जी महाराज भी उसी क्रांतिकारी परम्परा के एक जाज्वल्यमान नक्षत्र थे । आचार्यश्री ने तत्कालीन समाज में मान्य निरर्थक मान्यताओं को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया । जैन-समाज में कृषि कार्य को उस समय पाप-व्यापार माना जाता था । पन्द्रह कर्मादान में "फोडीकम्मे" शब्द का तात्पर्य यही निकाला जाता था, किन्तु आचार्यश्री ने यह उचित माना तथा यह मत व्यक्त किया कि यदि देश में शाकाहार को प्रोत्साहन देना है या दूसरे शब्दों में मांसाहार का निषेध करना है तो कृषि को महारंभ कैसे कहा जा सकता है ? कृषि से ही अन्न उत्पादन होगा, जो विकल्प है । आज चाहे यह घटना महत्त्व की न लगे किन्तु आज से लगभग ६० वर्ष पूर्व की सामाजिक स्थिति को देखते हुए यह एक साहस का कार्य था । यह एक खुला तथ्य है कि जिस साधु-मुनिराज को समाज में पद, प्रतिष्ठा प्राप्त होती है या यूं कहें कि निहित स्वार्थ (चाहे सम्पत्ति का न हो अपितु पद-प्रतिष्ठा का) होता है वह यथापू स्थिति में स्वयं की तथा अन्य समान सुविधा-भोगी समुदाय की सुर मानता है । इसकी परवाह किये बिना सामान्य मान्यता का विरोध कर आचार्यश्री ने साहस का कार्य किया था ।

आचार्यश्री ने उस समय साधु तथा श्रावक के बीच में एक वर्ग-स्था का विचार समाज के सम्मुख रखा जो उन कार्यों को, जो साधु-मुनि

और वे एक महान् सन्त थे । उन्होंने रेशम की साड़ियों का त्याग करा कर खादी को अच्छा प्रोत्साहन दिया ।

पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. ही के अनुशासन और शिक्षण का प्रभाव था कि सादड़ी सम्मेलन में पूज्य श्री गणेशीलाल जी महाराज साहब को उपाचार्य पद प्रदान किया गया ।

मैं "श्रमणोपासक" के "आचार्य श्री जवाहर जन्म–शताब्दी विशेषांक" के प्रति अपनी शुभकामना भेजता हूं तथा आशा करता हूँ कि पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज साहब के विचारों को समाज में अधिक से अधिक पहुंचाने में यह प्रयास लाभदायक सिद्ध होगा ।

❀ ❀ ❀

वैर भूल जाओ। परस्पर प्रेम का झरना बहाओ, जिससे तुम्हारा और दूसरे का संताप मिट जाय, शान्ति प्राप्त हो और अपूर्व आनन्द का प्रसार हो । लेन--देन में, बोल--चाल में, किसी से कोई झगड़ा हुआ हो, मनमुटाव हुआ हो, कलह हुआ हो तो उसे भुला दो। किसी प्रकार की कलुषता हृदय में मत रहने दो । चित्त के विकारों की होली जलाओ, आत्मिक प्रकाश की दीपमालिका जगाओ, प्राणीमात्र की रक्षा के बन्धन में बंध जाओ तो इस महामहिमामय पर्व (पर्युषण) में सभी पापों की समाप्ति हो जाएगी ।

(आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.)

साहसी और दृढ़ व्यक्तित्व

● श्री सौभाग्यमल जैन

श्वेताम्बर स्थानकवासी समाज का यह सौभाग्य रहा है कि उसने कई क्रांतिकारी विचारों के हामी साधु-मुनिराजों को जन्म दिया। वीर लोंकाशाह एक ऐसे सुश्रावक थे कि जिन्होंने तत्कालीन साधु-यतियों में व्याप्त शिथिलाचार के विरुद्ध विद्रोह का शंख फूंका। इसी सुश्रावक की क्रांतिकारी परम्परा को कई प्रभावशाली मुनिजनों ने आगे बढ़ाया। हमारे पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज भी उसी क्रांतिकारी परम्परा के एक जाज्वल्यमान नक्षत्र थे। आचार्यश्री ने तत्कालीन समाज में मान्य निरर्थक मान्यताओं को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। जैन-समाज में कृषि कार्य को उस समय पाप-व्यापार माना जाता था। पन्द्रह कर्मादान में "फोडीकम्मे" शब्द का तात्पर्य यही निकाला जाता था, किन्तु आचार्यश्री ने यह उचित माना तथा यह मत व्यक्त किया कि यदि देश में शाकाहार को प्रोत्साहन देना है या दूसरे शब्दों में मांसाहार का निषेध करना है तो कृषि को महारंभ कैसे कहा जा सकता है? कृषि से ही अन्न उत्पादन होगा, जो विकल्प है। आज चाहे यह घटना महत्त्व की न लगे किन्तु आज से लगभग ६० वर्ष पूर्व की सामाजिक स्थिति को देखते हुए यह एक साहस का कार्य था। यह एक खुला तथ्य है कि जिस साधु-मुनिराज को समाज में पद, प्रतिष्ठा प्राप्त होती है या यूं कहें कि निहित स्वार्थ (चाहे सम्पत्ति का न हो अपितु पद-प्रतिष्ठा का) होता है वह यथापूर्व स्थिति में स्वयं की तथा अन्य समान सुविधा-भोगी समुदाय की सुरक्षितता मानता है। इसकी परवाह किये बिना सामान्य मान्यता का विरोध करके आचार्यश्री ने साहस का कार्य किया था।

आचार्यश्री ने उस समय साधु तथा श्रावक के बीच में एक वर्ग-स्थापना का विचार समाज के सम्मुख रखा जो उन कार्यों को, जो साधु-मुनि अपने

संयमित जीवन में संपन्न नहीं कर सकते थे, उन सामाजिक कार्यों को करते रहे। "वीर संघ" के नाम से प्रसिद्ध योजना यदि मूर्त्त रूप से लेती तो समाज के सामाजिक कार्य आज की भांति उपेक्षित नहीं रहते। किन्तु यह खेद का विषय है कि समाज ने उस क्रांत-द्रष्टा महापुरुष की इस योजना के कार्यान्वयन में रुचि नहीं ली अन्यथा सामाजिक कार्यों की यथाशक्य प्रगति इससे होती[1]।

आचार्यश्री के प्रवचन संग्रह को देखने से यह भलीभांति स्पष्ट है कि आचार्यश्री का सामाजिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान था। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरूढ़ि, अन्ध-विश्वास को समाप्त करने का संकल्प ले रखा था। अपने अनुयायी श्रावकों की प्रसन्नता-अप्रसन्नता का खयाल किये बिना बहुत दृढ़ता के साथ साहस से इस योगदान को जारी रखा तथा आजीवन उससे विमुख नहीं हुए। आचार्यश्री का राष्ट्रीय क्षेत्र में गहन चिंतन था। स्वयं शुद्ध खादी के वस्त्र उपयोग में लाते तथा राष्ट्रीय समस्याओं में दिलचस्पी लेते थे। उनका हृदय राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत था।

ऐसी बहुमुखी प्रतिभा के धनी स्व० आचार्यश्री के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं। उनकी प्रतिभा, साहस व योगदान के प्रति नत-मस्तक हूँ।

---

१. अब यह योजना 'जवाहर जन्म शताब्दी वर्ष' में क्रियान्वित की जा चुकी है। — **सम्पादक**

❀ ❀ ❀

धर्म कोई बाहर की वस्तु नहीं है। वह अन्दर से पैदा होता है। खराब कामों से बचना और सदाचार के साथ सम्बन्ध जोड़ना ही धर्म है।

(आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.)

नूतन आध्यात्म-दृष्टि के सूत्रधार

● श्री कल्याणमल लोढ़ा

मैं जब विद्यार्थी था, तब पूज्यपाद जोधपुर पधारे थे। उनके व्याख्यानों की बड़ी धूम और चर्चा थी। इतना स्पष्टतः याद है कि हजारों की संख्या में विभिन्न धर्मानुयायी उनके उपदेश सुनते थे। मेरे किशोर हृदय पर भी उनकी दिव्य वाणी की अमिट छाप पड़ी। पीछे मैंने 'जवाहर किरणावली' के कई भाग पढ़े। वे एक क्रांतिद्रष्टा आचार्य प्रवर थे। उनके सारे प्रवचन व्यक्ति और समष्टि चेतना-आत्मोदय से लोकोदय की भूमिका से पूर्ण हुआ करते थे। सैद्धान्तिक अध्यात्मवाद से हटकर उन्होंने व्यावहारिक आध्यात्म की ओर दृष्टि रखी, जिससे जीवन को नैतिक उच्चता और सामाजिक उत्कृष्टता प्राप्त हो सके। जैन सांस्कृतिक जागरण को उन्होंने नई दिशा और गति दी। यही कारण था कि जैनेतर समाज भी उनकी ओर पूर्ण रूप से आकर्षित हुआ।

मैं धर्म को व्यक्ति से अधिक सामाजिक संस्थान और उपक्रम के रूप में स्वीकार करता हूँ। वह व्यक्ति को समाज के व्यापक हित की ओर उन्मुख करता हुआ उसकी चेतना का विस्तार ही नहीं, विकास भी करता है। जैन धर्म की यही मूलभूत विशेषता है कि उसका आत्मबोध चेतना के विकास की पूर्णता और समग्रता को समाहित करके चलता है। अर्थ-वैज्ञानिक मान्यताओं के परे वह मनोदार्शनिक और नैतिकतावाद के उन मूल्यों के अवधारण की प्रेरणा देता है जो मनुष्य के कर्तृत्व को सम्यक् और सम्पूर्णता देता हुआ उसे केवल अपने 'होने' का, अहं के अस्तित्व का बोध ही नहीं कराता वरन् कर्म विमुक्त उस सनातन सत्ता का, 'होने' के प्रयोजन और उसकी सार्थकता का मंगल-सूत्र भी प्रस्तुत करता है। जैन धर्म की यह अनन्य विशेषता मैंने आचार्य श्री के प्रवचनों और लेखों में पाई।

आज का युग विज्ञानवाद का युग है। विज्ञान अनेकान्तवादी नहीं

अनेकतावादी होता है । जहां ज्ञान अनेकता में व्याप्त एकता का प्रतिपादन करता है, वहां विज्ञान एकता में अनेकता का । इसीसे उसकी दृष्टि वस्तुवादी, भौतिक-वादी और यथार्थपरक होती है, परन्तु विज्ञान ने भी आज अपनी दिशा बदल दी । विश्व के सभी वैज्ञानिक अब अपने अनुसंधानों और आविष्कारों को व्यापक और विराट मानवीय उच्चता के हितार्थ प्रस्तुत करना चाहते हैं । विज्ञान अपनी गति के अंतिम चरण पर पहुंच रहा है और यही कारण हैं कि अब विज्ञान और दर्शनभूत–सृष्टि और मनो–सृष्टि समवाय होकर किसी चिरन्तन आत्मतत्व की ओर उन्मुख हो रही है । यही वैज्ञानिक अध्यात्म आज मनुष्य की समस्त मानसिक और जैविक संगतियों के नए धरातल खोज रहा है । धर्म की मर्यादा का भी यही प्रयोजन है–जो मनुष्य को विवेकयुक्त करे, उसे शुभ और अशुभ की परिणाम–दृष्टि देकर आत्म–विकास की सही दिशा बताए, उसकी व्यष्टि चेतना को समष्टि चेतना में परिणत करे । मेरी धारणा है कि इस नूतन आध्यात्म दृष्टि का सूत्रपात जैन जगत् में आचार्यश्री जवाहरलाल जी ने बहुत पहले प्रारम्भ कर दिया था । वे अतिशय ज्ञानी थे । जन्म शताब्दी के पुण्य महोत्सव पर उन्हें मेरी अशेष प्रणति ।

कोई भी बल चारित्रबल की तुलना नहीं कर सकता । जिसमें चारित्र का बल है, उसे दूसरे बल अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं । राम के पास चारित्रबल के सिवाय और क्या था ? चारित्रबल की बदौलत सभी बल उन्हें प्राप्त हो गए । इसके विरुद्ध रावण के पास सभी बल थे , मगर चारित्रबल के अभाव में वे सब निरर्थक सिद्ध हुए ।

(आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.)

प्रभावशाली आचार्य

● श्री अगरचन्द नाहटा

पूज्यता का भाव :

आत्मा अनंत शक्ति का स्रोत है पर उसकी वह शक्ति दबी हुई है, छिपी हुई है। उसे जो जितने अंश में प्रगट कर लेते हैं, वे उतने ही अंश में पुरुष से महापुरुष बन जाते हैं। पुरुष रूप में तो व्यक्ति पैदा होता है और महापुरुष बनता है, अपने पुरुषार्थ और सत्कार्यों से। जो व्यक्ति अपने गुणों का विकास कर केवल अपने उत्थान तक ही सीमित नहीं रहता, पर देश एवं समाज के उत्थान में अर्थात् दूसरों के उत्थान में सहयोगी बनता है, वह पूज्य बन जाता है। पूज्यता चाहने से नहीं मिलती, गुणों से मिलती है। दूसरे व्यक्ति स्वयं उनके गुणों से आकर्षित होकर पूज्य भाव रखने लगते हैं। जो दूसरों का उपकार करता है, कल्याण करता है, उत्थान करता है, वह श्रद्धा एवं भक्ति का पात्र या केन्द्र स्वयं बन जाता है। इसी बात को महान् तत्त्वज्ञ श्रीमद् देवचन्द जी ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में हृदयस्पर्शी एवं मार्मिक वाक्यों में १२ वें तीर्थंकर वासुपूज्य भगवान् के स्तवन में कहा है—

पूजना तो कीजे रे जिन तणी रे, जसु प्रगट्यो पूज्य स्वभाव।
परकृत पूजा रे जे इच्छे नहीं रे साधक कारज दाव ॥पू०॥१॥

इसी स्तवन के अन्त में उन्होंने एक बहुत ही सुन्दर उक्ति कही है—

जिनवर पूजा रे ते निज पूजना रे, प्रगटे अन्वय शक्ति।
परम[illegible] [illegible]सी अनुभवे रे, देवचन्द्र पद व्यक्ति ॥पू०॥

[illegible]पने को कोई पूज्य माने या पूजा करे यह कभी नहीं [illegible] उनके विशिष्ट गुणों के कारण स्वयं प्रगट हो [illegible] सिद्धि [illegible] बन जाता है। जिनेश्वर या [illegible] पूजा है क्योंकि उनसे

अनेकतावादी होता है । जहां ज्ञान अनेकता में व्याप्त एकता का प्रतिपादन करता है, वहां विज्ञान एकता में अनेकता का । इसीसे उसकी दृष्टि वस्तुवादी, भौतिक-वादी और यथार्थपरक होती है, परन्तु विज्ञान ने भी आज अपनी दिशा वदल दी । विश्व के सभी वैज्ञानिक अब अपने अनुसंधानों और आविष्कारों को व्यापक और विराट मानवीय उच्चता के हितार्थ प्रस्तुत करना चाहते हैं । विज्ञान अपनी गति के अंतिम चरण पर पहुंच रहा है और यही कारण है कि अब विज्ञान और दर्शनभूत–सृष्टि और मनो–सृष्टि समवाय होकर किसी चिरन्तन आत्मतत्व की ओर उन्मुख हो रही है । यही वैज्ञानिक अध्यात्म आज मनुष्य की समस्त मानसिक और जैविक संगतियों के नए धरातल खोज रहा है । धर्म की मर्यादा का भी यही प्रयोजन है–जो मनुष्य को विवेकयुक्त करे, उसे शुभ और अशुभ की परिणाम–दृष्टि देकर आत्म–विकास की सही दिशा बताए, उसकी व्यष्टि चेतना को समष्टि चेतना में परिणत करे । मेरी धारणा है कि इस नूतन आध्यात्म दृष्टि का सूत्रपात जैन जगत् में आचार्यश्री जवाहरलाल जी ने बहुत पहले प्रारम्भ कर दिया था । वे अतिशय ज्ञानी थे । जन्म शताब्दी के पुण्य महोत्सव पर उन्हें मेरी अशेष प्रणति ।

कोई भी वल चारित्रवल की तुलना नहीं कर
जिसमें चारित्र का वल है, उसे दूसरे वल अनायास
हो जाते हैं । राम के पास चारित्रवल के सिवाय और व
चारित्रव[illegible] ौलत सभी वल उन्हें प्राप्त हो गए ।
[illegible] सभी वल थे , मगर चारित्रवल के

जवाहरलाल जी म. सा.

अनेकतावादी होता है । जहां ज्ञान अनेकता में व्याप्त एकता का प्रतिपादन करता है, वहां विज्ञान एकता में अनेकता का । इसीसे उसकी दृष्टि वस्तुवादी, भौतिकवादी और यथार्थपरक होती है, परन्तु विज्ञान ने भी आज अपनी दिशा बदल दी । विश्व के सभी वैज्ञानिक अब अपने अनुसंधानों और आविष्कारों को व्यापक और विराट मानवीय उच्चता के हितार्थ प्रस्तुत करना चाहते हैं । विज्ञान अपनी गति के अंतिम चरण पर पहुंच रहा है और यही कारण है कि अब विज्ञान और दर्शनभूत–सृष्टि और मनो–सृष्टि समवाय होकर किसी चिरन्तन आत्मतत्व की ओर उन्मुख हो रही है । यही वैज्ञानिक अध्यात्म आज मनुष्य की समस्त मानसिक और जैविक संगतियों के नए धरातल खोज रहा है । धर्म की मर्यादा का भी यही प्रयोजन है–जो मनुष्य को विवेकयुक्त करे, उसे शुभ और अशुभ की परिणाम–दृष्टि देकर आत्म–विकास की सही दिशा बताए, उसकी व्यष्टि चेतना को समष्टि चेतना में परिणत करे । मेरी धारणा है कि इस नूतन आध्यात्म दृष्टि का सूत्रपात जैन जगत् में आचार्यश्री जवाहरलाल जी ने बहुत पहले प्रारम्भ कर दिया था । वे अतिशय ज्ञानी थे । जन्म शताब्दी के पुण्य महोत्सव पर उन्हें मेरी अशेष प्रणति ।

कोई भी बल चारित्रबल की तुलना नहीं कर सकता । जिसमें चारित्र का बल है, उसे दूसरे बल अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं । राम के पास चारित्रबल के सिवाय और क्या था ? चारित्रबल की बदौलत सभी बल उन्हें प्राप्त हो गए । इसके विरुद्ध रावण के पास सभी बल थे, मगर चारित्रबल के अभाव में वे सब निरर्थक सिद्ध हुए ।

(आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.)

प्रभावशाली आचार्य

● श्री अगरचन्द नाहटा

पूज्यता का भाव :

आत्मा अनंत शक्ति का स्रोत है पर उसकी वह शक्ति दबी हुई है, छिपी हुई है। उसे जो जितने अंश में प्रगट कर लेते हैं, वे उतने ही अंश में पुरुष से महापुरुष बन जाते हैं। पुरुष रूप में तो व्यक्ति पैदा होता है और महापुरुष बनता है, अपने पुरुषार्थ और सत्कार्यों से। जो व्यक्ति अपने गुणों का विकास कर केवल अपने उत्थान तक ही सीमित नहीं रहता, पर देश एवं समाज के उत्थान में अर्थात् दूसरों के उत्थान में सहयोगी बनता है, वह पूज्य बन जाता है। पूज्यता चाहने से नहीं मिलती, गुणों से मिलती है। दूसरे व्यक्ति स्वयं उनके गुणों से आकर्षित होकर पूज्य भाव रखने लगते हैं। जो दूसरों का उपकार करता है, कल्याण करता है, उत्थान करता है, वह श्रद्धा एवं भक्ति का पात्र या केन्द्र स्वयं बन जाता है। इसी बात को महान् तत्त्वज्ञ श्रीमद् देवचन्द जी ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में हृदयस्पर्शी एवं मार्मिक वाक्यों में १२ वें तीर्थंकर वासुपूज्य भगवान् के स्तवन में कहा है—

पूजना तो कीजे रे जिन तणी रे, जसु प्रगट्यो पूज्य स्वभाव।
परकृत पूजा रे जे इच्छे नहीं रे साधक कारज दाव ।।पू०।१।।

इसी स्तवन के अन्त में उन्होंने एक बहुत ही सुन्दर उक्ति कही है—

जिनवर पूजा रे ते निज पूजना रे, प्रगटे अन्वय शक्ति ।
परमानंद विलासी अनुभवे रे, देवचन्द्र पद व्यक्ति ।।पू०।।

अर्थात् भगवान् अपने को कोई पूज्य माने या पूजा करे यह कभी नहीं चाहते, उनका पूज्य भाव तो उनके विशिष्ट गुणों के कारण स्वयं प्रगट हो जाता है और साधकों के लिये सिद्धि का कारण बन जाता है। जिनेश्वर या महापुरुष की पूजा वास्तव में अपनी आत्मा की ही पूजा है क्योंकि उनसे

अनेकतावादी होता है । जहां ज्ञान अनेकता में व्याप्त एकता का प्रतिपादन करता है, वहां विज्ञान एकता में अनेकता का । इसीसे उसकी दृष्टि वस्तुवादी, भौतिकवादी और यथार्थपरक होती है, परन्तु विज्ञान ने भी आज अपनी दिशा बदल दी । विश्व के सभी वैज्ञानिक अब अपने अनुसंधानों और आविष्कारों को व्यापक और विराट मानवीय उच्चता के हितार्थ प्रस्तुत करना चाहते हैं । विज्ञान अपनी गति के अंतिम चरण पर पहुंच रहा है और यही कारण है कि अब विज्ञान और दर्शनभूत–सृष्टि और मनो–सृष्टि समवाय होकर किसी चिरन्तन आत्मतत्व की ओर उन्मुख हो रही है । यही वैज्ञानिक अध्यात्म आज मनुष्य की समस्त मानसिक और जैविक संगतियों के नए धरातल खोज रहा है । धर्म की मर्यादा का भी यही प्रयोजन है–जो मनुष्य को विवेकयुक्त करे, उसे शुभ और अशुभ की परिणाम–दृष्टि देकर आत्म–विकास की सही दिशा बताए, उसकी व्यष्टि चेतना को समष्टि चेतना में परिणत करे । मेरी धारणा है कि इस नूतन आध्यात्म दृष्टि का सूत्रपात जैन जगत् में आचार्यश्री जवाहरलाल जी ने बहुत पहले प्रारम्भ कर दिया था । वे अतिशय ज्ञानी थे । जन्म शताब्दी के पुण्य महोत्सव पर उन्हें मेरी अशेष प्रणति ।

कोई भी बल चारित्रबल की तुलना नहीं कर सकता । जिसमें चारित्र का बल है, उसे दूसरे बल अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं । राम के पास चारित्रबल के सिवाय और क्या था ? चारित्रबल की बदौलत सभी बल उन्हें प्राप्त हो गए । इसके विरुद्ध रावण के पास सभी बल थे , मगर चारित्रबल के अभाव में वे सब निरर्थक सिद्ध हुए ।

(आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.)

आवश्यक समझ कर इन्होंने अपने शिष्य श्री गणेशीलालजी व श्री घासीलालजी को संस्कृत की अच्छी शिक्षा दिलवाई । इसी का परिणाम है कि श्री घासीलालजी ने आगमों की संस्कृत टीकाएं रची । स्थानकवासी समाज में आगमों की सबसे पहले टीका उन्होंने ही बनाई एवं संस्कृत में कुछ काव्य भी रचे ! पूज्य श्री जवाहरलाल जी की दूरदर्शिता व कुशल नेतृत्व के कारण उनके समुदाय की काफी उन्नति हुई और आज भी हो रही है ।

पूज्य श्री जवाहरलाल जी से मेरा सम्पर्क अधिक नहीं हो सका पर जब वे बीकानेर एवं भीनासर में विराजते थे, तब दर्शन व व्याख्यान सुनने का कभी कभी मौका मिला था । उनका व्यक्तित्व आकर्षक और व्याख्यान प्रभावशाली होता था। वे स्पष्ट एवं निर्भीक वक्ता थे । युगानुकूल प्रवृत्तियों को उन्होंने पनपाया और आगे बढ़ाया, जब कि उनके सम्प्रदाय व समुदाय के कुछ व्यक्तियों को वे अनुकूल नहीं पड़ती थीं फिर भी उन्होंने अपने मन्तव्यों व विचारों को दृढ़ता के साथ रखा और खादी पहनने आदि प्रवृत्तियों को तो स्वयं अपनाया एवं श्रावकों को अपनाने की प्रेरणा दी । लोकमान्य तिलक, एवं गांधीजी आदि उनके सम्पर्क में आये और गांधीजी के विचारों का तो उन पर काफी प्रभाव भी पड़ा । इसी से कई राष्ट्रीय प्रवृत्तियों को अपनाने की, उन्होंने श्रावक समाज को भी प्रेरणा दी ।

बीकानेर आने पर तेरापंथी विचारधारा से उन्हें संघर्ष करना पड़ा । थली में, जो तेरापंथी सम्प्रदाय का गढ़ माना जाता था, वहां भी उन्होंने विहार करके सरदारशहर, चूरु आदि में अच्छा प्रभाव डाला । तेरापंथी विचार धारा के खण्डन में उन्होंने 'अनुकम्पा विचार' और 'सद्धर्म मंडन' जैसे ग्रन्थों की रचना की ।

आपके व्याख्यानों का संग्रह करने का जो प्रयत्न किया गया, वह बहुत ही लाभदायक बना । उन्हीं के आधार से 'जवाहर किरणावली' के ३५ भाग प्रकाशित हुए । श्री चम्पालाल जी बांठिया उनके विशेष भक्त श्रावकों में से हैं, जिनके प्रयत्न से उनकी विस्तृत जीवनी संवत् २००४ में प्रकाशित हुई और उनके विचारों का संकलन 'जवाहर विचारसार' के नाम से प्रकाशित किया गया । इन दोनों ग्रन्थों एवं जवाहर किरणावली आदि से आपके जीवन चरित्र, विचार, उपदेश, व्याख्यान शैली आदि का भली भांति परिचय मिल जाता है । अनेक प्रान्तों में घूम कर उन्होंने अच्छा धर्म प्रचार किया ।

आपके व्याख्यान-संग्रह के कई ग्रंथ गुजराती में भी छपे हैं ।

प्रेरणा ग्रहण कर अपनी आत्मा, गुणों का विकास कर स्वयं पूज्य बन जाती है। जिन गुणों से वे पूज्य बनें, उन गुणों का प्रगटीकरण जब भक्त की आत्मा में हो जाता है, वह अपने आप भगवान् या पूज्य बन जाता है।

आचार्यश्री का महत्त्व :

तीर्थंकरों की तो अपनी विशिष्टता होती ही है। उनके अभाव में आचार्यगण चतुर्विध संघ का संचलन करते हैं, उनके योग एवं क्षेम का निर्वाह करते हैं, इसलिये अर्हन्त और सिद्ध के बाद आचार्यों को नमस्कार किया जाता है। पंच परमेष्ठी में उनको तीसरा स्थान दिया गया है। समय समय पर ऐसे समर्थ आचार्यों के द्वारा ही जैन संघ आगे बढ़ा और उन्नत बना। आचार्य, संघ के नेता होते हैं, वे युगानुकूल द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार संघ को नया मोड़ देते हैं। पथ प्रदर्शन करते हैं। इसलिये 'गुरु' पद बड़े महत्त्व का माना गया है।

युगपुरुष जवाहर :

१६ वीं शताब्दी में लोंकाशाह ने जो विचार–धारा रखी, उससे प्रभावित होकर ऋषि भाणा आदि दीक्षित हुए। लोंकाशाह के अनुयायी अनेक समुदायों में विभक्त हो गये क्योंकि उनमें एक कुशल नेतृत्व का अभाव रहा। उनके अनुयायियों की प्रमुख ४ शाखाएं थीं—(१) गुजराती लोंका (२) नागौरी लोंका (३) उत्तरार्ध गच्छ और (४) बीजामती। इनमें से बीजामतियों ने तो अपना स्वतन्त्र विजय गच्छ चलाया और मूर्तिपूजा को स्वीकार किया। उत्तरार्ध गच्छ, ऋषि सरवा से पंजाब में प्रवर्तित हुआ। नागौरी लोंका गच्छ नागौर के हीरागर और रूपजी से प्रवर्तित हुआ और ऋषि भाणा की परम्परा गुजराती लोंका गच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस परम्परा में १८ वीं शताब्दी में श्री धर्मसिंह जी, धर्मदास जी और लवजी की परम्परा ढूंढिया, स्थानकवासी २२ टोला या साधुमार्गी के नाम से प्रसिद्ध हुई। आगे चलकर उसी परम्परा में पूज्यश्री श्रीलाल जी हुए जिनके पट्टधर पूज्यश्री जवाहरलाल जी अपने समय के युगपुरुष प्रभावशाली आचार्य हुए, जो छोटे से गांव में और साधारण स्थिति के घर में संवत् १९३२ में जन्मे। उन्हें छोटी सी उमर में माता और पिता, फिर आश्रयदाता मामा का भी वियोग सहना पड़ा। साधुओं के संतसग से वैराग्य उत्पन्न हुआ और १६ वर्ष की अवस्था में ही दीक्षित हो गये। घर में तो पढ़ाई विशेष नहीं हो सकी पर लगन और प्रतिभा थी, इसलिये आगे चल कर वे शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान और कुशल वक्ता बने। संस्कृत भाषा का ज्ञान

गरिमामय व्यक्तित्व

● श्री मोतीलाल सुराना

[१]

वड़ों की बड़ी बातें :

आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज साहब तथा आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब का जब संगम हो गया तो विहार भी एक साथ ही हुआ। दोनों आचार्यों एवं साथी सन्त–समुदाय को पहुंचाने भी वड़ी संख्या में श्रावक–श्राविकाएं एकत्रित हुई थीं। गांव की सीमा के बाहर जन समुदाय को आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. ने मंगलिक सुनकर वापस लौट जाने का अवसर देखने को कहा। अतः मंगलिक फरमाने के लिये प्रार्थना की गई। दोनों आचार्यश्री वहां से भिन्न–भिन्न दिशा में विहार करने वाले थे। आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. न केवल वय में ही, अपितु दीक्षा में भी काफी बड़े थे। परिपाटी के अनुसार तथा अनुशासन के लिहाज से तो मंगलिक फरमाने के अधिकारी आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. ही थे पर वड़ों की तो बातें ही वड़ी होती हैं। स्वयं आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. ने आचार्य श्री हस्तीमल जी म. सा. को मंगलिक फरमाने के लिये आग्रह किया। आचार्य श्री हस्तीमल जी म. सा. से मंगलिक सुनकर जनता–जनार्दन वापिस लौट गई। सच है, जो दूसरों को वड़ा समझता है, वही बड़ा होता है।

[२]

सहज विनम्रता :

महात्मा गांधी आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज साहब के स्थान पर पधारने वाले थे। शाम का समय निश्चित हुआ था। आचार्यश्री ने वार्तालाप के समय की स्थिति को पहले से सोचा। राष्ट्र के सर्वोच्च नेता राष्ट्रपिता आवेंगे, तब क्या मैं पाट पर बैठा रहूं तथा महात्मा जी नीचे फर्श पर बैठें,

व्याख्यानों के संग्रह एवं प्रकाशन से उनकी वाणी का लाभ आज भी मिल रहा है एवं आगे भी मिलता रहेगा ।

जिन दिनों आप बीकानेर एवं भीनासर में विराज रहे थे, उन दिनों फलौदी के विशिष्ट श्रावक फूलचन्द जी झाबक जब बीकानेर पधारते थे तो पूज्यश्री जवाहरलाल जी से मिलने व व्याख्यान सुनने कभी-कभी जाया करते थे। वे कट्टर मूर्तिपूजक और मूर्तिपूजक समाज के मुखिया थे, फिर भी वे बड़े गुणग्राही थे, इसलिए पूज्यश्री जवाहरलाल जी की प्रसंशा किया करते थे। फूलचन्द जी से हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध था, इसलिए पूज्यश्री जवाहरलाल जी के गुणों की चर्चा से में भी प्रभावित हुआ ।

वास्तव में श्री जवाहरलाल जी अपने समय के विशेषत: स्थानकवासी समाज के तो उल्लेखनीय प्रभावशाली संत एवं आचार्य थे । संवत् २०३२ में उनकी जन्म शताब्दी मनाई जा रही है । यह एक युगपुरुष व प्रभावशाली आचार्य की स्मृति रूप में अवश्य ही साधुमार्गी संघ की कर्त्तव्य के प्रति जागरूकता की द्योतक है । उनकी विचार धारा के कुछ नमूने 'श्रमणोपासक, में नियमित रूप से प्रकाशित होते रहे हैं । कई जैन कथानकों पर भी उन्होंने खूब विस्तृत रूप में प्रकाश डाला हैं । शताब्दी के प्रसंग से मैं प्रस्तुत लेख द्वारा अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहा हूं ।

❀ ❀ ❀

जैसे दीपक के प्रकाश के सामने अन्धकार नहीं रह सकता, उसी प्रकार शील के प्रकाश के सामने पाप का अन्धकार नहीं ठहर सकता । मगर पाप के अन्धकार को मिटाने और शील के प्रकाश को फैलाने के लिए दृढ़ता, धैर्य और पुरुषार्थ की अपेक्षा रहती है ।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज)

सुदृढ़ दीपस्तम्भ

● श्री नथमल सागरमल लुंकड़

महापुरुष संसार की अनमोल निधि होते हैं । वे अपने ज्ञान, आचरण एवं कार्यों द्वारा संसार को अमूल्य देन देकर जाते हैं । उनका जीवन मानव के लिये दीपस्तम्भ के समान होता है । महासागर में नाविक के लिये दीपस्तम्भ ही मार्गदर्शक बनता है । एक प्रकाश–पुञ्ज घनघोर अंधकार को नष्ट कर देता है । उसी प्रकार महापुरुषों का जीवन व उपदेश अंधकाराच्छन्न मानव–जीवन को प्रकाश से आलोकित कर देता है। वह अज्ञान–रूपी अंधकार में भटकने वाले मानव को दिव्य–प्रकाश देता है । मानव का क्या कर्त्तव्य है, मानव-जीवन की सार्थकता किसमें है, यह सब उस प्रकाश में हमें स्पष्ट दिखाई देता है ।

मानव–जीवन धर्ममय होना चाहिये । धर्महीन जीवन स्वत्वहीन रहेगा । धर्म को जीवन का अमृत कहा जा सकता है । अमृत प्राप्त हो जाने से जीवन में शांति, आनन्द और शीतलता प्राप्त हो जाती है, नश्वरत्व मिट कर अमरत्व प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार धर्ममय–जीवन से शांति और आनन्द तो मिलता ही है अमरत्व भी प्राप्त हो सकता है । लेकिन अमृत क्या है ? इसके बारे में तो हमने पुराणों में सिर्फ सुना है, प्रत्यक्ष देखा नहीं है । लेकिन धर्ममय–जीवन अंगीकार करने वालों के जीवन को तो हम प्रत्यक्ष देखते हैं । उनके जीवन की महानता हमें स्पष्ट तौर से दिखाई देती है । ऐसे ही महापुरुषों में एक आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. थे । संसार के लिये आचार्यश्री की महान् देन है । आचार्यश्री महान् आध्यात्मिक संत थे । जितना उनका जैनधर्म का अत्यन्त गहरा अध्ययन एवं सूक्ष्म चिंतन था, उतना ही उनका व्यक्तित्व भी प्रभावशाली था ।

आचार्यश्री के विचार युगानुकूल एवं क्रांतिकारी थे । अपने विचारों को वे श्रोताओं के समक्ष अत्यन्त प्रभावशाली शैली में रखते थे । उन समानि

ऐसा कैसे हो सकता है ? यदि उनके आने पर मैं पाट पर से उठूं व उनके सामने आदर प्रदर्शित करूं, यह भी मुनि मर्यादानुसार उचित नहीं है, क्योंकि जैन मुनि गृहस्थ का सम्मान नहीं कर सकता । इस प्रकार विचार करने के पश्चात् आचार्यश्री ने एक उपाय सोच ही लिया । महात्मा जी तो निश्चित समय पर पधारने वाले थे ही, अतः आचार्यश्री ने समय से १५ मिनिट पहले हॉल में टहलना शुरू कर दिया । बस, फिर क्या था ? जैसे ही महात्मा जी पधारे, आचार्यश्री उनकी ओर मुखातिब होकर प्राथमिक बातचीत के बाद आध्यात्मिक विषय पर वार्तालाप करने में व्यस्त हो गये ।

सच है, ज्ञानी पुरुष विषम परिस्थिति में एक ऐसा मार्ग निकाल लेते हैं, जिससे सभी संतुष्ट रहते हैं । आचार्यश्री की यह सहज विनम्रता कितनी स्पृहणीय एवं महनीय है ।

[३]

खद्दर और आचार्यश्री :

भारत की आजादी के पहले बीस वर्ष बड़ी विषम परिस्थिति के रहे । खादी तो क्या, सफेद टोपी तक से तत्कालीन शासन को चिढ़ थी । ऐसे विकट समय में भी आचार्य श्री जवाहरलाल जी ने अल्पारंभ तथा महारंभ जैसे गूढ़ विषय पर विवेचन करते हुए अपने प्रवचनों में सदैव खादी वापरने पर जोर दिया ।

संसार में जितने भी कपड़े बनाने वाले कल कारखाने हैं, उन सबका पाप हम सब को, जो कि मिलों के बने कपड़े वापरते हैं, लग रहा है । ऐसी स्थिति में जो खद्दर पहनने का नियम ले लेता है तो वह सहज में कल कारखानों के पाप से बच जाता है, क्योंकि खादी तो हाथ से चलने वाले सांचों से बनाई जाती है । खादी में एक विशेषता और यह है कि उसका पैसा सीधा उन गरीब लोगों के हाथों में जाता है जो अपने हाथ से रात दिन कठोर श्रम करते हैं । सफेद खादी में तो नई नई डिजाइन और नये-नये रंगों का भी झंझट नहीं रहता । इस प्रकार खादी वापरने में सहज में ही अपरिग्रह के नियमों का भी आसानी से पालन हो सकता है ।

आचार्य श्री जवाहरलाल जी स्वतः तो खादी पहनते ही थे, पर बाद में आम लोगों में तथा जैन सन्तों में भी खादी के प्रति सन्तोषजनक लगाव रहा ।

जीवन धर्म के व्याख्याता

● श्री भूरेलाल बया

पूज्य आचार्य श्री श्रीलाल जी महाराज जैसे भव्य, उदात्त और गहन गंभीर के पदासीन आचार्य प्रवर श्री जवाहरलाल जी महाराज सचमुच ही नरश्रेष्ठ और क्रांतिकारी संत थे । यदि उनके शासनकाल का विचार किया जाय तो वह समय ऐसा था, जब सारा देश अंग्रेजों की दासता में जकड़ा हुआ था और कहने को ६०० के करीब देशी रियासतें और उनके नीचे हजारों की संख्या में बड़े-छोटे जागीरदार व जमींदारों की अपनी सत्ता थी, किन्तु उनमें से अधिक लोकहित के बजाय भोग-विलास में फंसे हुए थे और जनता उनके आतंक से भय-ग्रस्त थी ।

गांधीयुग के उदय से जहां देश में नई चेतना का उदय हुआ, वहीं चरखा, खादी और स्वदेशी की बात करना अपने आपको खतरे में डालना था। अतः साधुमना लोग ऐसी बातों से दूर ही रहा करते थे । जैन समाज की स्थिति तो इससे भी सोचनीय थी । सैद्धांतिक मतभेद, साम्प्रदायिकता के साथ आपसी वैमनस्यता का बोलबाला होने से उसकी शक्ति क्षीण हो रही थी ।

ऐसे नाजुक समय में चरित्रनायक का, श्रमण-परंपरा में, आचार्य के रूप में उदय होना, देश में नव जागरण और स्वतन्त्रता की जो हवा वह रही थी, उसको वेग देने वाली घटना ही कही जा सकती है । सब तरह के आरंभ समारंभ से बचने की एकांगी दृष्टि के बजाय जैन समाज में चूला, चक्की और चर्खे की आवाज गूंजने लगी । प्रारम्भ में जहां कट्टर माने जाने वाले साधु और श्रावक-श्राविकाओं के विरोध का सामना करना पड़ा, वहां उन्हीं में से एक ऐसे समुदाय का उदय हुआ जिन्होंने आचार्यश्री के उपदेश के अनुसार अपने जीवन को ढाला, जिसका असर जैनेतर तथा राष्ट्रीय विचारों के लोगों पर भी पड़ा । जैन समाज में आज जितने खादीधारी दिखाई देते हैं,

में कुछ साधु खेती करने के काम को निषिद्ध बताते थे, परन्तु आचार्यश्री ने खेती का महत्त्व शास्त्र सम्मत तरीके से सामने रखा। खेती करना श्रावकों के लिये निषिद्ध नहीं हो सकता, यह उन्होंने आनन्द एवं कामदेव जैसे श्रावकों का उदाहरण देकर बताया। दोनों श्रावक भगवान् महावीर के १२ व्रतधारी श्रावक थे व उनके यहां बहुत बड़ी खेती होती थी। खेती करने वाला अनाज का उत्पादन करता है जिससे संसार का पोषण होता है। अच्छी तरह से खेती करना, अच्छा अनाज पैदा करना व उचित मूल्य से जनता को देना, इस पवित्र भावना से खेती करनी चाहिये। खेती करना निषिद्ध बताना, यह अकर्मण्यता को प्रोत्साहन देना ही कहा जायगा।

विदेशी वस्त्र एवं मिलों के वस्त्र का उपयोग नहीं करना चाहिये। इस पर आचार्यश्री काफी बल देते थे। खुद वे खादी का ही उपयोग करते थे। उनके उपदेश से कई श्रावकों ने खादी पहनने का व्रत लिया था।

तपस्या करने के साथ जो आडम्बर किये जाते, उसका भी आचार्यश्री ने घोर विरोध किया था। तपस्या कर्मों की निर्जरा के लिये एवं आत्मा को शुद्ध करने के लिये की जाती है। आडम्बर युक्त तपस्या करने से उसका असली उद्देश्य व महत्त्व ही खत्म हो जाता है। तपस्या में शुद्ध आचार–विचार रख कर धर्म–चिंतन करना चाहिये।

साधु–संत एवं श्रावक को धर्ममय–जीवन रखने के लिये स्वास्थ्य-युक्त शरीर रखने की नितान्त आवश्यकता है, जिससे मन शांत रह सके Healthy mind in healthy body। इस ओर भी उन्होंने समाज का ध्यान आकर्षित किया था। नियमित योगासन करने चाहिये जिससे शरीर नीरोग रह कर धर्म–क्रिया करने में उत्साह रहेगा। यह बात आचार्यश्री ने सिर्फ दूसरों के लिये ही नहीं कही, आचार्यश्री स्वयं नियमित शीर्षासन, योगासन करते थे। यह स्वयं मैंने देखा है।

* *

परमात्मा का मौखिक नामस्मरण करने से सच्चा शरण नहीं मिलता। परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट धर्ममार्ग पर चलने से ही सच्चा शरण मिलता है

(आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.)

जीवन धर्म के व्याख्याता

● श्री भूरेलाल बया

पूज्य आचार्य श्री श्रीलाल जी महाराज जैसे भव्य, उदात्त और गहन गंभीर के पदासीन आचार्य प्रवर श्री जवाहरलाल जी महाराज सचमुच ही नरश्रेष्ठ और क्रांतिकारी संत थे। यदि उनके शासनकाल का विचार किया जाय तो वह समय ऐसा था, जब सारा देश अंग्रेजों की दासता में जकड़ा हुआ था और कहने को ६०० के करीब देशी रियासतें और उनके नीचे हजारों की संख्या में बड़े-छोटे जागीरदार व जमींदारों की अपनी सत्ता थी, किन्तु उनमें से अधिक लोकहित के बजाय भोग-विलास में फंसे हुए थे और जनता उनके आतंक से भय-ग्रस्त थी।

गांधीयुग के उदय से जहां देश में नई चेतना का उदय हुआ, वहीं चरखा, खादी और स्वदेशी की बात करना अपने आपको खतरे में डालना था। अतः साधुमना लोग ऐसी बातों से दूर ही रहा करते थे। जैन समाज की स्थिति तो इससे भी सोचनीय थी। सैद्धांतिक मतभेद, साम्प्रदायिकता के साथ आपसी वैमनस्यता का बोलवाला होने से उसकी शक्ति क्षीण हो रही थी।

ऐसे नाजुक समय में चरित्रनायक का, श्रमण-परंपरा में, आचार्य के रूप में उदय होना, देश में नव जागरण और स्वतन्त्रता की जो हवा वह रही थी, उसको वेग देने वाली घटना ही कही जा सकती है। सब तरह के आरंभ समारंभ से बचने की एकांगी दृष्टि के बजाय जैन समाज में चूला, चक्की और चर्खे की आवाज गूंजने लगी। प्रारम्भ में जहां कट्टर माने जाने वाले वाले साधु और श्रावक-श्राविकाओं के विरोध का सामना करना पड़ा, वहां उन्हीं में से एक ऐसे समुदाय का उदय हुआ जिन्होंने आचार्यश्री के उपदेश के अनुसार अपने जीवन को ढाला, जिसका असर जैनेतर तथा राष्ट्रीय विचारों के लोगों पर भी पड़ा। जैन समाज में आज जितने खादीधारी दिखाई देते हैं,

उनमें से अधिकतर पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज के उपदेश से ही प्रभावित हुए थे । यही कारण था कि स्वयं महात्मा गांधी भी आपके व्याख्यान में शामिल हुए और कई वार मिलकर चर्चा–वार्ता करने का अवसर आया ।

आचार्यश्री की दृष्टि कितनी विशाल थी, इसका प्रमाण उनके व्याख्यानों से मिलता है । आपने 'जीवनधर्म' की व्याख्या करते हुए जो क्रांतिकारी विचार प्रकट किये, वे आज भी हमारा पथ–प्रदर्शन करते हैं ।

"जीवनधर्म" का मर्म समझने का अर्थ है—आत्मा को पहिचानना । ग्रामधर्म, नगर धर्म, राष्ट्र धर्म आदि जीवन के अंग–उपांग हैं। जहां तक समानता का आदर्श जीवन में नहीं उतरता, वहां तक आत्मा की पहिचान नहीं होती और समानता का आदर्श जीवन में उतारने के लिये सबसे पहले जीवन में मानवता प्रकट करनी पड़ती है, क्योंकि सभी धर्म महान् हैं, किन्तु मानव धर्म उन सब में महान् है ।

मानवधर्म इतना सादा है कि उसे घड़ी भर में सब सीख सकते हैं। फिर भी मानव धर्म में रहने वाली गहनता इतनी उदार और भव्य है कि वह जीवन भर की शुद्धि की मांग करती है । जीवन धर्म का आदर्श विकारों को जीतना और विश्वबन्धुत्व सीखना है ।

❀
❀
❀
❀

मोतियों की माला पहिन कर लोग फूले नहीं समाते, परन्तु उससे जीवन का वास्तविक कल्याण नहीं हो सकता । वीरवाणी रूपी अनमोल मोतियों की माला अपने गले में धारण करने वाले ही अपने जीवन को कल्याणमय बना सकते हैं ।

पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.

विलक्षण एवं अद्भुत व्यक्तित्व

● श्री महावीरचंद धाड़ीवाल

आचार्य श्री गुरुदेव के नाम मात्र से बचपन की धुंधली सी स्मृति सजीव हो उठती है। गौर वर्ण, स्थूल शरीर, ओज से प्रदीप्त मुख मंडल, नेत्रों से झलकता विद्युत का सा तेज, सुधा सी मीठी वाणी, युक्तियों में तेज सी तीक्ष्णता और विवेचन में नभ मण्डल सी विशालता। जिसने देखा वह सहज ही नहीं भूल सकता विशालतम व्यक्तित्व के धनी स्व० आचार्य देव को। अद्भुत आकर्षण था उनके व्यक्तित्व में। कुछ ऐसी विलक्षणता एवं अद्भुतता रही हुई थी, जो सहज ही दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी।

मुझे याद आ रही है पोरबन्दर की एक छोटी सी घटना। हजारों की जन-मेदिनी मंत्रमुग्ध आचार्य श्री देव का प्रवचन सुन रही थी। मैं छोटा, बहुत छोटा था। अचानक उठा और धीरे-धीरे चलते २ भरे व्याख्यान में आचार्य श्री गुरुदेव की गोद में जा बैठा। आज जब कभी चिन्तन के क्षणों में होता हूं तो सोचता हूँ कि ऐसा कौनसा आकर्षण था, जो बरबस मेरे चंचल किन्तु बालक मन को उन तक खींच ले गया। अल्पज्ञ होने के कारण आज भी यह प्रश्न के रूप में खड़ा है और मैं सोचता ही रह जाता हूँ।

मैंने भीनासर में असह्य पीड़ा में भी शान्ति-रूप गुरुदेव को देखा है। उस समय मुझे ऐसा लगता था कि गुरुदेव आत्मस्थित हो गये हैं, देह का जरा भी मोह नहीं। डाक्टर आपरेशन कर रहे हैं। आप होश में हैं। स्वाध्याय में तल्लीन। पं० सिरेमल जी म. सा. स्वाध्याय सुना रहे हैं। कहीं किंचित् भी व्यवधान नहीं। उफ् शब्द नहीं। चकित डाक्टर उनकी ओर निहार रहे हैं और आपस में कह रहे हैं—अद्भुत सहनशीलता है। ये मानव नहीं, महामानव हैं।

स्व० आचार्य श्री गुरुदेव वस्तुतः युग-प्रवर्तक आचार्य थे। अल्पारंभ

एवं महा आरंभ की जो आगम–सम्मत व्याख्या आपने जगत् के समक्ष रखी, वह इस युग की नवीन एवं मौलिक उपलब्धि मानी जायेगी। वर्षों पूर्व दिये गये व्याख्यान जो 'जवाहर किरणावलियों' के रूप में संकलित हैं, आज भी उतने ही मौलिक एवं पठनीय हैं, जितने उस युग में थे। राष्ट्र प्रेम एवं राष्ट्र-कल्याण की मंगल भावना, मानवोत्थान की सतत जिज्ञासा से ओतप्रोत आपकी अद्भुत व्याख्यान शैली ने राष्ट्र के बड़े–बड़े नेताओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया और महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, मदनमोहन मालवीय, सरदार वल्लभ भाई पटेल जैसे राष्ट्र नेता समय २ पर आपके दर्शनार्थ आये।

आज बड़ी प्रसन्नता की बात है कि ऐसे महान युगप्रवर्तक आचार्य श्री देव के जन्म शताब्दी महोत्सव को वर्ष भर राष्ट्रस्तर पर मनाने का आयोजन किया गया है एवं स्व० आचार्य श्री का स्वप्न "वीर संघ योजना" को मूर्त रूप दिया गया है। इस शताब्दी महोत्सव पर स्व० आचार्य श्री गुरुदेव के चरणों में शतशत वन्दन के पश्चात् यही कामना करता हूँ कि देव ! आपके बताये हुए मार्ग पर चलकर हम अपनी आत्मा का कल्याण करें।

तुझे मानव–शरीर मिला है, जो संसार का समस्त वैभव देने पर भी नहीं मिल सकता। सम्पूर्ण संसार की विभूति एकत्र की जाय और उसके बदले यह स्थिति प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय तो क्या ऐसा होना सम्भव है ?

पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.

गहरी सूझबूझ के धनी

● श्री प्रतापचंद्र भूरा

स्वर्गीय पूज्य श्री १००८ श्री जवाहरलाल जी म. सा. का जैसा नाम है, उनमें वैसे ही गुण भी थे। वे सचमुच जवाहर थे, एक रत्न थे, सच्चे पारखी थे, मनोविज्ञान के पूर्ण ज्ञाता थे। उनके क्रांतिकारी विचार गहरे चिंतन–मनन पर आधारित थे। वे दूरदर्शी थे और उनकी सूझ–बूझ बहुत गहरी थी।

मोटा भाग/खोटा भाग :

एक समय आप देशनोक में विराजे हुए थे। संध्या का समय था। प्रतिक्रमण हो चुका था। कुछ श्रावक 'वृहदालोयणा के दोहे' बोल रहे थे। उनमें एक दोहा आया–'पाप छिपाया ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग।' इतना सुनते ही आचार्य श्री बोल उठे "अरे, यह क्या कह रहे हो ? यों कहो "पाप छिपाया ना छिपे, छिपे तो खोटा भाग। अगर पाप छिप जायगा तो वह सावधान नहीं होगा, अधिक पाप करेगा। उसका भाग मोटा नहीं, खोटा हो जायेगा। पाप का छिपना नहीं, प्रकट होना ही मोटा भाग है।"

आचार्य श्री का यह सारगर्भित वाक्य सुनते ही श्रावकों ने आचार्यश्री के सामने "तहत्" शब्द कह कर अपनी कृतज्ञता और स्वीकृति प्रकट की और उस दोहे को पुनः बोलने लगे—

पाप छिपाया ना छिपे, छिपे तो खोटा भाग।
दाबी–दूबी ना रहे, रूई लपेटी आग॥

परम्परा से चले आ रहे 'वृहदालोयणा के दोहे' में यह मनोवैज्ञानिक और क्रांतिकारी परिवर्तन आचार्य श्री के गहरे चिन्तन–मनन का ही परिणाम था।

जिलाओ और जीने दो :

आचार्य श्री की गहरी सूझ और क्रांतिकारी विचारों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। जहां सारा संसार कहता है–"जिओ और जीने दो," वहां आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. कहते हैं "जिलाओ और जीने दो"। बात ठीक है। जैन संस्कृति इतनी संकुचित नहीं है कि वह जीने से ही संतुष्ट रहे। वह तो जिलाने की बात कहती है। जीने का कार्य तो पशु भी करते हैं, फिर मनुष्य और पशु में अंतर क्या रहा ? यदि मनुष्य स्वयं जीवे और किसी मरते हुए को, कष्ट पीड़ित को नहीं जिलावे तो उसमें मानवता कहां रही ? वह पशु से विशेष कहां रहा ? उसकी करुणा का क्या हुआ ? जैन समाज ही नहीं, सारा संसार उनके इस नवीन विचार "जिलाओ और जीने दो" के लिये उनका आभारी है।

❀❀

आत्मबल प्राप्त करने की सीधी–सादी क्रिया यह है कि सच्चे अन्तःकरण से अपना बल छोड़ दो अर्थात् अपने बल का जो अहंकार तुम्हारे हृदय में आसन जमाये बैठा है, उसे निकाल बाहर करो। परमात्मा की शरण में चले जाओ। परमात्मा से जो बल प्राप्त होगा, वही आत्मबल होगा। जब तक तुम अपने बल पर—भौतिक बल पर निर्भर रहोगे, तब तक आत्मबल प्राप्त न हो सकेगा।

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.

❀

महान् दिव्य ज्योति

● श्रीमती विजयादेवी सुराणा

महान् क्रांतिकारी स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज सा. के प्रथम दर्शन का सौभाग्य अपने माता–पिता के साथ मुझे करीब ११ वर्ष की अवस्था में ही सौराष्ट्र के प्रसिद्ध नगर जामनगर में हुआ। उनके विस्तृत भाल, स्फीत वृक्ष, वृषभस्कंध, प्रलंबित बाहु तथा तेजोमय विशाल वपु के प्रथम दर्शन, कर ही मैं इतनी अधिक प्रभावित हुई कि मेरे मन में उनके दर्शन की सतत लालसा रहने लगी। मेरे माता–पिता के पुण्य योग से मुझे पुनः १३ वर्ष की उम्र में बगड़ी नगर के चातुर्मास में चार माह तक लगातार उनकी सेवा का सुअवसर प्राप्त हुआ। उस समय पूज्य श्री गुरुदेव के मुखारविंद से पहली बार 'सुखविपाक सुत्त,' सुबाहुकुमार जी एवं राजा हरिश्चंद्र तारामती का जीवन–चरित सुनने का सौभाग्य मिला, जिसके फलस्वरूप मेरे मन में पापों के प्रति वितृष्णा का भाव एवं सत्य पर अडिग आस्था उत्पन्न हुई। यह मेरा सौभाग्य ही था कि मेरे पुण्य योग से मेरी ससुराल वालों का भी उसी समय चार महीने के लिये पूज्य श्री गुरुदेव की दर्शन सेवा के लिए विराजना हुआ, जिससे हम दोनों को पूज्य श्री गुरुदेव के मुख से एक ही समकित प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पूज्य श्री गुरुदेव के त्याग, तपस्या एवं तेज से प्रभावित होकर नित्य एक सामायिक, पांचों तिथि हरी सब्जी, सातों कुव्यसन, रात्रि भोजन तथा अप–भाषण का त्याग एवं अपने से बड़ों को प्रणाम, नवकारसी आदि ही मेरी जीवन–साधना के अनिवार्य अंग हो गये। सामाजिक कार्य करने की शक्ति भी मुझे श्री गुरुदेव की कृपा से ही प्राप्त हुई।

पूज्य श्री गुरुदेव के अंतिम दर्शन का सौभाग्य मुझे बीकानेर में प्राप्त हुआ। उस समय उनके शरीर में महान् वेदना थी। केवल दूध ही उनके जीवन का आधार हो गया था। ऐसी स्थिति में भी गुरुदेव की शांत छवि को देखकर महान् आश्चर्य होता था। ऐसे तो वे कुछ छोटी–मोटी बीमारी में भी

तेले की तपस्या कर लेते थे । उनके राष्ट्रभक्ति पूर्ण उद्गारों एवं अल्पारंभ-महारंभ सम्बन्धी सदुपदेशों से प्रभावित होकर मेरे पतिदेव ने आजीवन खादी धारण करने का संकल्प किया, जिससे मेरे मन में भी खादी के वस्त्र धारण करने की इच्छा बलवती होने लगी । कुछ वर्षों के बाद मेरी धर्ममाता की आज्ञा प्राप्त होने पर मेरी धर्ममाता और मैंने खादी धारण करना प्रारंभ किया । खादी धारण करने से मुझे जो शांति प्राप्त हुई, वह अकल्पनीय है ।

मेरे पूज्य माता-पिता ने मेरे विवाह के अवसर पर मुझे 'जवाहर साहित्य' भेंट किया था, जिसके प्रभाव से मैं अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सदा प्रसन्नता का अनुभव किया करती थी । इसी बीच अचानक मेरे धर्मपितामह का स्वर्गवास हो जाने से मेरी धर्ममाता रौद्रध्यान में रहने लगी । 'जवाहर किरणावली' के पुण्यश्रवण के प्रताप से ही उनके जीवन की दिशा को नया आयाम प्राप्त हुआ और वे पूज्य श्री गुरुदेव की परम भक्त श्राविका बनी, एवं विशेष रूप से धर्म साधना के साथ प्रतिवर्ष पूज्य श्री गुरुदेव के दर्शन-सेवा का लाभ लेने लगी थी । ऐसे प्रभावशाली गुरु की महती कृपा भव-भव के लिये सुखदायिनी है, जिसे मैं कभी विस्मृत नहीं कर सकती । जो भी पुण्यात्मा एक बार उनके दर्शन लाभ ले पाते थे, वे उन्हें कभी भी विस्मृत नहीं कर पाते थे । उस महान् दिव्य ज्योति के पुण्य चरणों में मेरा शतशत वंदन ।

❀❀

यह संसार तपोमय है । तप से देवता भी कांप उठते हैं और तप के वशवर्त्ती होकर तपस्वी के चरणों की शरण ग्रहण करते हैं । ऋद्धि-सिद्धि, सुख-सम्पत्ति भी तप से ही मिलती है । तीर्थङ्कर की ऋद्धि सब ऋद्धियों में श्रेष्ठ है । वह भी तपस्वी के लिये दूर नहीं है ।

पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.

दूरद्रष्टा निर्भीक आचार्य

● श्रीमती धूरीदेवी पिरोदिया

आचार्यश्री जवाहरलाल जी म. सा. दूरद्रष्टा आचार्य थे। उन्होंने अछूतोद्धार एवं सामाजिक रूढ़ियों–कुरीतियों के सम्बन्ध में तब कहा था, जब देश परतन्त्र था। उस युग में कही गई बात आज अपना विशेष महत्त्व रखती है। एक बार का प्रसंग है कि रतलाम चातुर्मास में जंगल पधार कर चांदनी चौक में से होकर मुकाम पर जाते समय आपने देखा कि एक बीमार कुत्ता सड़क पर पड़ा है। लोग उसकी सेवा कर रहे हैं। कुत्ते को टाट बिछाकर लेटाया गया है। पास में पानी का बर्तन व दूध, मिठाई, पूड़ी आदि रखी है। पूज्यश्री ने व्याख्यान में कहा—यहां के लोग बड़े ही सेवा–भावी व दयालु हैं। बीमार कुत्ते की सेवा करते हैं पर यदि कोई हरिजन भाई–बहिन बीमार पड़ जावे तो क्या आप उसकी सेवा इसी प्रकार करेंगे? आप लोगों की चुप्पी से मालूम पड़ता है कि नहीं कर सकेंगे, क्योंकि वह अछूत है। इस पर आपने कहा कि मनुष्य की पुनवानी बड़ी है या पशु की पुनवानी बड़ी? भंगी आपका मैला उठा कर सफाई करता है, वह मरे पशु को उठाता है पर कुत्ता उसे खा जाता है। इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से बताया कि कुत्ता आपके चौक में जा सकता है, पर मनुष्य का कपड़ा अटक जाने में अपवित्र हो जाता है। अछूतोद्धार के इस मार्मिक प्रसंग ने लोगों को झकझोर डाला था। कई लोगों ने अछूतोद्धार की दिशा में कार्य करने के नियम आदि लिये।

एक समय जब अजमेर में पूज्यश्री विराजते थे, उस समय की बात है। एक बहन सूरजबाई चूड़ीवाले के यहां चूड़ा पहन रही थी। महाराज साहब को देख कर बहन ने परदा (घूंघट) निकाला। पूज्यश्री ने परदा करने के विषय में व्याख्यान में कहा—इस बहन को सबसे बुरी दृष्टि वाला मैं ही दिखाई पड़ा क्या ? इस प्रकार परदा व अन्य सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में महत्त्वपूर्ण योग दिया।

एक घटना रतलाम चातुर्मास की है। पूज्यश्री व्याख्यान में खादी पहनने का व विदेशी बस्त्रों के त्याग का उपदेश देते थे। उस वक्त रतलाम के मुख्य श्रावक श्री वर्धमान जी सेठ ने कहा, "गुरुदेव। यहां की सरकार खादी से बहुत नाराज है। अभी इस विषय पर कहना विपदग्रस्त है।" पूज्यश्री ने निःसंकोच कहा—यह मेरी जबाबदारी है और बड़े जोरों से लोगों को स्वदेशी धर्म समझाया। खादी के कपड़े पहनने का उपदेश वे देते ही रहे।

❀❀

गरीब की आत्मा में शुद्ध भावना की जो समृद्धि होती है, वह अमीर की आत्मा में शायद ही कहीं पाई जाती है। प्रायः अमीर की आत्मा दरिद्र होती है और दरिद्र की आत्मा अमीर होती है।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.)

❀

यथा नाम तथा गुण

● श्री कालूराम नाहर

हमारे चरित्रनायक श्रीजवाहराचार्य जी का नाम, यथा नाम तथा गुण वाला सिद्ध हो रहा है । आपके माता-पिता ने आपका नाम जवाहरलाल रख कर आशा प्रकट की कि यह बालक आगे जाकर अनेक जौहर दिखायेगा और इनकी आशा पूर्ण सफल हो गई । आपके पिता के देहावसान पर आप के मन में अत्यन्त हृदय-विदारक वेदना हुई और वैराग्य की भावना के अंकुर बढ़ने लगे । आपने जो व्यापार पूरे जोर शोर से कर रखा था, उसको समेटना शुरु किया और वैराग्य की ओर अग्रसर होकर पं० मुनि श्री मगनलाल जी म. सा. के पास दीक्षित हो गये । थोड़े ही समय के बाद आपके गुरु जी का साया भी आप से हट गया । आपके गुरु भाई पं० मुनि श्री मोतीलाल जी म. ने पूरी सान्त्वना देकर आपको ज्ञानार्जन करवाया । जिस प्रकार पं० मोतीलाल जी नेहरू के सान्निध्य में पं० जवाहरलाल जी नेहरू चमके, उसी प्रकार हमारे चरित्रनायक श्री मोतीलाल जी की अनुकम्पा से धार्मिक क्षेत्र में चमक उठे । गुजरात के महान् कवि मेघाणी ने अपने लेख में लिखा है कि हमारे देश में दो जवाहर हैं, एक राष्ट्रनायक-दूसरा धर्मनायक ।

परम पूज्यश्री जवाहराचार्य अपने समय में एक महान् क्रांतिकारी आचार्य हुए हैं । आपने थली प्रदेश में जो नई क्रांति की, उसकी समता अन्यत्र उपलब्ध होना कठिन है । आपने कठिन परिषह सहन करके वहां की जनता में वीतराग धर्म के सही तथ्य का प्रचार-प्रसार किया, वह अविस्मरणीय है । वहां पर स्थानकवासी सन्तों का पधारना अत्यन्त ही दुर्लभ था । लोगों के अन्दर ऐसी अन्ध-विश्वासी मान्यताएं डाल दी गईं कि माता-पिता की सेवा में एकांत पाप है । अपने साधुओं के सिवाय अन्य साधुओं को अन्न-पानी देना व सेवा करना एकान्त पाप है । वहां के भोले-भाले प्राणियों को जानकारी नहीं कि जैन धर्म के असली सिद्धान्त क्या हैं ? उनकी दशा तो सिर्फ कूप-मंडूक जैसी

बनी हुई थी। ऐसी स्थिति में बंजर रेगिस्तान के थली प्रदेश में जो क्रांति का वृक्षारोपण किया, वह हमारे सामने आज वट वृक्ष की भांति लहरा रहा है। इसका सिंचन आपके पाटानुपाट आचार्यों द्वार किया जा रहा है।

आपका व्यक्तित्व भी अनूठा था। एक दफा गांधी जी के मन में आप जैसे जैनाचार्य के दर्शनों की अभिलाषा उठी। आपने श्री जवाहराचार्य के दर्शन किये और कहा कि आप जैसे महान व्यक्ति अगर राजनैतिक क्षेत्र में हों, तो हमारा देश बहुत जल्दी उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकता है, लेकिन एक जवाहर हमारे पास है, वह राजनीति के क्षेत्र से देश की सेवा कर रहा है, दूसरे आप हैं जो हमारे देश में धर्म-क्षेत्र में रहकर महान क्रांति कर रहे हैं।

महा आरम्भ से मिल के बने हुए विदेशी वस्त्रों से बचते हुए सादा जीवन व शुद्ध खादी का प्रयोग करने की महान् क्रांति आपकी वाणी द्वारा की गई। आपने अपने समय में नारी-समाज में क्रांति का सूत्रपात किया। आपने अपने ओजस्वी प्रवचनों से नारी को समान सुशिक्षा एवं सुसंस्कारी बनाने व पर्दा प्रथा व अन्य कुरीतियों पर काफी प्रभाव डाल कर नई क्रांति की लहर पैदा की। आपने साहित्य क्षेत्र में अभूतपूर्व कदम बढ़ा कर जो साहित्य समाज को प्रदान किया वह चिरस्मरणीय है। आपके साहित्य को पढ़ कर मानव अपने जीवन को श्रावक के रूप में भी रख कर आत्म-कल्याण सहज में ही कर सकता है। जवाहर किरणावली व अन्य जीवनोपयोगी साहित्य आपकी अमूल्य देन है। हम आज ऐसे क्रांतिकारी आचार्यश्री की जन्म-शताब्दी मनाते हुये गौरव अनुभव करते हैं क्योंकि —

(१) भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव पर आपके शताब्दी-वर्ष का आगमन हुआ है। आपने नारी सामाज में जो क्रांति का सूत्रपात किया, वह नारी-वर्ष आपके जन्म-शताब्दी वर्ष में मनाया जा रहा है।

(२) अछूतोद्धार जो कि आपकी परम अभिलाषा थी, वह भी इस शताब्दी के अवसर पर आपके पट्टधर श्री नानेशाचार्य ने मालव प्रान्त में धर्मपाल बना कर अनुपम उदाहरण पेश किया है।

(३) आपके अन्तर्मन में जो पूर्ण अभिलाषा थी कि एक गृहस्थ व साधु के बीच ऐसा वर्ग तैयार हो ताकि साधु अपनी मर्यादा से नीचे न उतरकर अपना साधना-पूर्ण जीवन व्यतीत कर सके और वीतराग धर्म का प्रचार-प्रसार हो सके। आपकी यह अभिलाषा भी जन्म-शताब्दी महोत्सव पर पूर्ण हुई है। इस वर्ष में साधुमार्गी जैन संघ द्वारा 'वीर संघ योजना' को मूर्त्त रूप दे दिया गया है।

❀❀❀

प्रेरणाप्रद व्यक्तित्व

● श्री राजमल चोरड़िया

बात संवत् १९८० की है। आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. बम्बई चातुर्मास करने के लक्ष्य से धूलिया से विहार करके बांदरा कतलखाने के रास्ते से चल रहे थे। यकायक दुर्गन्ध आई। आगे देखा तो खून की नाली बह रही थी। पूज्यश्री चौंक उठे। पूछने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि यहां गाय, भैंस आदि पशु काटे जाते हैं। हजारों मूक पशुओं के कत्ल की बात सुन कर मुनिश्री का हृदय द्रवीभूत हो गया। वे आगे नहीं बढ़े और वहीं घाटकोपर में ही वह चातुर्मास व्यतीत किया। वहां भैंसों आदि पशुओं को बचाने के लिये 'जीव दया मंडल' की स्थापना हुई। आचार्यश्री की प्रेरणा से इस मण्डल ने सक्रिय रह कर हजारों पशुओं के प्राण बचाये। इसी चातुर्मास काल में हरिश्चन्द्र-तारामती के चरित्र पर एक सुन्दर रचना भी आचार्यश्री ने की।

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. बड़े कष्टसहिष्णु थे। शारीरिक व्याधियों का उनके मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। बात सं. १९८१ की है, जब वे चातुर्मास हेतु जलगांव पधारे थे। वहां उनकी हथेली में एक छोटी सी फुन्सी उठी। उस फुन्सी ने धीरे-धीरे विकराल रूप धारण कर लिया। पर आचार्यश्री उस फुन्सी की पीड़ा से कभी परेशान नहीं रहे। डा० प्राणजीवन मेहता जब उनकी हथेली का ऑपरेशन करने लगे तो उन्होंने अपना हाथ डाक्टर के सामने आगे कर दिया। उन्हें न क्लोरोफार्म सूंघने की आवश्यकता पड़ी और न हाथ सुन्न करने के इन्जेक्शन की। धन्य हैं, ऐसे विराट् सहनशील व्यक्तित्व को।

आचार्यश्री अन्धविश्वासों से कोसों दूर थे। समाज में जो अन्धविश्वास घर कर चुके थे उन्हें नष्ट करने के लिये उन्होंने भरसक प्रयत्न किया। उस समय लोग गृहस्थ के लिये सूत्र वांचना निषिद्ध समझते थे और

कहते थे—"वांचे सुतर तो मरे पुतर"। पुत्र मृत्यु के भय से लोग शास्त्र को हाथ से छूते नहीं थे। इस अंधविश्वास का आचार्यश्री के मन में बड़ा खेद था। उन्होंने अनेक श्रावकों को सूत्र बांचने की प्रेरणा दी और उन्हें व्याख्यान हेतु ऐसे स्थानों पर जाने के लिये प्रेरित किया, जहां मुनिवृन्द नहीं पहुंच पाते। आचार्यश्री की सहज प्रेरणा से प्रेरित हो मैं भी अनेक क्षेत्रों में जाकर पर्युषण में सूत्र–वाचन और व्याख्यान आदि देता रहा हूँ। मेरे व्याख्यानों से प्रेरणा पाकर अनेक भाई–बहिनों को तप–त्याग मय जीवन जीने की प्रेरणा मिली है। मेरे पिता श्री रतनचंद जी भी अनेक स्थानों पर व्याख्यान, सूत्र–वाचन आदि के लिये जाते थे। यह सब आचार्यश्री के आशीर्वाद और प्रेरणा का ही फल है।

❀ ❀ ❀

अज्ञानी पुरुष को जिन पदार्थों के वियोग से मर्मवेधी पीड़ा पहुंचती है, ज्ञानीजन को उनका वियोग साधारण-सी घटना प्रतीत होता है। ज्ञानवान् पुरुष संयोग को वियोग का पूर्वरूप मानता है। वह संयोग के समय हर्ष–विभोर नहीं होता और वियोग के समय विषाद से मलिन नहीं होता। दोनों अवस्थाओं में वह मध्यस्थभाव रखता है। सुख की कुंजी उसे हाथ लग गई है, इसलिए दुःख उससे दूर ही दूर रहते हैं।

(आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.)

अपूर्व आत्मबली

● श्री हीरालाल नांदेचा

पूज्य आचार्यश्री जवाहरलाल जी महाराज साहब ने अपने उपदेशों द्वारा जैनियों को इस बात का भान कराया कि जैन कायर नहीं होते हैं, बल्कि आत्मबली होते हैं।

जब पूज्यश्री को वेदनीय कर्म ने सताया तब उन्होंने आत्मबल का प्रत्यक्ष भान कराया। जलगांव में शक्कर की बीमारी से हाथ में फोड़ा हुआ था, तब बगैर शीशी सूंघे हाथ का ऑपरेशन कराया। इसी प्रकार भीनासर में गर्दन पर भयानक फोड़ा हुआ तो बगैर वेदना वेदते सुखे-सुखे उसका ड्रेसिंग कराया। ऐसे आत्मबली को धन्य है।

इसी प्रकार पूज्यश्री चारित्र के पक्षपाती थे। उन्हें चेलों का मोह नहीं था। सैद्धान्तिक प्ररूपणा में विशेष श्रद्धा रखते थे और उसका यथार्थ रूप से अर्थ भिन्न-भिन्न करके समझाते थे। उनके विचारों को आज भी महत्त्व दिया जाता है।

❀ ❀ ❀

दूसरे के अधिकार को अपहरण करके यश प्राप्त करने की इच्छा मत करो; जिसका अधिकार हो उसे वह सौंप कर यश के भागी बनो।

(आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.)

कभी न भूलने वाला वह प्रभात

● श्री वक्षलाल कोठारी

एक संध्या—छोटी सादड़ी का अपार जनसमूह—श्रावक-श्राविका ही नहीं, वल्कि छोटे-छोटे बच्चे भी हर्ष-विभोर हो रहे हैं। चारों ओर एक ही चर्चा थी—प्रातःकाल पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. का इस नगरी में पदार्पण हो रहा है।

आचार्यश्री के स्वागतार्थ, प्रातःकाल नगर से वाहर पहुँचने की सूचना जैन गुरुकुल में संघ की ओर से जैसे ही हम छात्रों को मिली—हमारी प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। सभी छात्रों के मन में एक अजीव-सा उत्साह था, सभी सोचते थे—कब सूर्योदय हो और हम स्वागत के लिये पहुंचे। बड़ी अधीरता से हमारी वह रात्रि व्यतीत हुई। प्रातः ज्यों ही गुरुकुल में लगे घड़ियाल पर सुवह के पांच वजने के टंकारे लगे कि हम छात्र गुरुकुल भवन से वाहर निकल पड़े और चल पड़े उस दिशा की ओर, जिस ओर से आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. का आगमन होने वाला था।

गर्मी का मौसम था। हम छात्रों में एक होड़ सी थी— आगे वढ़ने की। हर छात्र आगे वढ़ने की होड़ में था, प्रत्येक यह चाहता था कि वह सव से आगे रहे, ताकि सबसे पहिले आचार्यश्री के दर्शन करने का उसे ही सौभाग्य प्राप्त हो। यह हमारा पहिला ही अवसर था आचार्यश्री के दर्शनों का। छात्र उत्साह व उल्लासपूर्वक आगे से आगे वढ़े चले जा रहे थे। हमारे पीछे नगर-निवासियों का विशाल समूह था।

हम लोग नगर से करीव ३-४ मील आगे वढ़ गये होंगे कि एकाएक कुछ दूरी पर हमें एक तेज-पुंज अपनी शिष्य मुनि-मंडली सहित तेज गति से आता हुआ दृष्टिगोचर हुआ। उस समय सारा वायुमंडल "आचार्य श्री जवाहर-लाल जी म. सा. की जय" "पूज्य गुरुदेव की जय" आदि गगनभेदी नारों से गूंज

उठा । उस समय एक ऐसी अलौकिक हर्ष–लहर हमारे दिलों में व्याप्त हो गई थी कि जिसे शब्दों के माध्यम से व्यक्त नही किया जा सकता । देखते ही देखते आचार्यश्री हमारे सामने पधार आये और हजारों मस्तक आचार्यश्री के चरणों में झुक गये ।

आचार्यश्री के दर्शन कर, मंगल पाठ सुन, भव्य जुलूस छोटी सादड़ी की ओर बढ़ा । नगरनिवासी आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. जैसे महान् संत के दर्शन कर हर्ष–विभोर थे । आचार्यश्री के व्याख्यान गुरुकुल भवन के विशाल प्रांगण में होते थे । भवन का प्रांगण समय से पूर्व विशाल मानव समुदाय से परिपूर्ण हो जाता था । यह उनकी ओजस्वी वाणी का प्रभाव था । मेरा वह बचपन था मगर मुझे पूरा स्मरण है कि आचार्यश्री का वह प्रवचन प्रभु संभवनाथ की प्रार्थना की इन कड़ियों से प्रारम्भ हुआ था—

"आज म्हारा संभव जिणजी का हित–चित्त से गुण गास्यां राज"

प्रार्थना की इन कड़ियों के भावों के अनुरूप ही पूज्य श्री की भाव–भंगिमा भी होती जाती थी । उनकी तेजस्वी वाणी का श्रोताओं पर एक जादू का सा असर होता था, चारों ओर संपूर्ण शांति छाई रहती । श्रोता अमृतमय उपदेश का रसास्वादन करते रहते ।

अंत में वह दिन भी आ पहुँचा जब आचार्यश्री का विहार होने वाला था । आचार्य देव का हम छात्रों को अंतिम उपदेश था—तुम छात्रों का भावी जीवन सादगीपूर्ण रहे, इस बात का पूरा ध्यान रखना । आज आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. हमारे बीच नहीं हैं पर उनके वे प्रेरणादायी उपदेश आज भी हमारे मार्ग–प्रदर्शन का काम करते हैं । उस ज्योतिपुञ्ज के चरणों में मेरा शतशत वन्दन ।

छिपाने की चेष्टा करने से पाप घटता नहीं, वरन् बढ़ता जाता है । पाप के लिए प्रकट रूप से प्रायश्चित्त करने वाला परमात्मा के सन्निकट पहुंचता है ।

(आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.)

और वे वचन अमृत बन गये !

● श्री अजीत कड़ावत

जीवन के अनजाने पथ का मुसाफिर नये मोड़ों पर घबरा कर जानते हुए भी बहुत ही निम्न स्तरीय निर्णय लेकर अपने आपको, अपने भविष्य को अंधेरे कूप में धकेल देता है, किन्तु ज्ञानियों द्वारा प्रदत्त अनन्त ज्ञान राशि का कुछ प्रकाश मिलते ही अंधेरे कूप की ओर अग्रसित मानव अपने को बचा लेता है, असम्भाव्य समाधान का हल पाकर सही दिशा की राह पा लेता है ।

ऐसी ही प्रकाश-लौ पूज्य जैनाचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के प्रकाश स्तम्भ से निकली थी । वह मेरे स्नेही के शब्दों में""और वे वचन अमृत बन गये ।

घटना इस प्रकार थी—

आशा, शांतिलाल जी की चौथी संतान थी । शांतिलाल जी ने अपनी दो लड़कियों की शादी अच्छे घरानों में अच्छे प्रकार से कर दी थी । उनकी तत्कालीन परिस्थिति अच्छी थी किन्तु समय की गति ने उन्हें कुछ ढीला कर दिया था । आशा का रंग अन्य संतानों से कुछ पक्का था । काल के क्रूर प्रवाह ने नारी की सदा उपेक्षा की । उसी उपेक्षा या प्रतिशोध के दहन में दहेज प्रथा भी काफी कारगर रही है । वर्तमान में दहेज का दानव कई ललनाओं को वे-समय खा गया है फिर भी तथाकथित समाज मौन साधे बैठा हुआ है । शांतिलाल जी भी भरसक प्रयत्नों के बाद आखिर इन्हीं शब्दों के साथ निःश्वास छोड़ने लगे—"इसके आगे तो मैं पनाह मांग गया । धर्मध्यान करने के दिनों में मुझे इतनी परेशानी उठानी पड़ रही है । न केवल पिताजी में बल्कि मां की ममता में भी फर्क प्रतीत होने लगा । मां बात-बात में गुस्सा-होती, डांटती मानो आशा की सौतेली मां हो । एक दिन आशा मधु के काफी आग्रह को देखकर कुछ देर के लिये कालेज से आते वक्त रुक गई तो मां

बिफर पड़ी। आशा कहती–मां तुम हर बात पर बरस पड़ती हो। "बरसूंगी नहीं तो क्या तेरी आरती उतारूंगी ? कालेज से आकर यहां वहां घूमना और फिर ऊपर से मुंह लगाना। अच्छा हुआ सूरत शक्ल में कोयला मात खाता है, नहीं तो तू न जाने कितनी भटकती फिरती।"

सूरत शक्ल की बात सुनकर उसका कलेजा ठंडा हो जाता। उसके भाई भी उसके काले रंग पर काफी टोने कसते। उसका दिल घंटों रोता। वह अन्दर ही अन्दर झुलती रहती। अपने जन्म को कोसती। वह सोचती कि दुनियां में मेरा कोई नहीं है। सब ही की नफरत मुझे सालती है। इस दुनियां में रंग रूप ही मनुष्य का अस्तित्व बना सकता है। कुरूप को जीने का कोई अधिकार नहीं है क्या ? उसे अपने इस चारों ओर नफरत के कारण धीरे–धीरे जीवन से नफरत हो गई, बह अपने जीवन को निस्सार मानने लगी।

[२]

विवाह की तलाश में घूमते हुए पिता ने आखिर एक परिवार को आशा को देखने के लिये आमंत्रित किया। उन्हें पहला डर तो दहेज का था ही किन्तु दूसरा डर और था। कहीं आशा का रंग देखकर नापास न कर दें। इस पर मां ने सुझाव दिया–पड़ौसी दुबेजी की रेखा को घूंघट निकाल कर बैठा दें। पिताजी ने पूछा—क्या दुबेजी तैयार हो जायेंगे ? क्यों नहीं होंगे जी, क्या उन पर हमारे कम अहसान हैं ? मां ने गठीला उत्तर दिया, किन्तु दरवाजे की आड़ में खड़ी सुन रही आशा चीख पड़ी—"मां, चाहे दुबेजी तैयार हो जायें किन्तु में ऐसा कभी नहीं होने दूंगी।" मां गूंज उठी–नहीं होने देगी तो क्या तुझ करम–जली कोयले को वे पसंद कर लेंगे ? पहले ही तो पैसों के लिये मुंह फाड़ रहे हैं, क्या तू जन्म भर कुंआरी रह कर हमारे सिर पर बैठे खायेगी ?"

रुंधे गले से आशा बोली—"नहीं मां ! इस साल की पढ़ाई के बाद मैं स्वयं नौकरी कर लूंगी आपको मुझसे छुटकारा मिल जायेगा। रही कुंवारी रहने की बात सो मैं तब तक कुंआरी रहूँगी जब तक मुझे ऐसा व्यक्ति न मिले जो हृदय की स्वच्छता को शरीर की सफेदी और चांदी की नापाक चांदनी से अधिक मूल्यवान समझे।"

आखिर आगन्तुक आये और जिसका डर था, वही हुआ। आगन्तुकों ने आशा को देखने के बाद कहा—"मुआफ कीजियेगा साहब ! ३५ हजार की इतनी कम रकम लेने के बाद भी मुझे घर में अंधेरा नहीं करना है।"

शांतिलाल जी जड़वत खड़े रहे और आशा की आत्मा दुःख, क्षोभ और अपमान से एक बारगी चीत्कार उठी । इस निर्मम चोट से, अपने जीवन की यंत्रणा से छूटने का उसे केवल एक मार्ग दिखाई दिया और उसकी बोझिल पलकों में एक निश्चय झलक उठा ।

[३]

उस रात आशा पढ़ती रहने का बहाना कर काफी देर रात तक जागती रही । घंटी ने बारह बजाये । खिड़की के बाहर झांककर देखा, तीज का कटारी चांद शांत भाव से उसकी ओर निहार रहा था । आशा सोचने लगी–मेरे मरने के बाद भी यह निकलेगा, तारे उगेंगे, सृष्टि का वही क्रम, कहीं कोई व्यवधान नहीं । नींद में पहुँचती दखल देखकर शांतिलाल जी ने विजली का स्विच आॅफ किया और कुछ ही देर में खर्राटें भरने लगे । आशा ने सोचा—एक पत्र लिख दूं; नहीं, नहीं, पत्र लिखने की मुझे क्या जरूरत है, कौन मेरा ? आशा जी कड़ा करके अलमारी की ओर बढ़ी जहां उसने कालेज से लाई हुई एक पुड़िया छिपा दी थी । उसने किताबें यहां वहां करके पुड़िया ढूंढ़ना चाहा, पुड़िया तो न मिली पर एक पुस्तक धड़ाम से नीचे आ गिरी । पुस्तक गिरने की आवाज सुनकर शांतिलाल जी की नींद टूट गई । पूछा, कौन ? क्या है ? आशा ने धड़कते हृदय से उत्तर दिया—'जी ! कुछ नहीं, पुस्तक गिर पड़ी है । पिताजी पुनः सो गये, तब कहीं आशा अपनी जगह से हिल सकी । उसने फर्श पर पड़ी पुस्तक को उठाया—"जवाहर किरणावली ।" अनायास ही उसकी दृष्टि खुले पृष्ठ पर पड़ी और वह ठिठक कर रह गई—

"मनुष्य की शरीर के प्रति आसक्ति उसका अज्ञान है । शरीर तो एक वस्त्र है जिसे आत्मा जीर्ण शीर्ण होने पर उतार फैंक देती है । मनुष्य इसी अज्ञानता के कारण इस शरीर को 'मैं' कहता है और आत्मा को भुला बैठता है । मनुष्य का कर्तव्य है कि कृत्रिम, बाह्य साधनों द्वारा शरीर को अलंकृत करने की अपेक्षा हृदय को संवार कर विश्व के प्रत्येक कण में उस विराट का दर्शन करे, इस विश्व में आत्मा और हृदय का सौन्दर्य ही शाश्वत है, अमर है ।

और जब आशा ने उस पुस्तक की आखिरी पंक्ति समाप्त की तो क्षितिज की अनुरागमयी आभा भास्कर के आगमन की सूचना दे रही थी । पक्षी किसी रहस्यमय आलोक की वंदना कर रहे थे और आशा के जीवन का भी नवीन अध्याय आरम्भ हो रहा था । आशा ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि

वह अपनी आत्मा और हृदय को संवारेगी । पढ़ाई के पश्चात् वह अंधे अनाथ बच्चों के आश्रम में जा कर उन अभागों को अन्तरात्मा की रूप राशि से मुग्ध कर देगी और....और शायद अंधे बच्चे ही उस कुरूपा में छिपी सुन्दरता को देख सके हों, तभी तो वे उसे स्नेह, श्रद्धा और भक्ति के मिश्रित सुमन अर्पण कर अपने को धन्य मानते हैं ।

शून्य में विलीन होते, तिमिराच्छन्न में भटके हुए जीवन को प्रकाश किरण से उजियाले की ठोस तली पर ले आने वाले हे महापुरुष ! आपकी जन्म-शताब्दी पर मैं कोटि-कोटि श्रद्धा-सुमन अर्पित करता हूँ । आपका महान् साहित्य ही आपको आज भी वैसा ही बनाये है, आप धन्य हैं ।

हे गरीब, तू चिन्ता क्यों करता है ? जिसके शरीर में अधिक कीचड़ लगा होगा, वह उसे छुड़ाने का अधिक प्रयत्न करेगा । तू भाग्यशाली है कि तेरे पैर में कीचड़ अधिक नहीं लगा है । तू दूसरों से ईर्ष्या क्यों करता है ? उन्हें तुझसे ईर्ष्या करनी चाहिए । पर देख, सावधान रहना, अपने पैरों में कीचड़ लगाने की भावना भी तेरे दिल में न होनी चाहिए । जिस दिन, जिस क्षण, यह दुर्भावना पैदा होगी, उसी दिन और उसी क्षण तेरा सौभाग्य पलट जाएगा । तेरे शरीर पर अगर थोड़ा-सा भी मैल है तो उसे छुड़ाता चल । उसे थोड़ा समझकर उसका संग्रह न किये रह ।

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.

उदार हृदय

❁ श्री श्रीलाल कावड़िया

संसार में समय समय पर मानव को भौतिक वातावरण से विरक्त करने हेतु महापुरुषों का अवतरण होता रहा है और उनके सदुपदेशों एवं ग्रंथों द्वारा आत्मबोध पाकर अनेक भव्य आत्माओं ने भव–भ्रमण से छुटकारा पाया है।

महाप्रतापी स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. भी उन्हीं महापुरुषों में से एक महान विभूति हो गये हैं। जवाहर किरणावलियों के रूप में आपके प्रवचनों का संग्रह करके समाज ने विश्व को अनुपम देन दी है। यद्यपि आपके प्रवचन ५० वर्ष पूर्व के हैं, परन्तु आज के इस वैज्ञानिक युग में भी वे शिक्षित एवं अशिक्षित वर्ग के हृदय को झकझोर देने में पूर्ण सक्षम हैं और आत्मोन्नति की ओर अग्रसर करते हैं।

स्वर्गीय आचार्यश्री के दर्शनों का सौभाग्य मुझे भी मिला, अतः मैं अपने को अत्यन्त भाग्यशाली समझता हूं। आचार्यश्री के बगड़ी चातुर्मास में मुझे सर्वप्रथम दर्शनों का लाभ प्राप्त हुआ। आचार्यश्री धर्म स्थानक में तिबा–रियों में घूम रहे थे और मैं भी उनके श्री चरणों में उपस्थित था। उस समय मेरी अवस्था छोटी थी परन्तु आचार्यश्री का प्रेम बालकों एवं बड़ों पर एकसा था। आचार्यश्री ने मुझे भी कई बातों का दिग्दर्शन कराया एवं एक बालक से भी उतनी ही बातें कीं जितनी एक प्रतिष्ठित एवं वयोवृद्ध श्रावक से करते हैं। मैं तभी से आचार्यश्री से बहुत प्रभावित हुआ एवं उन पर मेरी अटूट श्रद्धा रही। उसके पश्चात् दर्शन करने के कई अवसर आये। मुझ पर सदा उनके उदार हृदय व व्यक्तित्व की गहरी छाप पड़ी। आचार्यश्री की सूक्तियां किसी धर्म एवं सम्प्रदाय को महत्त्व न देते हुए, जीवन को ऊंचा उठाने में बड़ी प्रभावशाली हैं।

मैं स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के श्री चरणों में भावभीनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कामना करता हूं कि उनके सदुपदेशों का पालन कर अपनी आत्मा को उन्नत करूं। ★

आचार्यश्री व मौलाना शौकत अली की वह भेंट

● श्री जीवराज मेहता

सं. १९७७ में श्रीमद् जवाहराचार्य का सातारा चातुर्मास था । मैं उस समय करीब ९ साल का था । अपने पिताजी के साथ सातारा गया । यहां जवाहराचार्य के दर्शन हुए । लंबा डीलडोल, चौड़ी लिलाड़ जिसमें चारित्र व विद्वत्ता की मानों तेजी चमकती थी । व्याख्यान की शैली गजब की थी । वहां माहेश्वरी बिरादरी के भी काफी घर थे, सो प्राय: व्याख्यान में सब आते, श्रवणकर सभी अत्यन्त प्रभावित होते ।

सं. १९८४ का चातुर्मास ब्यावर में हुआ । उस समय मैं करीब १४ साल का था । सोजत दरबार स्कूल में मिडिल में पढ़ता था । उस समय मेरे मामासा श्री लक्ष्मीचन्द जी धाड़ीवाल वगड़ी में काफी समय रहा करते थे । मामासा की धर्म पर अटूट श्रद्धा थी, शास्त्र थोकड़ों आदि की अच्छी जानकारी थी । उनके सान्निध्य में रहने से जो कुछ धर्म का संस्कार मेरे में आया, उनका ही उपकार मानता हूं । चातुर्मास में मामासा के साथ वगड़ी से ब्यावर जवाहराचार्य के दर्शनार्थ मैं भी गया । उस दिन पक्खी थी । मैं मामासा के साथ प्रतिक्रमण में बैठा । प्रतिक्रमण समाप्ति के बाद हम लोग बैठका समेट रहे थे कि एक वग्गी (घोड़ागाड़ी) नया वास स्थानक के पास आकर खड़ी हुई । पहले एक दो जने उतरे । अच्छे मौलवी सरीखे दिखे । तीसरे व्यक्ति ६ फुट ऊंचे, लंबा सुडोल कसा हुआ शरीर, सिर पर बाल वाली ऊंची ४।। इंची करीब टोपी जिसमें चांद का कसीदा कोरा हुआ, वग्गी (घोड़ा गाड़ी) में से नीचे उतरे। उनके उतरते ही हलचल मच गई । वे मौलाना शौकत अली थे । आते ही प्रथम जवाहराचार्य के दर्शन किये, शिष्टाचार से हाथ जोड़ नत मस्तक होकर। बाजू में पंडित श्री घासीलाल जी महाराज व श्री गणेशीलाल जी म.

विराजे हुए थे । श्रीमद् जवाहराचार्य के साथ मौलाना साहाव का जो वार्तालाप हुआ, उसकी स्मृति अव भी मुझे है ।

आचार्यश्री—मौलाना साहव ! आपकी मौजूदगी में व आप सरीखे आलिमफाजिल व देश के कर्णधारों की हयात में देश में अशांति, दंगे व विषमता क्यों बढ़ी हुई है ? आप जरा शांति से काम लेकर लोगों को शांति का मार्ग वताकर समझायें तो आपका प्रभाव अच्छा पड़ेगा ।

मौलाना साहव—क्या करें पूज्यश्री ! कुछ लोग इस तरफ भी शरारती व उस तरफ भी शरारती रहने से नाहक में देश में दूषित वातावरण होकर विषमता बढ़ती है। मैंने तो अपने जाहिर भाषण में कई दफे लोगों को शान्ति कायम करने के लिये बार–बार समझाया । मगर गलती दोनों तरफ की, सो नाहक बगैर कसूर लोग उस में मारे जाते हैं । क्या करें पूज्यश्री ?

आचार्यश्री—मौलाना साहब ! आप का प्रभाव देश–देशान्तर सव जगह है । आप अगर पूर्ण दिलचस्पी लेकर जनता को पूर्ण शांति से रहने का हितोपदेश देवें तो आपके शब्दों का लोगों पर काफी असर पड़ेगा। जनता आपकी बात मानती है। नाहक देश में अशांति का वातावरण होने से फालतू विषमता बढ़ती है सो मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इस बात को जरूर तवज्जह देंगे । ऐसी मुझे खातरी है ।

मौलाना शौकत अली आचार्यश्री से विचार–विमर्श कर काफी प्रभावित हुए और उन्होंने देश में शान्ति व सद्भाव बनाये रखने के लिए भरसक प्रयत्न करने का अपना संकल्प दोहराया ।

❀ ❀ ❀

वादविवाद किसी वस्तु के निर्णय का सही तरीका नहीं है । जिसमें जितनी ज्यादा बुद्धि होगा, वह उतना ही अधिक वादविवाद करेगा । वादविवाद करते–करते जीवन ही समाप्त हो सकता है । अतएव इसके फेर में न पड़कर भगवान् के निर्दिष्ट पथ पर चलना ही सर्वसाधारण के लिए उचित है ।

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.

तृतीय खण्ड

श्रीमज्जवाहराचार्य

काव्यांजलि

श्रीमज्जवाहराचार्य-गुणाष्टकम्

श्री नानेशाचार्यस्य चरणचञ्चरीकः मुनिः पार्श्वः

[१]

मुखचन्द्रविशेषसुधानिचयं,
तपसा प्रविभाति युगाक्षिवरम् ।
श्रुतिपूर्णसुशोभितकर्णयुगं,
प्रणमामि जवाहरपूज्यवरम् ॥

[२]

कलिकालमहार्णव-सेतुवरं,
जनपापविनाशकरं विमलम् ।
जिनधर्मजयध्वजबृंहणकं,
प्रणमामि जवाहर-साधुवरम् ॥

[३]

भविवोधकरं खलु शान्तिकरं,
भवभीतिहरं त्रयतापहरम् ।
समतारसदानकरं शुभदं,
प्रणमामि जवाहर-भानुवरम् ॥

] ४]

जिनशास्त्रसुमन्थनदक्षपरा,
परिनृत्यति गीः खलु यस्य मुखे ।

तमहं करुणानिधिपूर्णकलं,
प्रणमामि जवाहरमिन्दुवरम् ।।

[५]

शशिना हि विभाति निशा नियतं,
रविणा खलु भाति दिनं विमलम् ।
निशिवासरशोभितमस्य मुखं,
प्रणमामि जवाहरलालमहम् ।।

[६]

कटुतौषधमध्यगता नियता,
जडता हि गता जडवस्तुषु वा ।
अभिमानलवोऽपि गतो हि न तं,
प्रणमामि जवाहर दिव्य गुरुम् ।।

[७]

मनसापि विकारपथं न गतं,
शुचिसंयमसाधनतानिरतम् ।
तपसा परकार्यहिते हि रतं,
प्रणमामि जवाहर–बोधिपरम् ।।

[८]

सुसमाधियुतं सुवचः सहितं,
गुणरत्नपरीक्षणकारिपटुम् ।
प्रतिभारतसाधुजनैर्विनुतं,
प्रणमामि जवाहर–योगिवरम् ।।

पुण्य स्मरणम्

● श्री रमेश मुनि

[राजस्थान केसरी श्री पुष्करमुनि जी के शिष्य]

उपजातिवृत्तम्

[१]

रराज सूर्योपमदिव्यदीप्तिः
रत्नौघधारा धरणीवरोऽयम् ।
जवाहरो नाम सतां वरेण्यः
जातः शरण्यो भुवि देववन्द्यः ॥

[२]

अहं सदा संयतभावपूर्णः
नमामि तं प्राञ्जलिरानतः सन् ।
विदां वदान्यं मुनिवृन्दवन्द्यम्
जवाहरं सन्ततमन्ततोऽलम् ॥

[३]

कथं नु कीर्तिस्तवमङ्गलेयम्
प्रदीप्यतेऽद्यापि मनस्विवृन्दे ।
यथाहि पुण्यात्तजनिः सुगन्धिः
पुण्याकरो भूतलमाबिभर्त्ति ॥

[४]

नभो विभागे तरणिर्विभाति
विभाति नित्यं विमलाभिराभिः ।
तथैव दिव्ये जिनशासनेऽस्मिन्
जवाहरः सूरिवरश्चकास्ते ॥

[५]

गुर्वग्रणीभिर्मम पुष्करैस्तैः
यशो हि प्रख्यापितमस्ति दिव्यम् ।
मुनी रमेशो हृदये निधाय
गुणान् वरीतुं यतते प्रकामम् ॥

श्री जवाहर चालीसा

※ श्री सुमेर मुनि

चौपाई

जैन जवाहर जय सुखकारी ।
जनकल्याणकरण तनुधारी ॥ १ ॥

नाथी नंदन जनमनरंजन ।
जीवराज–सुत, दुःख–निकंदन ॥ २ ॥

नगर थांदला, जन-मन भाया ।
जन्मभूमि, बन जग यश पाया ॥ ३ ॥

नश्वर जग, जंजाल निहारा ।
महावीर पावन पण धारा ॥ ४ ॥

मगन ज्ञान रवि, संत गुरु धारे ।
बने जैन जग के उजियारे ॥ ५ ॥

ज्ञान चरण रवि किरण समाना ।
अज्ञ तिमिर-हर सब जग जाना ॥ ६ ॥

करुणा, कोमलता दिल धारी ।
सौम्य मूर्ति सज्जन मनहारी ॥ ७ ॥

जैनागम मर्मज्ञ सुज्ञानी ।
अनेकांत नय युक्ति वखानी ॥ ८ ॥

गुणगण हीरक पूर्ण पिटारी ।
शिव सुर मंदिर पद अधिकारी ॥ ९ ॥

पूर्णचंद्र सम कांति तिहारी ।
दीन–वंधु भवि भव भयहारी ॥ १० ॥

घन गभीर मधुर स्वर धारा ।
जीवनपथ का एक सहारा ॥ ११ ॥

नई क्रांति जग में चमकाई ।
धनिक–श्रमिक समकक्ष बनाई ॥ १२ ॥

देशाटन कर देश सुधारा ।
नष्टकरी रूढ़ि बल टारा ॥ १३ ॥

मरुधर नभ दंभी घन छाये ।
ज्ञान पवन से दूर हटाये ॥ १४ ॥

उच्च अहिंसा के अवतारी ।
मरुधर–मानस पक पखारी ॥ १५ ॥

देकर सम्यक् ज्ञान चपेटा ।
दया विरोधी दुर्मत मेटा ॥ १६ ॥

योग–युक्त हो पूरण योगी ।
विश्व श्रेय रत हो सहयोगी ॥ १७ ॥

चातक संघ मेघ तुम सोहे ।
वर्षा ज्ञानामृत मन मोहे ॥ १८ ॥

श्री अरिहंत–सिद्ध–पद कामी ।
शिष्यवृन्द सब ही अनुगामी ॥ १९ ॥

श्रीपति नरपति भक्त तुम्हारे ।
ज्ञानदान दे जन्म सुधारे ॥ २० ॥

सम्यक् दर्शन ज्योति जगाई ।
शिवपथ की शैली समझाई ॥ २१ ॥

जिनशासन उपवन विकसाया ।
ज्ञान–सुमन सौरभ फैलाया ॥ २२ ॥

मिथ्या तम का क्षय कर डारा ।
हुआ सत्य का शुभ उजियारा ॥ २३ ॥

सम्मेलन में सुषमा न्यारी ।
सोभित थे शशि सम अविकारी ॥ २४ ॥

महावीर पथ में अनुरक्ता ।
महा–अल्प आरंभ सुवक्ता ॥ २५ ॥

आज्ञाकारी संघ तिहारा ।
निर्मल व्रत जिसमें विस्तारा ।। २६ ।।
प्रतिभा अति ही प्रखर तुम्हारी ।
भ्रांत हृदय की भ्रान्ति निवारी ।। २७ ।।
श्री गण ईश शरण तव लीना ।
करी कृपा निज सम पद दीना ।। २८ ।।
ज्ञान रतन इक इक अनमोले ।
दे उपदेश हृदय पट खोले ।। २९ ।।
जिनमत में निष्क्रियता छाई ।
तुमने नव चेतना लाई ।। ३० ।।
मुद्रा शांत विलोक तिहारी ।
हो अति प्रमुदित जनता सारी ।। ३१ ।।
जनसेवक निज पद बतलाया ।
भारत का नर रतन कहलाया ।। ३२ ।।
सत्य भाव से जो हों दासा ।
उच्च लोक पावें शिव वासा ।। ३३ ।।
पूज्य शिरोमणि दीन दयाला ।
नाम रटत तव होत निहाला ।। ३४ ।।
मोह तिमिर को दूर निवारा ।
सत्य ज्योति हित जीवन धारा ।। ३५ ।।
आत्मशुद्धि करी करि संथारा ।
अंत समय सुरलोक सिधारा ।। ३६ ।।
अंतर में अंतर कछु नाहीं ।
पर बाहर यह असह जुदाई ।। ३७ ।।
जैन जगत का तेज सितारा ।
हृदय वसो भवि भक्त सहारा ।। ३८ ।।
मरुधर जनपद के उजियारे ।
सदा ऋणी हम सर्व तुम्हारे ।। ३९ ।।
यही प्रवल विश्वास हमारा ।
सुखी निरंतर भक्त तुम्हारा ।। ४० ।।

दोहा

पूज्य जवाहरलाल के, गुण गण ललित ललाम ।
जो "सुमेरु" निशि दिन रटे, पावे शिव सुखधाम ।।

कोटि नमन है

● हास्यकवि श्री हजारीलाल 'काका'

दिया आपने सारे जीवन जग को सदा मार्गदर्शन है,
पूज्य श्री आचार्य जवाहरलाल आपको कोटि नमन है।

[१]

संयम और साधना द्वारा सदा ज्ञान की ज्योति जलाई,
युगद्रष्टा बनकर मानव को अंधकार में राह दिखाई,
शास्त्र, पुराणों को निचोड़ कर सरस्वती का भंडार भर गये,
और 'जवाहरलाल किरण' से तम रूपी अज्ञान हर गये।
इसीलिये ही यह सारा जग करे आपका अभिनंदन है,
पूज्य श्री आचार्य जवाहरलाल आपको कोटि नमन है।

[२]

होकर के निर्भीक आपने हर कुरीति पर कलम चलाई,
युगस्रष्टा बनकर समाज को सदा नीति की रीति सिखाई,
समता, सत्य, समन्वयता का रवि बनकर प्रकाश फैलाया,
गलत मान्यता और रूढ़ियों को समाज से दूर हटाया।
संघ–संगठन की दृढ़ता पर दिया सदा पावन प्रवचन है,
पूज्य श्री आचार्य जवाहरलाल आपको कोटि नमन है।

[३]

पूज्य श्री की जन्म जयंती मिलकर हम इस भांति मनायें,

उनके पदचिन्हों पर चल कर सद्-उपदेश अमल में लायें,
राग-द्वेष को दूर हटा कर हर भाई को गले मिलायें,
दीन दुखी बहिनों को इस पापी दहेज से मुक्ति दिलायें,
"काका' श्रमणोपासक बनकर करे आपका कोटि नमन है,
पूज्य श्री आचार्य जवाहरलाल आपको कोटि नमन है ।

मुक्तक

जिस चेतन ने जड़ पत्थर को वीतराग भगवान बनाया,
लेकिन स्वयं राग में फंसकर अपने ऊपर दृष्टि न लाया,
बाहर फिरा खोजता जिसको हर तीरथ पर शीश झुकाया,
'काका' खुद में खुदा बसा पर खुद को खुद पहिचान न पाया ।

चले अंदर कतरनी क्या करेगी हाथ की माला,
मरी जब तक न इच्छायें, मिले न मुक्ति का प्याला,
अगर है मोक्ष की इच्छा तो 'काका' मन करो वश में,
तुम्हारी वासनाओं ने तुम्हें बर्बाद कर डाला ।

दर्पण सी निखरी जिनवाणी

● श्री विपिन जारोली

युग पुरुष !
वन्दन,
अभिवन्दन,
शत शत वन्दन !
जब था रुढ़िग्रस्त जन
जैन धर्म के
साधुमार्ग का ।
सूत्रों की व्याख्याएं
अस्त-व्यस्त, बेमेल,
जिसने जैसा चाहा तोड़ा,
अपने अनुरूप मरोड़ा,
ढाला,
किया प्ररूपित उल्टा-सीधा ।
भिन्न-भिन्न व्याख्याएं ।
पूज्यवर !
तुमने देखा,
सोचा, समझा और
गहन चिन्तना के शीशे में
उभरी जब आकृति
वीरवाणी पर
जमी गर्द है ।
सहमे तुम-
दुखित हृदय हो ।

कुछ सोचा,
उछले
संकल्प तुम्हारा
"वीरवाणी पर जमी गर्द को
दूर हटाकर ही छोड़ूंगा ।"
फिर क्या था ?
आत्म–देश;
निर्भीक,
दृढ़ चरण तुम्हारे ।
तुम बढ़े
चले,
वीरवाणी पर जमी गर्द को
झाड़–पौंछने—
संयम, तप, तेज, चारित्र का
लिये तौलिया ।
हिली–दीवारें
खिसकी धरती,
रूढ़िग्रस्त मीनारें छिटकीं ।
तब
एकजुट हो रूढ़िग्रस्त सब
करने लगे वार यह कह कर–
"पाखण्डी है—
विक्षिप्त हो गया ।
वीर वचन में शंका इसको,
मत मानो ।"
पर तेज तुम्हारा
तुम युगमानव
तुमने कर दिया साफ–
हो गये ध्वंस पाखण्ड शिविर
दर्पण सी निखरी जिनवाणी ।
पर्दे के पीछे बोला 'धर्म—'
सब ने जाना पथ अपना,
कर्त्तव्य बोध ।

जीवन के लक्ष्यों की परिणति ।
तुमने दी जीवन को गति,
गति को दे दिया मार्ग,
मार्ग को बतलाया लक्ष्य ।

बढ़ रहा आज युग–
ले तप, तेज तुम्हारा,
दर्शन, चारित्र तुम्हारे ।
पूज्य तुम्हारा शतवर्षीय–
जन्म–दिवस
वन्दन, अभिवन्दन, शत शत वन्दन ।

जवाहर-स्मृतियां

● श्री पारसमुनि

(१)

ग्राज की
ये घड़ियां
याद
दिला रही हैं
कि—
इस भूतल पर
शताब्दी पूर्व
ज्योतिर्धर
ग्राचार्य श्री जवाहर
ने जन्म
ग्रहण किया
ग्रौर
ग्रपने जीवन की
पावन धारा से
उजागर
किया सबके
जन मानस को,
ऐसे ही
उस
युगद्रष्टा
महापुरुष की
स्मृतियां

(२)

अहा !
कितना सौरभमय
पुष्प पुष्पित हुआ था
धर्म के
सुन्दर उपवन में,
जिससे
महक उठे थे
जगत के
मानव मन ।
वह
पुष्प जवाहर
अपनी
सुरभित सुगन्ध
से
आज भी
विद्यमान है
जनजन के
मन में ।

काश, आज धरती पर होते

★ श्री श्रेणिक मांडोत

आचार्य जवाहरलाल के जन्म को, हो गए पूरे सौ साल रे,
काश ! आज धरती पर होते, होता क्या–क्या कमाल रे ।
संदेश दिया हर मानव को
अमृत–गगरी छलकाकर के,
अमृत पीकर कोई अमर हुआ
कोई प्यासा अकुलाकर के,
कहते थे, मैं धर्म–व्यापारी, तुम सब मेरे ग्राहक हो,
कोई ना लौटे खाली हाथ और, कोई न रहे कंगाल रे ।
काश, आज धरती पर होते·······

हर संध्या की, हर ऊषा की
हर घड़ी तुमको करे प्रणाम,
मेरे देश के हर कण–कण में
भरा हुआ ईश्वर का नाम,
संयम का राजा बनकर के, हर दिन का हर पल जीता,
मन का सूरज बन तोड़ा था, मोह माया का जाल रे ।
काश, आज धरती पर होते·······

हर अंधे को पथ दिखलाकर
दिव्य ज्योति में हुए विलीन,
गंगा जब तक है धरती पर
याद करे हर पावन दिन,
हर आंखों की ज्योति बनकर, फैलाया था धर्म–प्रकाश,
जन्म लिया बन विश्व–प्रणेता, कर गये सबको निहाल रे ।
काश ! आज धरती पर होते·······

आचार्यश्री जवाहरलाल जन्म ले पृथ्वी पर आया

★ श्री नेमचन्द भोलक

ज्ञान का दीपक चमकाया,

आचार्य जवाहरलाल जन्म ले पृथ्वी पर आया ।
मालव प्रान्त रियासत झाबुआ थांदल हर्षाया,
नाथी बाई और जीवराज जी पुत्र रत्न पाया,
सेठ घर खुसी हुई भारी,
होते मंगलाचार वधाई मांगे नरनारी
थाल कांसी का बजवाया ॥१॥ आचार्य जवाहर०

उम्र मास चौवीस काल का चक्र चल्या भारी,
फैल्यो हैजो रोग, मातेश्वरी ईश्वर को प्यारी,
पुत्र को दुःख हुआ भारी,
मातृ-हीन होकर वालक ने विपत्ति सही भारी ।
प्यार पिता ने दरसाया ।२। आचार्य जवाहर०

मातृहीन होकर वालक ने वय पांच वर्ष पाया,
किया यम ने कोप पिता को जग से उठवाया,
मुसीवत आई थी भारी,

दु:खमय था संसार मुनि को हुई लाचारी ।
मामा ने इनको अपनाया ।३। आचार्य जवाहर०

झेले कष्ट अनेक शैशव में दुख ही दु:ख पाया,
आश्रय मामा का पाकर के दु:ख को विसराया,
प्रकृति को यह भी नहीं भाया,
मातुल हीन किया बालक को सहारा छिनवाया ।
मोह का बन्धन तुड़वाया ।४। आचार्य जवाहर०

जग को नश्वर जान, ध्यान दीक्षा का कर लीन्या,
मुनिवर घासीलाल ने इनका केश लोचन कीन्या,
उच्चार महामन्त्रों का किया,
मगन मुनि के शिष्य बनकर जीवन धन्य किया ।
मुनिवर मन में हर्षाया ।५। आचार्य जवाहर०

वेश मुनियों का धार, विहार उसी दिन ही कीन्या,
मुनियों संग चलकर निवास शिव मन्दिर में कीन्या,
शीत ने कोप किया भारी,
काँप्या मुनि का गात, साधुओं ने कृपा की भारी ।
निज वसन उनको औढ़ाया ।६। आचार्य जवाहर०

गुरु ने कृपा करी अध्ययन शास्त्रों का करवाया,
देख के साधु सेवा इनकी गुरुजी हरषाया,
वियोग निज गुरुवर का होया,
गुरुजी सिधारे स्वर्ग, जवाहर मन में घबराया ।
मस्तिष्क में पागलपन छाया ।७। आचार्य जवाहर०

प्रथम चातुर्मास धार नगरी में फरमाया,
जंगल में झरने के स्वर से शिक्षा ले पाया,
राग-द्वेष निज मन का निपटाया,

ज्ञान रूपी भानु बन करके संघ को सरसाया ।
हटाया अज्ञान का साया ।८। आचार्य जवाहर०

कारज किए अनेक साहस के श्रावक हर्षाये,
चातुर्मास पचास हिन्द में आपने फरमाये,
सफलता जीवन में पाई
श्रावक केसरीलालजी से शिक्षा आगमों की पाई ।
पावन जन्म-भूमि को किया ।९। आचार्य जवाहर०

करके उपवास कठोर रोग संग्रहणी का मिटवाया,
श्रीलाल जी गुरुवर से सम्मान बहुत पाया,
मुनि ने प्रवचन दिए भारी,
हिंसा वृत्ति और मद्यपान का त्याग हुआ भारी ।
शुद्ध-भाव वधिकों में आया ।१०। आचार्य जवाहर०

सम्वत् १९७५ साल में दुष्काल पड़ा भारी,
भूख से पीड़ित होकर जनता ने कीनी चित्कारी,
हृदय मुनिवर का दहलाया
देकर के उपदेश धनिक लोगों को चेताया ।
भोजन भूखों को दिलवाया ।११। आचार्य जवाहर०

रतलाम नगर सुख धाम सम्वत् पिचेतर का आया,
युवाचार्य का पद देकर श्रीलालजी हर्षाया,
अभिनन्दन जन मानस ने किया,
तत्पश्चात श्रीलालजी महाराज ने स्वर्ग गमन किया।
भाव गुरुकुल का मन भाया ।१२। आचार्य जवाहर०

आचार्य पद आसीन जवाहर ने सेवा कार्य किए,
खादी प्रचार और अछूतोद्धार के कार्य महान् किए,
सहयोग देश सेवा में दिया,
गणेशीलाल जी को चादर उढाकर उत्तराधिकार दिया।
श्रावक सब ही हर्षाया ।१३। आचार्य जवाहर०

जाग्या बीकाणे रा भाग गुरुवर भीनासर आया,
अन्तिम चातुर्मास जीवन का वहां ही फरमाया,
संदेशा स्वर्ग का आया
जीवन सफल बनाकर मुनि ने स्वर्ग धाम पाया।
'नेम' ने जस गुरुवर का गाया ।१४। आचार्य जवाहर०
आचार्य जवाहरलाल जन्म ले पृथ्वी पर आया ।

वाणी गूंजेगी सदियों तक

★ श्री ताराचन्द मेहता

युगद्रष्टा युगस्रष्टा, साक्षात् पूज्य जवाहर थे ।
सद्धर्म का उद्योत किया, पाखंडी–मान–विदारक थे ।। १ ।।

महाप्रतापी उग्रविहारी, कठिन करणी के धारी थे ।
गौर वर्ण प्रभावशाली, जो जन–जन के हितकारी थे ।। २ ।।

सिंह–गर्जना करते थे, अखण्ड बाल–ब्रह्मचारी थे ।
वाणी ओजस्वी थी जिनकी, प्रभावित हुए नरनारी थे ।। ३ ।।

जीवराज जी जनक जिन्हों के, नाथीबाई थी माताजी ।
थांदला ग्राम धन्य हो गया, कवाड़ वंश का नानाजी ।। ४ ।।

पूज्य हुक्म की संप्रदाय में, षष्टम् पाट विराजित थे ।
खूब दिपाया जैन धर्म को, भक्त आपके आश्रित थे ।। ५ ।।

अल्प वुद्धि मैं, क्या गुण गाऊं, पाण्डित्य प्रसिद्ध जिन्हों का है ।
ग्रंथ देखलो आज उन्हीं के, सुवाणी भरा अनोखा है ।। ६ ।।

अमर नाम है नाम आपका, शरीर भले साक्षात् नहीं ।
वाणी गूंजेगी सदियों तक, लिखने की कोई बात नहीं ।। ७ ।।

स्थानकवासी संप्रदाय में, उत्कृष्ट नाम तुम्हारा है ।
धन्य धन्य कहला गए, ताराचंद पूर्वाचार्य हमारा है ।। ८ ।।

श्रद्धांजलि गज़ल

★ श्री प्यारेलाल मूथा

धन्य था संत वो जो बन के जवाहर आया ।
जिसने जीवन में सदा वीर धरम अपनाया ॥

करके अस्पृश्यों का उद्धार हरा तम मिथ्या ।
एक ही दीप ने कई सहस्र दीये प्रगटाया ॥

इक तरफ आत्म-स्वातंत्र्य करम से चाहा ।
देश के लोगों को स्वाधीन सबक समझाया ॥

वस्त्र स्वदेशी का था खूब हिमायती साधु ।
धन्य ! आजानबाहु ले के श्रमण यह आया ॥

कुप्रथाओं के विरुद्ध की थी नरों में क्रांति ।
नारी उन्मेष का पथ श्रेष्ठ भला दिखलाया ॥

आज भी भाव हैं साकार 'गणेश' 'नाना' से ।
इस विषम दौर में सम्मान वड़ा ही छाया ॥

'प्यारे' श्रद्धांजलि है धर्म के भूषण को मेरी ।
जो भीनासर में सुरलोक पद को पाया ॥

❀❀

वही जग में जवाहर कहलाए

• श्री मुलतान गोलछा 'मून'

जन मन में जो छा जाए,
वाद-विवाद से ना घबराए,
हम-दम जिसके सब बन जाए,
रस समता में जो रम जाए,
हर मानव के मन को भाए,
जो हुआ ऐसा मानव भू पर,
वही जग में 'जवाहर' कहलाए ॥ १ ॥

जल सा निर्मल स्वच्छ और साफ,
वाक्य मधुर रसीले व पाक,
हर के प्रति अटूट अनुराग,
रहे चेहरे पर मधुर मुस्कान,
विवेक जिसका कोई छीन न पाए,
जो हुआ ऐसा मानव भू पर,
वही जग में 'जवाहर' कहलाए ॥ २ ॥

जन्नत की जिसे चाह नहीं,
वाह-वाह की परवाह नहीं,
हठ-धर्मी का तर्क नहीं,
रङ्क-राजा में फर्क नहीं,

अपने लक्ष्य को जो बढ़ता जाए,
जो हुआ ऐसा मानव भू पर,
वही जग में 'जवाहर' कहलाए ।। ३ ।।

जग को वीर का सन्देश सुनाए,
वाद स्याद् को जो अपनाए,
हम जिसको कभी भूल ना पाएं,
रही नहीं विभूति वह कहां से लाएं,
पढ़ें साहित्य तो उन्हें निकट पाएं,
जो हुआ ऐसा मानव भू पर,
वही जग में 'जवाहर' कहलाए ।। ४ ।।

मुझ को जिससे लेनी शिक्षा,
लक्ष्य बने लें कभी हम भी दीक्षा,
तारो मुझको मांगू ये भिक्षा,
नमन स्वीकारो न लो कठिन परीक्षा,
महापुरुषों के गुण हम गा न पाए,
जो हुआ ऐसा मानव भू पर,
वही जग में 'जवाहर' कहलाए ।। ५ ।।

जवाहर–सन्देश

● स्वीटि गोलछा

भ्रातृवर,

संयम से चलो,
अपयश से टलो.
कथनी – करनी एक रखो,
सही 'महावीर' का सन्देश रखो,
नित्य जीवन में नियम रखो,
आत्मा अपनी को परखो,
आरम्भ – सारम्भ मत करो,
आडम्बर तुम बन्द करो,
पापों से तुम खूब डरो,
झूठे झगड़े समाप्त करो,
अमरत्व को प्राप्त करो,
सादगी को अपनाओ,
जैनत्व को चमकाओ,
गर अपने पथ से भटक गए
तो अधर में तुम लटक गए,
सभी तुमको झटक गए
गर दर्पण तुम्हारे चटक गए,
फिर काम नहीं आयेगा परिवेश
यही है "जवाहर – सन्देश"

जय हो, विजय

● श्री सुजानमल नागौरी

श्रद्धेय ऋषिराज, तुम धन्य हो, तुम धन्य हो।
आचार्य पद के धारी, तुम धन्य हो, तुम धन्य हो।
श्री वीर के पुजारी, तुम धन्य हो, तुम धन्य हो।
जवाहर से उजागर, तुम धन्य हो, तुम धन्य हो।
लालजी[1] के पट्टधर, तुम धन्य हो, तुम धन्य हो।
महा प्रतापी पूज्य, तुम धन्य हो, तुम धन्य हो।
राज सा[2] के लाल, तुम धन्य हो, तुम धन्य हो।
की अनोखी देशना, तुम धन्य हो, तुम धन्य हो।
जय मात नाथी जी, तुम धन्य हो, तुम धन्य हो।
होन–हार रत्न मालव, धन्य हो, तुम धन्य हो।
विजय बने "वीर संघ", धन्य हो, तुम धन्य हो।
हो "चतुर" वर्ष धन्य, धन्य हो, तुम धन्य हो।

---

१. पूज्य श्री श्रीलालजी म. सा., २. आपके पिताजी का नाम जीवराज जी था।

शताब्दी-संवादः

श्री नानेशाचार्यस्य चरणचञ्चरीकः मुनिः पार्श्वः

प्रथम दृश्यम्

१ सखा– अहह ! अद्य अस्माकं नगरे किमर्थमियं महती जनसंकुला सभा आयोजिता ?

२ सखा– किं न जानासि ?

१ सखा– न जाने ।

२ सखा– अस्माकं समाजस्य ज्योतिर्धराचार्याणां जन्मशताब्दी विद्यतेऽद्य ।

१ सखा– इमे ज्योतिर्धराचार्याः के आसन् ?

२ सखा– किं नाश्रौषीः ?

१ सखा– मया तु अद्यावधि तन्नाममात्रमपि न श्रुतम् ।

२ सखा– महदाश्चर्यम् ! यत् त्वया नाममात्रमपि न श्रुतम् ! ते तु जगत्प्रसिद्धाः ।

१ सखा– त्वर्यताम्, त्वर्यताम् पूर्णपरिचयेन सनाथो क्रियताम् ।

२ सखा– तर्हि श्रूयताम् ते हुक्मगच्छाधिपाः षष्ठमाचार्याः श्री जवाहरलाल महोदयाः महाराजः आसन् ।

१ सखा– तेषां जन्मस्थली क्वास्ति ?

२ सखा– जन्मस्थली सौन्दर्यस्थूलीभूत मालवप्रान्तस्य "थान्दला" इति ग्रामे ।

१ सखा– पितरौ किन्नामधेयौ ?

२ सखा– 'नाथीदेवी' इति माता, जीवराजमहोदयः तु पिताः

१ सखा– कदा जन्म गृहीतम् ?

२ सखा– '१६३२' विक्रमाब्दे कार्तिकमासस्य शुक्लपक्षस्य चतुर्थ्याम् ।

१ सखा– दीक्षा कदा सम्पन्ना ?

२ सखा– '१९४८' विक्रम सम्वत्सरे मार्गशीर्षमासस्य शुक्लपक्षस्य द्वितीयायाम्।

१ सखा– किं तैरध्ययनमपि कृतं न वा ?

२ सखा– अध्ययनविषये तु किं प्रष्टव्यम्–जिनागमानां तु अतीव चिन्तन-मनन-पूर्वकं पठनं कृतम्। अथ च–गीता–रामायण–उपनिषद्–बाईबिल–गांधी साहित्य–संत साहित्यप्रभृति ग्रंथानां पठनम्, पुनश्च संस्कृत–प्राकृत–महाराष्ट्री–गुजराती–प्रभृति भाषानां अध्ययनं साधुरूपेण कृतम्। किं बहुना ?

१ सखा– अहो ! साधुकृतम्, साधुपठितम्।

द्वितीय–दृश्यम्

१ सखा– तदनन्तरं किं जातम् ? इति कथ्यताम्।

२ सखा– तर्हि शृणु–पुनरिमे पूज्यप्रवराणां श्री उदयसागराचार्याणां शुभाशीर्वादेन तथा श्री श्रीलालाचार्यैः योग्यः इति मत्वा रत्नपुर्यां (रतलाम-नगरे) १९७५ विक्रमाब्दे चैत्रमासस्य कृष्णपक्षस्य नवम्याम् युवाचार्यपदे प्रतिष्ठापिताः।

१ सखा– अहो ! किं, इयति योग्यता प्राप्ता ?

२ सखा– कथं न प्राप्स्यन्ति ? किमाश्चर्यम् ? यत्ते तु नैसर्गिकीप्रतिभया सम्पन्ना आसन्। ततश्च आचार्यश्री श्रीलालमहोदयानां दिवंगते १९७७ विक्रमसंवत्सरे आषाढमासस्य शुक्ल–पक्षस्य तृतीयायाम् समुदितसकल संघेन आचार्यपदे प्रतिष्ठापिताः।

१ सखा– स्वजीवने किमपि विशिष्टं कार्यं कृतम् ?

२ सखा– जीवने तु अनेकानि विशिष्टकार्याणि कृतानि किन्तु तेषां मध्ये एकं कार्यं महत्त्वपूर्णं वर्तते।

१ सखा– तत्कीदृशं कार्यम् ?

२ सखा– तैः मरुधरप्रदेशस्य स्थलीप्रान्ते विविधानि कष्टानि प्रसह्य वीतराग धर्मस्य साधुरूपेण प्रचारः कृतः।

१ सखा– किं कापि ग्रन्थरचनापि कृता वा न वा ?

२ सखा– का वार्ता तेषां ग्रन्थरचनाविषये ? सद्धर्ममण्डनम्, अनुकंपाविचारम्, सूत्रकृतांगसूत्रस्य हिन्दी व्याख्यादयोऽनेके ग्रन्थाः तैः ज्योतिर्धराचार्यैः रचिताः तेऽद्यापि प्रामाणिक परिषदि प्रमाणरूपेण प्रसिद्धाः सन्ति।

तेषां प्रवचनानां संग्रहस्तु अद्भुत एवास्ति, 'जवाहर किरणावलीति' नाम्ना पञ्चत्रिंशत् पुस्तकरूपेण प्रकाशितोऽयं संग्रह वर्त्तते ।

१ सखा– अहो ! वहूपकृतम् तैः ।

२ सखा– किं वहुना ? सम्पूर्ण जीवनमेव लोकोपकारमयमासीत् येनेयमुक्तिः चरितार्था कृता —

"परोपकाराय सतां विभूतयः ।" इति

१ सखा– अहो ! एतेन विशिष्टाचार्याणां परिचयेनाहं उपकृतोऽस्मि सखे !

२ सखा– अद्य तेषामेव जन्मशताब्दी महोत्सवः सर्वैर्मिलित्वा सर्वत्र समायोजितः ।

१ सखा– तर्हि तत्रैव आवाभ्यामपि चलितव्यम् पुनश्च श्रोतव्यं महापुरुषस्य पूर्णजीवनवृत्तम् ।

२ सखा– चल, चल अहमपि तत्रैव चलामि ।

(द्वावेव सभायां गतौ)

आचार्यश्री जवाहरलाल जी म० सा० के जीवन के महत्त्वपूर्ण वर्ष

जन्म : कार्तिक शुक्ला ४, विक्रम संवत् १९३२
दीक्षा : मार्गशीर्ष शुक्ला २, विक्रम संवत् १९४८
युवाचार्यत्व : चैत्र कृष्णा ९, विक्रम संवत् १९७५
आचार्यत्व : आषाढ़ शुक्ला ३, संवत् १९७७
दीक्षा स्वर्ण-जयन्ती : मार्गशीर्ष शुक्ला २, विक्रम संवत् १९९८
स्वर्गारोहण : आषाढ़ शुक्ला ८, विक्रम संवत् २०००

शत-शत वन्दन, हैं अभिनन्दन !

● श्री विनोद मुनि

हे विश्ववन्दनीय महारथी तू था जगती पर शूरवीर ।
हे अत्युपकारक हृदय सदय तत्त्ववेत्ता तू धीर गम्भीर ।।
क्षमा-शूरता प्रतिभायुक्त सकल जीवन आलोकित तेरा ।
हे धर्मधुरन्धर ! सत्य प्रचारक ! यह फैला है सुयश तेरा ।।
जप-तप-भक्ति की बीन बजाकर, जिनवाणी का शंखनाद किया ।
प्रतिबोध दिया भविजीवों को, उजड़ा गुलशन आबाद किया ।।
जीवन मधुवन में पतझड़ भी, मधुमास रूप में प्रगटाया ।
कठिन परीक्षण की वेला में, ना निज मग से डिग पाया ।।
हे नवनिर्माण के सजग प्रहरी ! कण्टकीर्ण पथ पर चले तुम ।
फूल और कंटकशय्या पर, सीखे समता से सोना तुम ।।
तेज अनूप जीवन अभिराम करते मनरंजन चिन्ताभंजन ।
जन्मशती पर गुरुवर मेरे, शत-शत वन्दन, हैं अभिनन्दन !!

★

हे ज्योतिपुन्ज !

● श्री कमलचन्द लूणिया

हे ज्योतिपुन्ज !
विलुप्त से कहां हो
प्रतीक्षा
कर रही
जनता
आपकी
क्योंकि
आप
एक "जवाहर" हो,
आप जैसे
जवाहरात की
आवश्यकता है
जन मानस को
इस भूमण्डल पर
जिससे
हम में
रही हुई
सुपुप्त
चेतना
फिर से
जागृत
हो
उठे।

क्रांति-बिगुल बजाते थे

श्री शान्तिसागर बैद

वाणी तेरी ओजस्वी थी, सुन-सुन जन हर्षाते थे ।
भाषण जब चालू होता तो, खुफिया वाले लिखते थे ।।

भीम भयंकर पीड़ा में भी, कभी नहीं घबराते थे ।
अल्पारंभ और महारंभ की, परिभाषा बतलाते थे ।।

थली प्रांत में सब से पहले, दया-दान प्रचार किया ।
फिजीलाट को थली प्रान्त में, शास्त्रार्थ में हरा दिया ।।

पराधीन जब भारत था तब, नेता मिलने आते थे ।
भाषण इनका सुन-सुन करके, दूजा जवाहर बतलाते थे ।।

कपड़े सारे शुद्ध खद्दर के, इस्तेमाल में लाते थे ।
बड़े-बड़े श्रावक प्रेरित हो, खद्दर पहना करते थे ।।

जैन धर्म के प्रबल सेनानी, क्रांतिकारी कहलाते थे ।
नगर-नगर और गांव-गांव में, क्रांति बिगुल बजाते थे ।।

परिशिष्ट—१.

श्रीमद् जवाहराचार्य जी म. सा. की साहित्य-सूची

(श्री जवाहर साहित्य समिति, भीनासर द्वारा प्रकाशित)

जवाहर किरणावली :

प्रथम	किरण —	दिव्यदान	३.७५ पै०
द्वितीय	,, —	दिव्य जीवन	४.०० ,,
तृतीय	,, —	दिव्य सन्देश	२.०० ,,
चतुर्थ	,, —	जीवन धर्म	४.७५ ,,
पांचवीं	,, —	सुवाहुकुमार	२.५० ,,
सातवीं	,, —	जवाहर स्मारक, प्रथम पुष्प	३.०० ,,
आठवीं	,, —	सम्यक्त्व पराक्रम, प्रथम भाग	२.५० ,,
नवीं	,, —	,, ,, द्वितीय भाग	२.५० ,,
दसवीं	,, —	,, ,, तृतीय भाग	२.५० ,,
ग्यारहवीं	,, —	,, ,, चतुर्थ भाग	३.७५ ,,
बारहवीं	,, —	,, ,, पंचम भाग	३.७५ ,,
सतरहवीं	,, —	पाण्डव-चरित्र, प्रथम भाग	१.७५ ,,
अठारहवीं	,, —	,, ,, द्वितीय भाग	१.७५ ,,
उन्नीसवीं	,, —	बीकानेर के व्याख्यान	२.७५ ,,
इक्कीसवीं	,, —	मोरवी के व्याख्यान	२.०० ,,
बाईसवीं	,, —	सम्वतसरी	२.०० ,,
तेईसवीं	,, —	जामनगर के व्याख्यान	२.०० ,,
चौबीसवीं	,, —	प्रार्थना प्रबोध	३.७५ ,,
पच्चीसवीं	,, —	उदाहरणमाला, प्रथम भाग	२.०० ,,
छब्बीसवीं	किरण —	उदाहरणमाला, द्वितीय भाग	३.२५ पैसे
सत्ताईसवीं	,, —	,, तृतीय भाग	२.२५ ,,
अट्ठाईसवीं	,, —	नारी-जीवन	२.२५ ,,
उनतीसवीं	,, —	अनाथ भगवान्, प्रथम भाग	२.०० ,,
तीसवीं	,, —	,, ,, द्वितीय भाग	१.५० ,,
सद्धर्म-मंडन			११.०० ,,

(श्री सम्यक्ज्ञान मंदिर, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित)

इकतीसवीं किरण	—	गृहस्थ धर्म, प्रथम भाग	१.६२ पैसे
बत्तीसवीं ,,	—	,, द्वितीय भाग	१.७५ ,,
तेतीसवीं ,,	—	,, तृतीय भाग	१.५० ,,

(श्री जैन जवाहर मित्र मंडल, ब्यावर द्वारा प्रकाशित)

तेरहवीं किरण	—	धर्म और धर्मनायक	२.६० पैसे
चौदहवीं ,,	—	राम वनगमन, प्रथम भाग	३.०० ,,
पन्द्रहवीं ,,	—	,, ,, द्वितीय भाग	३.०० ,,
चौतीसवीं ,,	—	सती राजमती	२.०० ,,
पैंतीसवीं ,,	—	सती मदनरेखा	२.७५ ,,

(श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा प्रकाशित)

छठी किरण	—	रुक्मिणी विवाह	२.२५ पैसे
सोलहवीं ,,	—	अंजना	१.२५ ,,
बीसवीं ,,	—	शालिभद्र	२.२५ ,,
हरिश्चन्द्र तारा			२.०० ,,
जवाहर ज्योति			३.०० ,,
चिन्तन–मनन–अनुशीलन, प्रथम भाग			१.०० ,,
चिन्तन ,, ,, द्वितीय भाग			१.०० ,,

(श्री श्वे. साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर द्वारा प्रकाशित)

जवाहर–विचार सार — २.५० ,,

(श्री जैन हितेच्छु श्रावक मंडल, रतलाम द्वारा प्रकाशित)

सेट—१

श्री भगवती सूत्र पर व्याख्यान, भाग ३
,, ,, ,, ,, ४
,, ,, ,, ,, ५
,, ,, ,, ,, ६
} ४.०० पैसे

सेट—२

अनुकम्पा–विचार, भाग १
,, ,, ,, २
} २.०० पैसे

सेट—३

राजकोट के व्याख्यान, भाग १ ,, ,, ,, २ ,, ,, ,, ३	२.५० पैसे

सेट—४

सम्यक्त्व–स्वरूप श्रावक के चार शिक्षाव्रत श्रावक के तीन गुणव्रत श्रावक का अस्तेय व्रत श्रावक का सत्यव्रत परिग्रह परिमाण व्रत	१.५० पैसे

सेट—५

तीर्थङ्कर चरित्र, प्रथम भाग ,, ,, द्वितीय भाग सकडाल पुत्र सनाथ–अनाथ निर्णय श्वेताम्बर तेरह पंथ	२.५० पैसे

नोट— पूरे सेट लेने पर ११.०० में प्राप्त होंगे।

धर्म व्याख्या	१.२५ पैसे
सुदर्शन–चरित्र	२.२५ ,,
श्री सेठ धन्ना चरित्र	१.५० ,,

नोट— "जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज की जीवनी" नामक वृहद् ग्रन्थ का प्रकाशन श्री श्वे. साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, वीकानेर की ओर से हुआ है।

परिशिष्ट—२.

संघ के कतिपय महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१. ताप और तप — २.५०
(आचार्य श्री नानालाल श्री म. सा.)

२ समता : दर्शन और व्यवहार — ४.००
(आचार्य जी नानालाल जी म. सा.)

३. अनुभव पराग — २.००
(पूज्य मुनि श्री शांतिलाल जी म. सा.)

४. **Lord Mahavir & His Times** — ६०.००
(Dr. K. C. Jain)

५. **Bhagwan Mahavir and His Relevence in Contemporary Age** — २५.००
(Dr. Narendra Bhanawat & Dr. Prem Suman Jain)

६. भगवान महावीर आधुनिक संदर्भ में — ४०.००
(डा० नरेन्द्र भानावत)

७. आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. व्यक्तित्व एवं कृतित्व (पाकेट बुक साइज) — २.००
(डा० नरेन्द्र भानावत एवं श्री महावीर कोटिया)

८. श्रीमद् जवाहराचार्य—समाज (पा. बुक सा.) — २.००
(श्री ओंकार पारीक)

९. समराइच्च कहा — १५.००
(डा० छगनलाल जी शास्त्री)

१०. प्राकृत पाठमाला — १५.००
(पं० श्री श्यामलाल जी ओझा शास्त्री)

११ सौन्दर्य दर्शन (कथा-संग्रह) — २.००
(श्री शांतिचंद्र मेहता)

१२. जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज की जीवनी
(श्री श्वे. सा जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर)

परिशिष्ट–३

वीर संघ योजना

धर्म–प्रधान भारत के आध्यात्मिक आकाश के प्रकाश–स्तम्भ, युगद्रष्टा, युगस्रष्टा, युग–प्रवर्तक, ज्योतिर्धर जैनाचार्य स्व० श्री जवाहरलाल जी म० सा० ने अपनी उद्बोधक प्रवचन शृंखलाओं में सद्गुणों के प्रचार–प्रसार एवं संयम साधना के निखार हेतु एक महान् योजना प्रस्तुत की थी। भगवान महावीर के साधना मार्ग को प्रशस्त बनाने वाली इस जीवनोन्नायक मध्यम मार्गीय साधनायुक्त प्रचार–योजना को वीर निर्वाण के ऐतिहासिक वर्ष में— '**वीर संघ योजना**'' के नाम से सम्बोधित करना समीचीन समझा गया है।

स्वर्गीय आचार्यश्री साधुत्व को उसके वास्तविक स्वरूप में ही साधना के उच्चस्थ शिखर पर आसीन देखना चाहते थे, एवं प्रवृत्ति–परक प्रचार–प्रसार के कार्यों में गृहस्थ–वर्ग का संलग्न रहना ही उपयुक्त मानते थे। परन्तु पारिवारिक दायित्वों एवं सांसारिक झंझटों में अत्यधिक उलझा रहने के कारण गृहस्थ–वर्ग अपने उस उत्तरदायित्व का परिपालन नहीं कर पा रहा है। फलतः गृहस्थ के करने योग्य कार्यों में भी संतजनों को स्वेच्छया अथवा विवशतावश संलग्न होते सुना एवं देखा भी गया है। ऐसी स्थिति में उन्हें कहीं-कहीं साधुत्व की मर्यादा के विपरीत भी कई अकरणीय कार्य करने पड़ जाते हैं, जिससे न केवल उनकी साधना का स्तर ही घटने लगता है वरन शनैः शनैः वे साधना से परे होकर वेषधारी प्रचारक ही रह जाते हैं, जो श्रमण–संस्कृति के लिए कदापि आचरणीय नहीं।

आचार्यश्री जी के लिए किसी भी साधक की साधना में अंशमात्र की कमी भी असह्य थी। अतः उन्होंने साधुत्व को अक्षुण्ण रखने के उद्देश्य से प्रचार–प्रसार के कार्य हेतु साधु और गृहस्थ के मध्य एक ऐसे वर्ग की सुविचारित व्यावहारिक योजना प्रस्तुत की, जो निम्नलिखित चार आधारभूत स्तम्भों पर आधारित है :—

(१) निवृत्ति (२) स्वाध्याय (३) साधना (४) सेवा ।

साधना के स्तर पर वीर संघ के सदस्यों की तीन श्रेणियां रहेंगी-(१) उपासक सदस्य (२) साधक सदस्य (३) मुमुक्षु सदस्य ।

(१) उपासक सदस्य—

उपासक सदस्य अपने परिवार एवं व्यवसाय से **आंशिक निवृत्ति** लेकर प्रतिदिन सामायिकपूर्वक **स्वाध्याय** एवं व्रत प्रत्याख्यान-पूर्वक **साधना** करते हुए निष्काम भाव से **सेवारत** होने का निरन्तर अभ्यास करेंगे ।

(१) आंशिक निवृत्ति— आंशिक निवृत्ति से तात्पर्य है— वार्षिक एवं दैनिक दिनचर्या का बारहवां हिस्सा निवृत्ति में व्यतीत करना । प्रतिदिन चौबीस घण्टों में से दो घण्टा एवं प्रति वर्ष १२ महीनों में से एक महीना पारिवारिक एवं व्यावसायिक दायित्वों से अलग होकर विताना। इसमें का आधा समय स्वाध्याय एवं साधना में तथा आधा समय सेवाकार्यों में लगाना ।

(२) स्वाध्याय—सदस्य दैनिक निवृत्ति का आधा समय अर्थात् प्रतिदिन दो घण्टों में से एक घण्टा सामायिक अर्थात् समभाव साधनापूर्वक स्वाध्याय यानि स्वयं का अध्ययन, अन्तरावलोकन का अभ्यास करेंगे । स्वाध्याय, जीवन साधना, सम्यग् क्रिया एवं सम्यग् चारित्र के लिए सम्यक् ज्ञान की पृष्ठभूमि तैयार करता है ।

(३) साधना— स्वाध्याय से अर्जित सम्यक् ज्ञान की पृष्ठभूमि पर जीवन को विशुद्ध व संयमित, नियमित, मर्यादित बनाने के अभ्यास क्रम में सदस्य व्रत प्रत्याख्यान पूर्वक स्वयं को व्रती और साधनामय रखेंगे । साधना उनके दैनिक कार्य एवं व्यवहार में परिलक्षित होनी चाहिये । वे पूर्ण निवृत्त न होने के कारण पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन न कर सकें तो स्वपत्नी-मर्यादा रख कर आंशिक ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे । वे प्रतिवर्ष एक माह के निवृत्ति काल में से आधा समय अर्थात् १५ दिन किसी साधना-शिविर में रहकर अथवा एकान्त साधना करके आत्मस्थ होने का प्रयत्न करेंगे ।

(४) सेवा—आत्मचिंतन (स्वाध्याय) एवं आत्मानुशासन (साधना) के प्रशस्त मार्ग पर चलकर सदस्य अपनी आंशिक निवृत्ति का शेष आधा समय अपनी रुचि के अनुरूप समाज अथवा संघसेवा के कार्यों में निष्काम भाव से व्यतीत करेंगे । वे प्रतिदिन एक घण्टा स्थानीय समाज अथवा संघ के सेवा कार्यो में एवं वर्ष में १५ दिन किन्हीं विशिष्ट सेवा-योजनाओं में सेवारत रहकर अपना समुत्कर्ष करेंगे ।

साधक सदस्य—

साधक सदस्य उपासक–सदस्यों से साधना के क्षेत्र में विशिष्ट होंगे। वे पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे और पारिवारिक व व्यावसायिक उत्तरदायित्वों से पूर्ण निवृत्त न हो पाने के कारण आंशिक निवृत्ति के साथ ही स्वाध्याय तथा सेवा के क्षेत्र में भी उपासक सदस्यों से अधिक समय देंगे।

(३) मुमुक्षु सदस्य—

मुमुक्षु सदस्य परम पूज्य जवाहराचार्यजी म. सा. के मूल स्वप्न को साकार बनाने वाले गृहस्थ एवं साधुवर्ग के बीच की कड़ी होंगे। वे एक प्रकार से तीसरे आश्रम–वानप्रस्थ के तुल्य साधनायुक्त जीवन के साथ धर्म प्रचार की प्रवृत्तियों का संचालन करेंगे। उनकी गृहस्थ–जीवन से लगभग पूर्ण निवृत्ति होगी। वे नाम मात्र के लिए परिवार से सम्बन्धित होंगे। परिवार एवं गृहस्थ के साथ रहते हुए भी पारिवारिक उत्तरदायित्वों से विरत–अनासक्त–व्रती श्रावक के रूप में साधना व सेवा–कार्यों में सर्वभावेन रत रहेंगे। भावना के स्तर पर वे गृहस्थ से दूर एवं साधुत्व के समीप रहेंगे। उनका जीवन स्वाध्याय, साधना और सेवा से ओतप्रोत होगा। समाज सेवा एवं धर्मप्रभावना के लिए वे आवश्यकतानुसार देश विदेश का प्रवास भी करेंगे। वे श्रावक वर्ग की उच्चस्थ स्थिति के आदर्श स्वरूप होंगे।

नोट—विस्तृत जानकारी हेतु श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर द्वारा प्रकाशित वीर–संघ [रूप रेखा एवं नियमावली] पुस्तक द्रष्टव्य है।

❀ ❀ ❀

जैसे दीपक के प्रकाश के सामने अन्धकार नहीं रह सकता, उसी प्रकार शील के प्रकाश के सामने पाप का अन्धकार नहीं ठहर सकता। मगर पाप के अन्धकार को मिटाने और शील के प्रकाश को फैलाने के लिए दृढ़ता, धैर्य और पुरुषार्थ की अपेक्षा रहती है।

(पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज)

यों तो अचेत अवस्था में पड़े हुए आत्मा में भी राग-द्वेष प्रतीत नहीं होते, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि अचेत आत्मा राग-द्वेष से रहित हो गया है। जो आत्मा ज्ञान के आलोक में राग-द्वेष को देखता है—राग-द्वेष के विपाक को जानता है और फिर उसे हेय समझकर उसका नाश करता है वही राग-द्वेष का विजेता है। दुमुही का क्रुद्ध न होना, क्रोध को जीत लेने का प्रमाण नहीं है। क्रोध न करना उसके लिए स्वाभाविक है। अगर कोई सर्प ज्ञानी होकर क्रोध न करे तो कहा जायगा कि उसने क्रोध को जीत लिया है, जैसे चंडकौशिक ने भगवान् के दर्शन के पश्चात् क्रोध को जीता था। जिसमें जिस वृत्ति का उदय ही नहीं है, वह उस वृत्ति का विजेता नहीं कहा जा सकता अन्यथा समस्त बालक काम-विजेता कहलाएंगे।

आचार्यश्री जवाहरलाल जी म.